नवतत्त्व-विवेचन

-: विवेचनकार :-

प.पू.आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.

जीव के लक्षण तथा पर्याप्तियाँ

जीव की छः पर्याप्तियाँ

माया

अनन्तानुबन्धी माया : बांस के पेड़ के मूल जमीन में होते हैं। वे बहुत ही वक्र गांठ गठीले होते हैं। उसी तरह इस माया वाले का हृदय भी गांठों से भरा रहता है।

अप्रत्याख्यानी माया : भेड़ के सींग तुल्य होती है। ये कठिन परिश्रम के बाद सरल सीधे होते हैं।

प्रत्याख्यानी माया : बैल के मूत्र की धार जैसी यह वक्रता वाली माया होती है।

संज्वलन माया : बांस छीलने के बाद तुरंत सीधा होता है वैसी यह संज्वलन माया है।

क्रोध

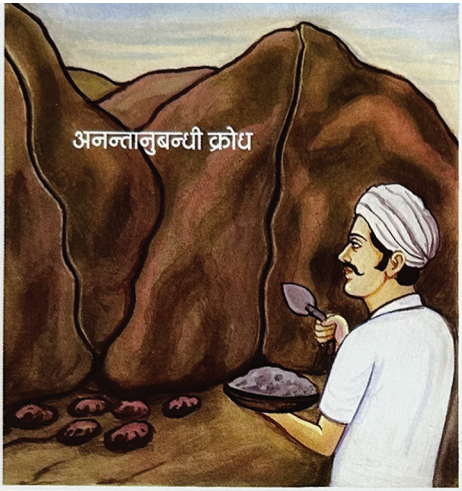

अनन्तानुबन्धी क्रोध : पर्वत में दरार पड़ने जैसा होता है, पर्वत में दरार पड़ने के बाद वह मिट नहीं सकती है।

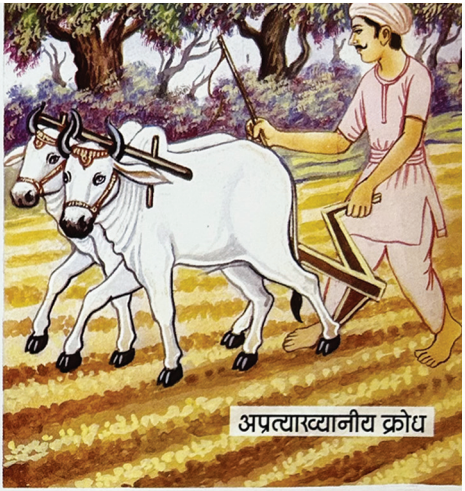

अप्रत्याख्यानी क्रोध : हल आदि से जमीन में पड़ी दरारें बारिस आने से मिट जाती है। वैसे ही यह क्रोध लम्बे समय बाद शांत हो जाता है।

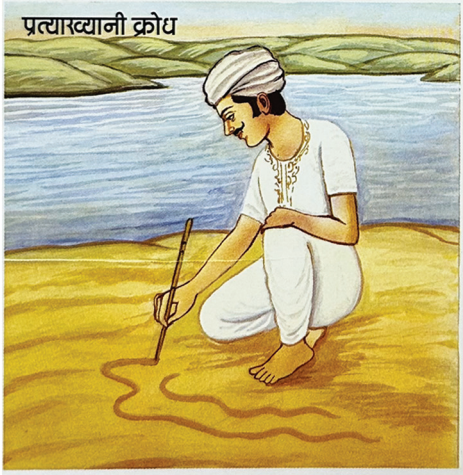

प्रत्याख्यानी क्रोध : रेत में रेखा खींचने तुल्य होता है जो पवन आने से मिट जाती है।

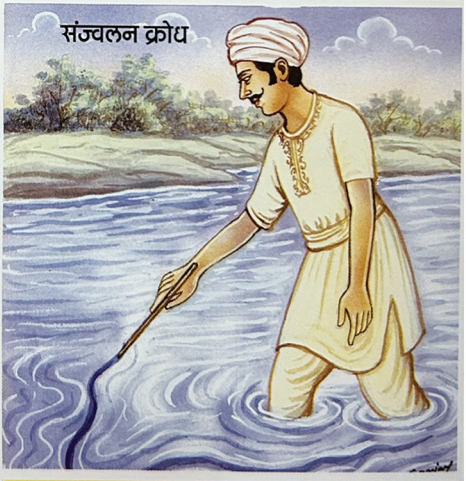

संज्वलन क्रोध : पानी में रेखा खींचने तुल्य होता है। जो शीघ्र ही मिट जाती है।

मान

अनन्तानुबन्धी मान– पत्थर के स्तंभ तुल्य होता है, जो कभी नमता नहीं है।

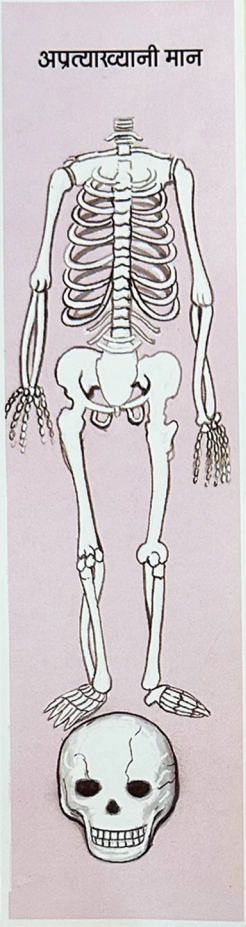

अप्रत्याख्यानी मान– हड्डी तुल्य होता है, जो बहुत मालिश आदि करने पर थोड़ा झुक जाता है।

प्रत्याख्यानी मान– लकड़ी के स्तंभ तुल्य होता है, जो प्रयत्न करने पर कुछ समय बाद झुक जाता है।

संज्वलन मान– बांस या लकड़ी की बेंत तुल्य होता है, जो आसानी से झुक जाता है।

लोभ

अनन्तानुबन्धी लोभ : किरमजी का रंग जैसा पक्का रंग होता है जो बहुत ही मुश्किल से छूटता है।

अप्रत्याख्यानी लोभ : बैलगाडी की काली मली जो कपड़े पर लगने के बाद वर्षभर बार-बार धोने से जाती है।

प्रत्याख्यानी लोभ : यह आँखों में लगाने का काजल जैसे रंग तुल्य लोभ है। जो साधारण प्रयत्न से मिट सकता है।

संज्वलन लोभ : हल्दी के रंग तुल्य कच्चा होता है, धूप लगने पर दूर हो जाता है, उसी तरह यह लोभ जल्दी नष्ट होता है।

संघयण (संहनन) और संस्थान के भेद-प्रभेद

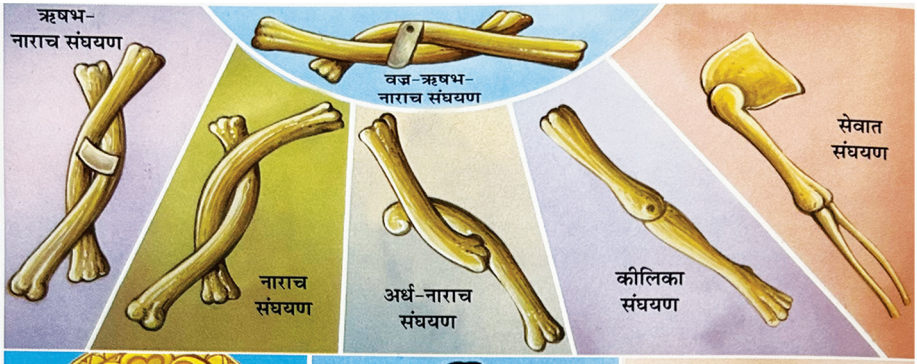

25 क्रियाएँ – 2

ओह! इस दुष्ट पत्थर को यहीं पड़ा रहना था।
13. प्रातीत्यिकी क्रिया
(अजीव प्रातीत्यिकी)

वाह! तुम्हारे पास इतने सारे घोड़े हैं।
वाह! कितने प्यारे घोड़े है।
वाह! कितने सुन्दर घोड़े है।
वाह! सभी मेरी प्रशंसा कर रहे हैं।
घोड़ों का मालिक
14. सामन्तोपनिपातिकी क्रिया

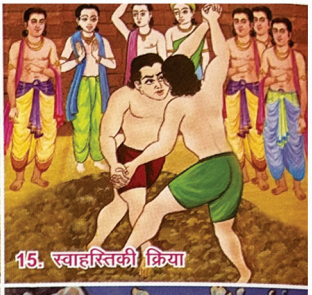
15. स्वाहस्तिकी क्रिया

16. नैसृष्टिकी क्रिया

17. आज्ञापनिका क्रिया
रामू जाओ ये सामन देकर, रूपये ले आओ।

18. वैदारिणी क्रिया

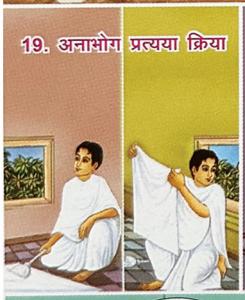
19. अनाभोग प्रत्यया क्रिया

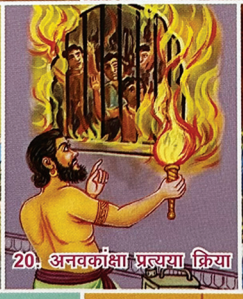
20. अनवकांक्षा प्रत्यया क्रिया

21. प्रेम प्रत्यया क्रिया

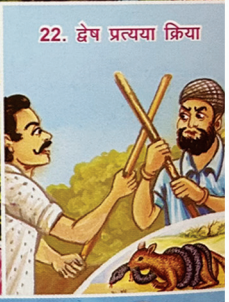
22. द्वेष प्रत्यया क्रिया

तुम बहुत बेवकूफ हो
मैं तुम्हारी पिटाई कर दूंगा।
23. प्रायोगिकी क्रिया

24. सामुदानिकी क्रिया

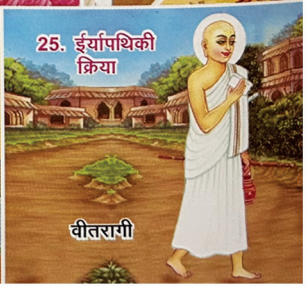
25. ईर्यापथिकी क्रिया
वीतरागी

25 क्रियाएँ – 1

1. कायिकी क्रिया
2. आधिकरणिकी क्रिया
3. प्राद्वेषिकी क्रिया
बालक पर द्वेष करती स्त्री
4. पारितापनिकी क्रिया
5. प्राणातिपातिकी क्रिया
6. आरंभिकी क्रिया
देखो, मैंने कितने रूपये और आभूषण इकट्ठे कर लिये।
वाह !
7. परिग्रहिकी क्रिया
नकली वसीयत तैयार हो गयी।
8. मायाप्रत्यया क्रिया
देव
वासुदेव
9. अप्रत्याख्यानप्रत्यया क्रिया
10. मिथ्यादर्शनप्रत्यया क्रिया
जिन मार्ग से न्यूनाधिक प्ररूपणा
आत्मा दीपक की लौ, चावल, मटर के दाने के समान छोटी है।
आत्मा सम्पूर्ण लोक जितनी बड़ी है।
देखो कितनी सुन्दर लड़की है।
11. दृष्टिका क्रिया
वाह ! यह फूल कितने मुलायम हैं और इनकी सुगंध कितनी अच्छी है।
12. स्पर्शन क्रिया

बारह भावनाए–4

(11) बोधि दुर्लभ भावना

(12) धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ भावना

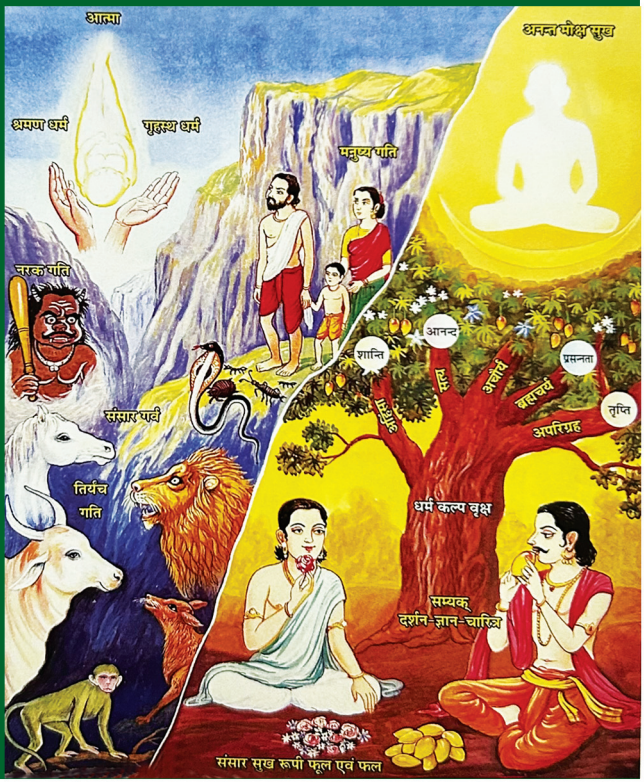

बारह भावनाए–1

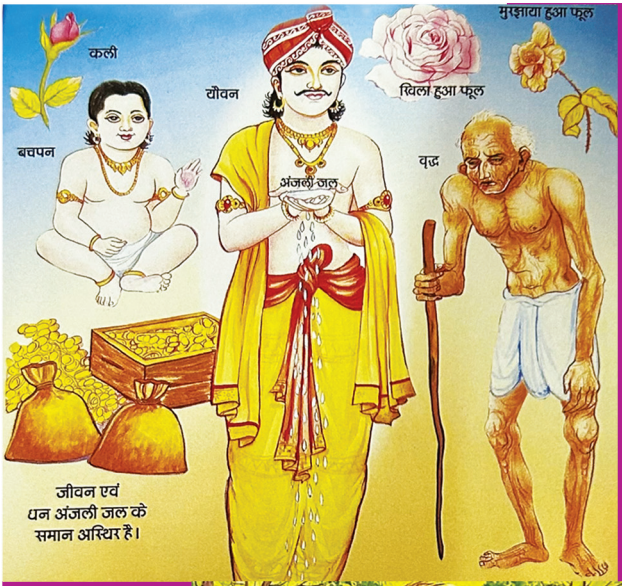

(1) अनित्य भावना

(2) अशरण भावना

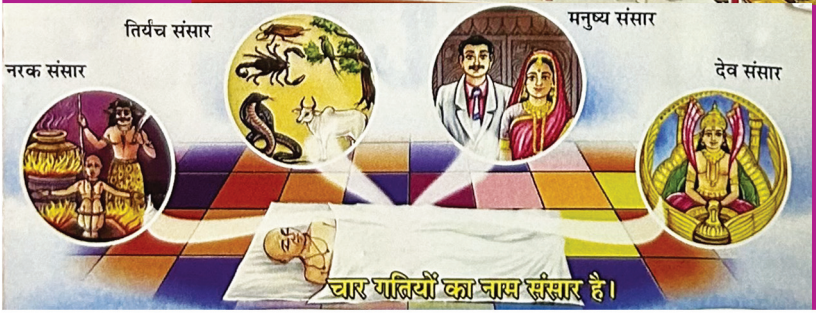

(3) संसार भावना

बारह भावनाए–2

(4) एकत्व भावना

(5) अन्यत्व भावना

(6) अशुचि भावना

(7) आस्रव भावना

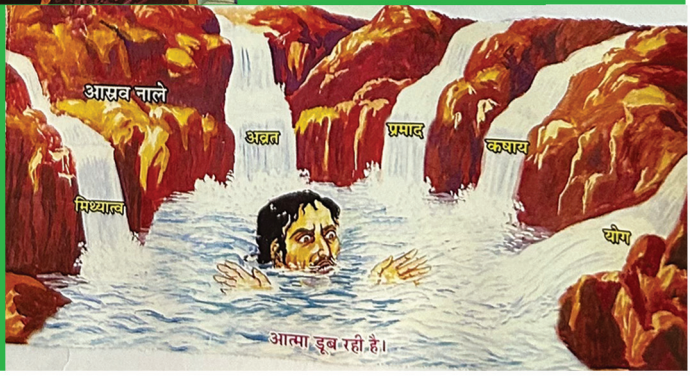

बारह भावनाए–3

(8) संवर भावना

(9) निर्जरा भावना

(10) लोक स्वरूप भावना

बाह्य तप

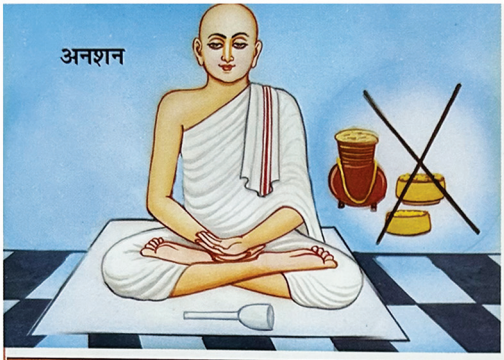

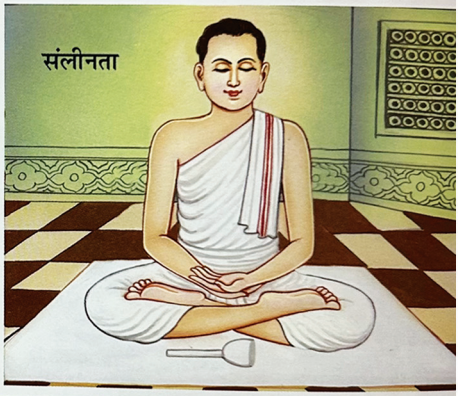

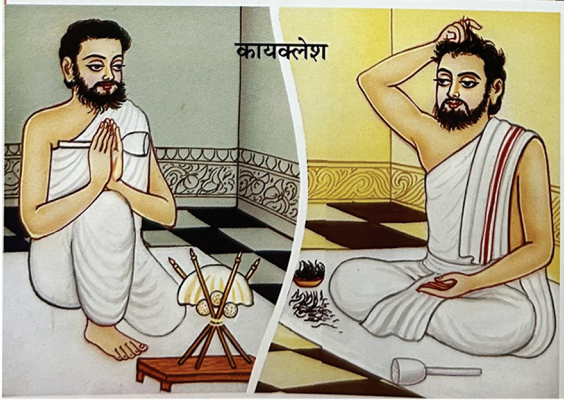

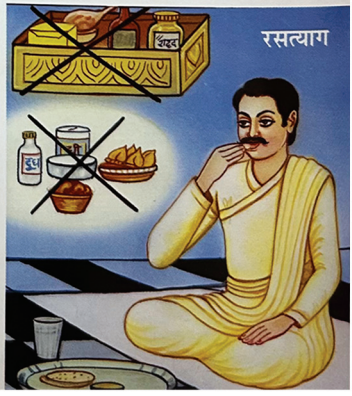

अभ्यन्तर तप

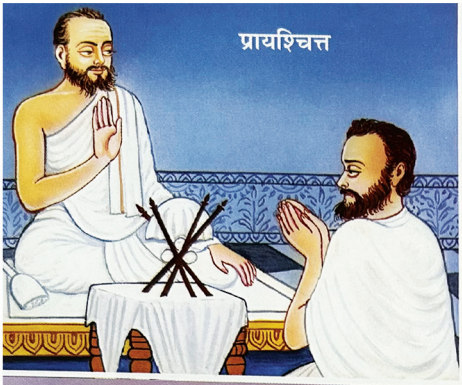

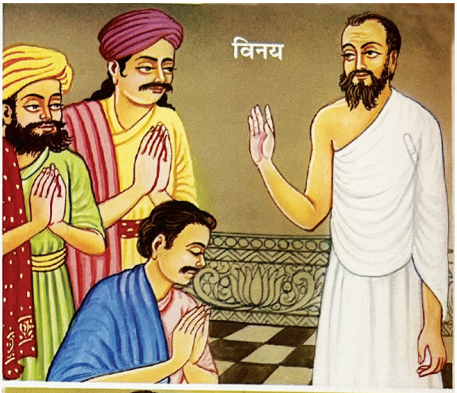

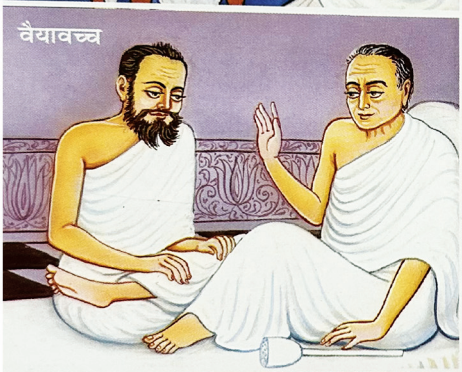

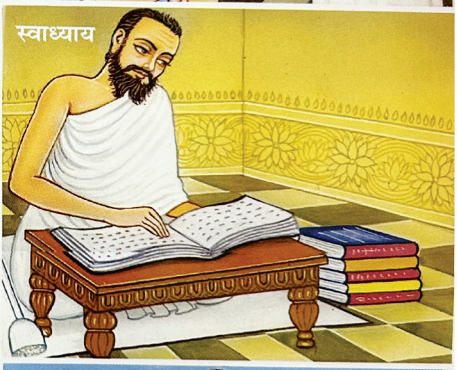

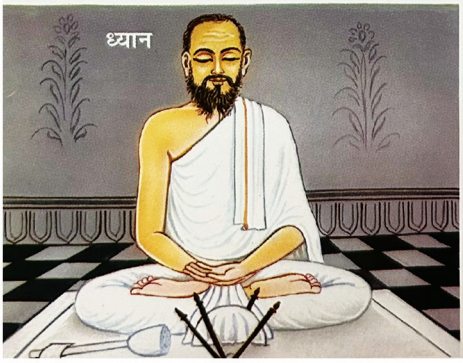

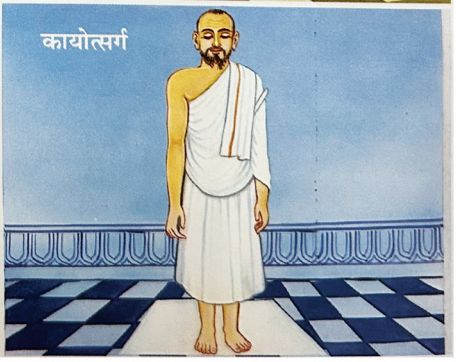

कर्म बंध के चार प्रकार

कर्म बंध की पद्धति

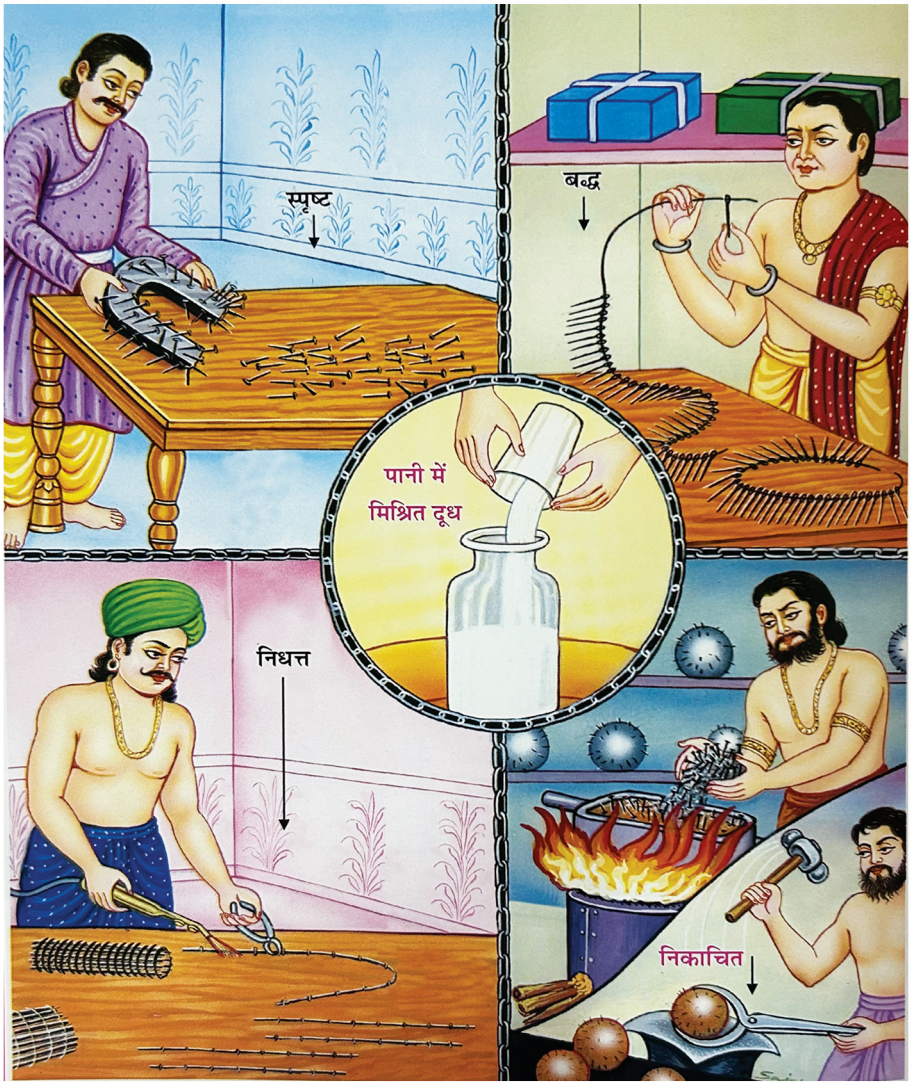

नवतत्त्व-विवेचन

❖ विवेचनकार ❖

व्याख्यान वाचस्पति, महाराष्ट्र देशोद्धारक पूज्यपाद
आचार्यदेव **श्रीमद् विजय रामचंद्रसूरीश्वरजी म.सा.**
के तेजस्वी शिष्यरत्न, बीसवीं सदी के महान् योगी,
नवकार-विशेषज्ञ, प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य के चरम शिष्यरत्न
मरुधररत्न, जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर
परम पूज्य आचार्यदेव
श्रीमद् विजय **रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.**

122

❖ प्रकाशन ❖

दिव्य सन्देश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे.व्यु. बिल्डींग,
विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी,
मुंबई-400 002. Cell 8484848451 (only whatsapp)

आवृत्ति : पाँचवी • **मूल्य :** 110/- रुपये • **प्रतियां :** 2500
विमोचन स्थल : महावीर धाम-सिरसाड (M.S.)
तारीख : दि. 3-11-2022 • **Website :** Divyasandesh.online

आजीवन सदस्य योजना

आजीवन सदस्यता शुल्क - 3000/- रु.

- आप जैन धर्म के रहस्य-जैन इतिहास-जैन तत्त्वज्ञान-जैन आचार मार्ग, प्रेरणादायी कथाएँ आदि का अध्ययन करना चाहते हों तो आज ही आप दिव्य संदेश प्रकाशन मुम्बई की आजीवन सदस्यता प्राप्त कर लें। सदस्य बनते ही अध्यात्मयोगी निःस्पृह शिरोमणि स्व. पूज्यपाद पंन्यासप्रवर **श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** एवं उन्हीं के चरम शिष्यरत्न प्रवचन प्रभावक परम पूज्य ***आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.*** सा. द्वारा लिखित उपलब्ध 10 पुस्तकें दी जाएगी और **अर्हद् दिव्य संदेश** मासिक तथा भविष्य में हिन्दी भाषा में प्रकाशित पुस्तकें (Open Book Exam साधु–साध्वी उपयोगी पुस्तके एवं पुनः मुद्रित पुस्तकों को छोडकर) घर बैठे प्राप्त होगी। आप आजीवन सदस्यता शुल्क मुंबई या बैंगलोर के पते पर दिव्य संदेश प्रकाशन-मुंबई के नाम से चैक व ड्राफ्ट से भेजें।

प्राप्ति स्थान

1. चेतन हसमुखलालजी मेहता
भायंदर (M.S.)
M. 9867058940

2. प्रवीण गुरुजी
C/o. श्री आत्म कमल लब्धिसूरि जैन पुस्तकालय
श्री आदिनाथ जैन टेंपल, चिकपेठ, बेंगलोर-560 053.
M. 9036810930

3. राहुल वैद
C/o. अरिहंत मेटल कं., 4403, लोटन जाट गली, पहाड़ी धीरज, सदर बाजार, दिल्ली-110 006.
M. 9810353108

4. चंदन एजेन्सी
607, चीरा बाजार, मुंबई-400 002.M.9820303451

आजीवन सदस्यता शुल्क

Rs. 3000/- भिजवाने का पता एवं पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

(1) दिव्य संदेश प्रकाशन

C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

(2) दिव्य संदेश प्रचारक

प्रकाश बड़ोल्ला, 52, 3rd Cross, शंकरमट रोड, शंकरपुरा, बैंगलोर-560 004. Tel. (O.) 4124 7478 M. 8971230600

प्रकाशक की कलम से...

गोड़वाड़ के गौरव एवं मरुभूमि के रत्न परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. का संक्षिप्त परिचय

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय श्री रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. गोड़वाड़ के गौरव, मरुभूमि के रत्न, बाली संघ की शान, चोपडा कुल के भूषण तथा पिता श्रीमान् छगनराजजी एवं माताजी श्रीमती चंपाबाई के कुल दीपक है। इनका सांसारिक नाम राजमल चोपडा था, परन्तु उन्हें **'राजू'** के लाडिले नाम से पुकारा जाता था। आज भी वे गोड़वाड़ की जनता के लिए तो **'राजू महाराज'** के नाम से ही प्रख्यात है। पूज्य श्री का जन्म भादो सुदी 3 दिनांक 16-9-1958 के शुभ दिन हुआ था। माता का नाम चंपाबाई और पिता का नाम छगनराजजी चोपडा है।

इनकी प्रारंभिक शिक्षा हायर सेंकडरी तक बाली में तथा 1st Year, B.Com. का शिक्षण S.P.U. College फालना में हुआ था। राजू को धार्मिक शिक्षण व संस्कार मिले श्रीमान् आनंदराजजी गेमावत से। बचपन से ही सूक्ष्म व तीक्ष्ण प्रज्ञा के कारण व्यवहारिक शिक्षण में उनका हमेशा प्रथम स्थान रहा। ई. सन् 1975 में राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय-बाली में 600 विद्यार्थियों के बीच राजू को **'सर्वश्रेष्ठ विद्यार्थी'** का पारितोषिक मिला था। जिला-स्तरीय निबंध-वक्तृत्व आदि स्पर्धाओं में भी विशेष स्थान प्राप्त किया था। इसके साथ ही धार्मिक पाठशाला में भी हमेंशा प्रथम स्थान रहा। तत्वज्ञान विद्यापीठ-पूना की प्रारंभिक परीक्षा में भारत भर में पहला स्थान प्राप्त किया था।

बचपन में राजू के दिल में महत्वाकांक्षा थी **'आगे चलकर C.A. करना, उद्योगपति या राजनेता बनना।'** परंतु अपने ही पडौसी पूर्णतया स्वस्थ भीकमचंदजी की अकाल मृत्यु तथा नदी के पानी में डूबने में हुई दो बाल मित्रों की करुण मौत के दृश्य को देखकर राजू को आयुष्य की क्षण भंगुरता के प्रत्यक्ष दर्शन हुए और उसके मन में वैराग्य भाव का बीजारोपण हुआ।

अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेवश्री के वचनामृत, सत्संग एवं उनके द्वारा प्रदत्त **'शांतसुधारस'** की अनित्य एवं अशरण भावना के गुजराती विवेचन के स्वाध्याय तथा 'धर्मदेशना' पुस्तक में वर्णित चार गतियों के भयंकर दुःखों का वर्णन पढने से राजू की वैराग्य भावना और दृढ बनती गई।

एक वर्ष के कॉलेज शिक्षण दरम्यान भी राजू की वैराग्य भावना लेश भी खंडित नहीं हुई, बल्कि कॉलेज के साथ पूज्य गुरुदेव श्री के समागम से उसकी वैराग्य भावना तीव्र-तीव्रतर होती गई।

वि.सं. 2030 में बाली में मुमुक्षु कमलाबहिन की भागवती दीक्षा विधि का महोत्सव चल रहा था । रात्रि में संघ की ओर से आयोजित मुमुक्षु के बहुमान समारोह में राजू भी उपस्थित था । मुमुक्षु के वैराग्यपूर्ण संवाद आदि को सुनकर राजू के मन में तीव्र वैराग्य भाव पैदा हुआ ।

राजू के अपने दिल की बात **पू.मु. श्री प्रद्योतनविजयजी म.** को कही । पूज्य मुनिराज श्री ने राजू की भावना को प्रोत्साहित किया और इस संदर्भ में विशेष मार्गदर्शन हेतु राजू को घाणेराव में बिराजमान अध्यात्मयोगी निःस्पृह **शिरोमणि पूज्यपाद पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** के पास भेजा ।

अध्यात्मयोगी महापुरुष के दर्शन-वंदन कर राजू का हृदय खुशी से भर गया । मानव जीवन को सफल बनाने एवं संयम की निर्मल साधना हेतु पूज्य पंन्यासजी म.सा. ने राजू को सुंदर मार्गदर्शन दिया ।

धार्मिक पाठशाला में राजू ने पंच प्रतिक्रमण आदि का अभ्यास तो किया ही था, इसके साथ **प.पू. विद्वद्वर्य मु. श्री जितेन्द्रविजयजी म.सा.** एवं **प.पू. विद्वद्वर्य मु. श्री गुणरत्नविजयजी म.सा.** की तारक निश्रा में आयोजित `ग्रीष्म कालीन आध्यात्मिक ज्ञान शिबिर में दो बार भाग लेकर जैन दर्शन के तत्वज्ञान, आवश्यक क्रिया के सूत्र रहस्य, जैन इतिहास, जैन भूगोल, कर्मवाद आदि का ज्ञान प्राप्त किया । इसके फलस्वरूप राजू की वैराग्य भावना और दृढ बनी ।

यद्यपि दीक्षा के लिए घर में अनुकूल वातावरण नहीं था, फिर भी दृढ मनोबल से वैराग्यमार्ग में आनेवाले अवरोधों का सामना किया, जिसके फलस्वरूप आखिर में राजू के माता-पिता ने पूज्य गुरुदेव के सान्निध्य में रहने के लिए अपनी सम्मति प्रदान की ।

वि.सं. 2031 व 2032 में पूज्य गुरुदेवश्री के बेडा एवं लुणावा चातुर्मास में साथ में रहकर ज्ञानाभ्यास किया और संयम जीवन की ट्रेनिंग ली । डेढ वर्ष के अपने मुमुक्षु पर्याय में उपधान तप, वर्धमान तप का पाया एवं 12 ओली, 20 दिवसीय एक लाख नवकार जाप साधना, पैदल-विहार के साथ साथ चार प्रकरण, तीन भाष्य, छ कर्मग्रंथ तत्वार्थ, वीतराग स्तोत्र, योग शास्त्र, पंच सूत्र, संस्कृत की दो बुक आदि का भी सुंदर अभ्यास किया ।

राजू के दिल में उत्कट वैराग्य था तो दूसरी ओर माता-पिता के अन्तर्मन में रहे मोह के बंधन को तुडवाना सरल काम नहीं था, इस भगीरथ कार्य में सफलता पाने के लिए राजू ने भी मानो कसम खा रखी थी ! मोह के बंधन को तोडने में राजू के सफल मार्गदर्शक बने थे अध्यात्मयोगी **पूज्यपाद पंन्यास प्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य ।** उनका मार्गदर्शन और आशीर्वाद न होता तो शायद राजू को सफलता नहीं मिल पाती ।

दि. 7 जनवरी 1977 के शुभ दिन मुमुक्षु राजू अपने पिताजी **शा. छगनराजजी चोपडा** और पंडितजी हिम्मतभाई (जो बाली में साधु-साध्वीजी को संस्कृत-प्राकृत और न्याय सिखाते थे ।) के साथ बाली से बस द्वारा लुणावा आए । उस समय अध्यात्मयोगी **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी म.सा.** लुणावा में विराजमान थे ।

वंदनविधि और औपचारिक बातचीत के बाद मुमुक्षु राजू के पिताजी का एक ही सूर था-राजू की दीक्षा 1-2 वर्ष बाद की जाय ।

उस समय भविष्यदृष्टा पूज्यश्री ने अपना मौन तोडते हुए एक ही बात कहीं... **'राजू अब तैयार हो चूका हैं, अब ज्यादा देर करने जैसी नहीं हैं ।'**

महापुरुष के थोडे से शब्दों में भी अपूर्व शक्ति रही होती है । बोलते कम है और काम ज्यादा होता है । बस, अध्यात्मयोगी युगमहर्षि महापुरुष के अल्प शब्दों ने छगनराजजी के मन पर जादुई असर किया और उन्होंने परिवार के अन्य किसी भी सदस्य से बातचीत किए बिना तत्काल ही पूज्यश्री को अपने सुपुत्र की भागवती-दीक्षा के लिए अपनी सम्मति प्रदान कर दी ! यह था पुण्यपुरुष के अल्पशब्दों का गजब का प्रभाव ! और उसी समय पूज्य गुरुदेव श्री ने दीक्षा का मुहुर्त भी प्रदान कर दिया । माघ शुक्ला त्रयोदशी 2033 के शुभ दिन मुमुक्षु राजू की भागवती दीक्षा निश्चित हो गई ।

पूज्य गुरुदेवश्री की ही असीम कृपा से जन्मभूमि बाली में **वर्धमान तपोनिधि पू. पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.** के वरद हस्तो से मुमुक्षु ने भागवती दीक्षा अंगीकार की । वे अध्यात्मयोगी पूज्य गुरुदेव श्री के अंतिम शिष्य बने और वे **मुनि श्री रत्नसेनविजयजी म.** के नाम से पहिचाने जाने लगे ।

दीक्षा अंगीकार करने के बाद परम तपस्वी **पू.पं. श्री हर्षविजयजी म.सा.** के सानिध्य में लगभग 3 वर्ष तक पाटण में ग्रहण व आसेवन शिक्षा अंगीकार की । संस्कृत-प्राकृत व्याकरण के साथ न्याय, काव्य, प्रकरण ग्रंथ, कर्मग्रंथ, विविध दर्शन, जैन-आगम आदि का गहन अभ्यास किया ।

प्रभावक प्रवचन शैली : विक्रम संवत् 2033 में उनकी भागवती दीक्षा हुई ठीक 13 मास के बाद वर्धमान तपोनिधि **पूज्य पंन्यासप्रवर श्री हर्षविजयजी म.सा.** की शुभ निश्रा में वि.सं. 2034 फाल्गुण शुक्ला चतुर्दशी के दिन पाटण में उनका सबसे पहला प्रवचन हुआ । पूज्य गुरुदेवश्री के शुभाशीष उनके साथ थे, अतः वह प्रवचन अत्यंत ही प्रभावक रहा । उसके बाद वि.सं. 2036 से उनकी पर्युषण प्रवचनमाला एवं वि.सं. 2038 में बाली से उनके चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ हो गए थे । वह प्रवचन गंगा आज भी निरंतर बह रही है ।

श्रोताओं की अंतरंग योग्यता को परखकर, शास्त्रीय पदार्थ को खूब सरल व रोचक शैली में समझाने की कला उन्हें हासिल हुई है । इसके द्वारा वे अनेकों के जीवन परिवर्तन में निमित्त बने है ।

प्रभावक साहित्य सर्जन : वि.सं. 2038 में पूज्य मुनिश्री ने अपने स्वर्गस्थ गुरुदेव श्री के जीवन परिचय के रुप में **'वात्सल्य के महासागर'** पुस्तक का आलेखन किया था, तब से उनकी लेखन यात्रा निरंतर जारी है। उनकी लेखनी में सरलता हैं, रोचकता है और धारा प्रवाह है। उनके द्वारा आलेखित साहित्य पाठकों के अन्तर्गत को इस प्रकार छू लेता हैं कि एक बार पुस्तक प्रारंभ करने के बाद उसे छोडने का मन ही नहीं होता है। साहित्य के विविध विषयों पर उनकी लेखनी चली है, जो आज भी गतिमान है।

परम पूज्य उपकारी गुरुदेवश्री के कालधर्म के बाद पूज्यपाद गच्छाधिपति आचार्य भगवंत, एवं समतानिधि **पू. पंन्यास श्री वज्रसेनविजयजी म.सा.** की आज्ञानुसार पाली, रतलाम, अहमदाबाद, पिंडवाडा, उदयपूर, जामनगर, गिरधरनगर, सुरेन्द्रनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धुलिया, कराड, चिंचवड स्टे., भायंदर, पूना, येरवडा, कालाचौकी (मुंबई) श्रीपालनगर मुंबई तथा कर्जत (जिला रायगढ़ M.S.) भिवंडी आदि क्षेत्रों में चातुर्मास कर दैनिक व जाहिर प्रवचनों के माध्यम से अनेकविध आराधनाएँ कराई है। पूज्य मुनिश्री की प्रेरणा से थाणा में 109 सिद्धितप व 160 सामुदायिक वर्षीतप की आराधनाएँ हुई थी।

अपनी प्रवचन कुशलता के साथ साथ मात्र 24 वर्ष की उम्र में **'वात्सल्य के महासागर'** से प्रारंभ हुई उनकी लेखनी अबाधगति से आगे बढ़ रही है। पूज्य पंन्यासजी म.सा. की अभी तक 202 पुस्तकें प्रकाशित हो चूकी है और अभी भी वह सर्जन यात्रा चालू ही है।

तप साधना में पूज्य मुनिश्री अपने 41 वर्ष के संयम पर्याय में लगभग नियमित एकाशना करते हैं और प्रत्येक सुद पंचमी को ज्ञान की आराधना निमित्त उपवास करते है।

पिंडवाडा, गिरधरनगर, थाणा, कल्याण, दादर, सायन, धूलिया, कराड, भायंदर, चिंचवड स्टे. पूना, येरवडा, श्रीपालनगर तथा भिवंडी में वाचना-श्रेणी का आयोजन कर सैंकडों नवयुवकों के जीवन को संस्कारित किया है।

'अर्हद् दिव्य संदेश' मासिक के माध्यम से पूज्य मुनिश्री के चिंतानात्मक लेख-प्रवचन-उपदेश पिछले 18 वर्षों से नियमित प्रकाशित हो रहे हैं।

अनेकों को धर्मबोध देने वाले **पूज्य मुनिश्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को शासन प्रभावक प्रशांतमूर्ति पूज्यपाद **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय महोदयसूरीश्वरजी म.सा.** की आज्ञानुसार वैशाख वदी 6, वि.सं. 2055 को चिंचवड में गणि पद से अलंकृत किया गया और शासन प्रभावक पूज्य **गच्छाधिपति आचार्यदेव श्रीमद् विजय हेमभूषणसूरीश्वरजी म.सा.** की आज्ञानुसार कार्तिक वदी 5 वि.सं. 2061 के शुभ दिन श्रीपालनगर मुंबई में पंन्यास पद से अलंकृत किया गया।

समुदाय के ज्येष्ठ पूज्यों के निर्णयानुसार एवं निःस्पृह शिरोमणि विद्वद्वर्य **पू.पंन्यासप्रवर श्री वज्रसेनविजयजी गणिवर्य श्री** की आज्ञा एवं आशीर्वाद से कोंकण शत्रुंजय थाणा तीर्थ में पोष वद-1, वि.सं. 2067, दि. 20-1-2011, गुरुवार के शुभदिन गुरु पुष्यामृतसिद्धियोग में आठ दिन के ऐतिहासिक महामहोत्सव के साथ शासन प्रभावक **पूज्यपाद आचार्यदेव श्रीमद् विजय कनकशेखरसूरीश्वरजी म.सा.** के वरद् हस्तों से **प.पू.मरुधररत्न गोडवाड के गौरव पूज्य पंन्यास प्रवर श्री रत्नसेनविजयजी म.सा.** को **'गुरु गौतम नगरी'** (शिवाजी मैदान) में हजारों की जनमेदिनी के बीच **आचार्य पद** पर प्रतिष्ठित किया गया, तब से वे **पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा.** के नाम से जाने-पहिचाने लगे ।

आचार्य पदारुढ होने के बाद पूज्यश्री के वरद हस्तों से जैन-शासन की सुंदर आराधना प्रभावना हो रही है ।

अत्यंत ही सरल, रोचक व प्रभावपूर्ण प्रवचनशैली के द्वारा के श्रोताओं के अन्तर्मन को छू लेते है । उनके उपदेश से अनेक भूले भटकें युवानों को नई दिशा प्राप्त हुई है । वाचनाश्रेणी आदि के माध्यम से उन्होंने तरुण पीढी के जीवन को सुसंस्कारों से सुवासित किया है ।

वे कुशल विवेचनकार भी है : सामायिक सूत्र, चैत्यवंदन सूत्र, आलोचना सूत्र, श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र, आनंदघन चोबीसी, आनंदघनजी के पद, पू. यशोविजयजी म. की चोबीसी, अमृतवेल की सज्झाय आदि के ऊपर उन्होंने खूब सुंदर व सरलशैली में विवेचन भी किया हैं ।

वे कुशल अवतरणकार भी है : जैन रामायण और महाभारत पर दिए गए उनके, जाहिर प्रवचनों का उन्होंने स्वयं ने आलेखन भी किया है । तथा अपने गुरुदेव एवं प्रगुरुदेव के प्रवचनों का सुंदर शैली में अवतरण भी किया है ।

वे कुशल भावानुवादक हैं : शांत सुधारस, श्राद्धविधि, वैराग्य शतक, इन्द्रिय पराजय शतक, संबोध सित्तरी, गुणस्थानक क्रमारोह, छह कर्मग्रंथ, जीव विचार, नवतत्त्व, दंडक, लघु संग्रहणी, तीन भाष्य आदि प्राचीन ग्रंथों का उन्होंने सरस भावानुवाद एवं विवेचन भी किया है ।

वे प्रभावक कथा-आलेखक भी हैं : कर्मन् की गत न्यारी (महाबल-मलयासुंदरी चारित्र) आग और पानी (समरादित्य चरित्र) कर्म को नहीं शर्म (भीमसेन चरित्र) तब आंसु भी मोती बन जाते है (सागरदत्त चरित्र) कर्म नचाए नाच (तरंगवती चरित्र) जैसे अनेक चरित्र ग्रंथों का धारावाहिक कहानी का उपन्यास शैली में आलेखन भी किया है ।

वे प्रसिद्ध चिंतक भी है : प्रवचन मोती, प्रवचन रत्न, चिंतन मोती, प्रवचन के बिखरे फूल, अमृत की बुंदे, युवा चेतना जैसे प्रकाशनों में उनके हृदय स्पर्शी चिंतन भी प्रस्तुत हुए है ।

वे कुशल प्रवचनकार भी हैं : सफलता की सीढ़ियाँ, श्रावक कर्तव्य, नवपद प्रवचन, प्रवचन-धारा, आनंद की शोध में उनके प्रवचनों का सुंदर संकलन है।

वे प्रसिद्ध कहानीकार भी हैं : प्रिय कहानियाँ, मनोहर कहानियाँ, ऐतिहासिक कहानियाँ, मधुर-कहानियाँ, प्रेरक कहानियाँ सरस कहानियाँ आदि में उन्होंने अत्यंत ही सुंदर हृदयस्पर्शी कहानियों का आलेखन किया है।

जैन शासन के ज्योतिर्धर, महान् ज्योतिर्धर, तेजस्वी सितारें, गौतमस्वामी-जंबुस्वामी आदि में उन्होंने जैन शासन के महान् प्रभावक पुरुषों के जीवन चरित्रों का सुंदर आलेखन भी किया है।

वे कुशल संपादक भी है : युवाचेतना विशेषांक, जीवन निर्माण विशेषांक, आहार विज्ञान विशेषांक, श्रावकाचार विशेषांक, श्रमणाचार विशेषांक, सन्नारी विशेषांक, राजस्थान तीर्थ विशेषांक जैसे अनेक विशेषांकों का सफल संपादन भी किया है।

उनके उपदेश से अनेक संघों में अनेकविध तपश्चर्याएं, अनेकविध भाव-यात्राएँ, तप-जप आदि अनुष्ठान, उपधान, प्रतिष्ठा, छ'री पालित संघ, उद्यापन, जीवित महोत्सव आदि संपन्न हुए है। उनके द्वारा आलेखित साहित्य भारत भर के हिन्दी भाषी क्षेत्रों में खूब चाव से पढा जाता है।

सन्मार्ग की राह बतानेवाला उनका साहित्य अनेकों के लिए सफल मार्गदर्शक बना है। उनका साहित्य नूतन प्रवचनकारों के लिए भी खूब उपयोगी बना है।

निवेदक : **दिव्य संदेश प्रकाशन ट्रस्ट मंडल**

अनुक्रमणिका

	क्या	कहां
1.	जीव तत्त्व	13
2.	अजीव तत्त्व	31
3.	पुण्य तत्त्व	55
4.	पाप तत्त्व	64
5.	आस्त्रव तत्त्व	81
6.	संवर तत्त्व	88
7.	निर्जरा तत्त्व	104
8.	बंध तत्त्व	112
9.	मोक्ष तत्त्व	125

प्रभावक प्रवचनकार एवं जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर प.पू. आचार्यदेव
श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. की साहित्य-साधना

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
1.	वात्सल्य के महासागर	2038	अध्यात्मयोगी पू. गुरुदेव का जीवन परिचय	बाली
2.	सामायिक सूत्र विवेचना	2039	सामायिक सूत्रों का विवेचन	
3.	चैत्यवंदन सूत्र विवेचना	2040	चैत्यवंदन के सूत्रों का विवेचन	
4.	आलोचना सूत्र विवेचना	2040	इच्छामिठामि आदि सूत्रों का विवेचन	
5.	श्रावक प्रतिक्रमण सूत्र विवेचन	2041	वंदित्तु सूत्र पर विस्तृत विवेचन	
6.	कर्मन् की गत न्यारी	2041	महाबल-मलयासुंदरी का चरित्र	पूना
7.	आनंदघन चौबीसी विवेचन	2041	पू. आनंदघनजी के 24 स्तवनों का विवेचन	
8.	मानवता तब महक उठेगी	2041	मार्गानुसारिता के 18 गुणों का विवेचन	
9.	मानवता के दीप जलाएं	2043	मार्गानुसारिता के 17 गुणों का विवेचन	
10.	जिंदगी जिंदादिली का नाम है	2044	पू.पादलिप्तसूरिजी आदि चरित्र	कैलास नगर राज.
11.	चेतन ! मोहनींद अब त्यागो	2044	'चेतन ज्ञान अजुवालिए' पर विवेचन	रानीगांव
12.	युवानो ! जागो	2045	धुम्रपान आदि पर विवेचन	रानीगांव
13.	शांत सुधारस-विवेचन भाग 1	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
14.	शांत सुधारस- विवेचन भाग 2	2045	8 भावनाओं पर विवेचन	पाली
15.	रिमझिम रिमझिम अमृत बरसे	2045	लेखों का संग्रह	जयपूर
16.	मृत्यु की मंगल यात्रा	2046	'मृत्यु' विषयक पत्रों का संग्रह	सेवाडी
17.	जीवन की मंगल यात्रा	2046	जीवन की सफलता के उपाय	पिंडवाडा
18.	महाभारत और हमारी संस्कृति-1	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	जयपुर
19.	महाभारत और हमारी संस्कृति-2	2046	महाभारत पर जाहिर-प्रवचन	पिंडवाडा
20.	तब चमक उठेगी युवा पीढी	2047	नव युवकों को मार्गदर्शन	पिंडवाडा
21.	The Light of Humanity	2047	मार्गानुसारित के गुणों का वर्णन	उदयपुर
22.	अंखियाँ प्रभु दर्शन की प्यासी	2047	पू.यशो.वि. की चौबीसी पर विवेचन	शंखेश्वर
23.	युवा चेतना विशेषांक	2047	व्यसनादि पर लेखों का संग्रह	उदयपुर
24.	तब आंसू भी मोती बन जाते है	2047	सागरदत्त चरित्र	उदयपुर
25.	शीतल नहीं छाया रे (गुज.)	2047	गुजराती वार्ताओं का संग्रह	
26.	युवा संदेश	2048	नवयुवकों को शुभ संदेश	पाटण
27.	रामायण में संस्कृति भाग 1	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	राजकोट
28.	रामायण में संस्कृति-भाग 2	2048	रतलाम में दिए जाहिर-प्रवचन	जामनगर
29.	जीवन निर्माण विशेषांक	2049	सद्गुणोपासना संबंधी लेख	जामनगर
30.	श्रावक जीवन दर्शन	2049	श्राद्धविधि ग्रंथ का हिन्दी अनुवाद	गिरधरनगर
31.	The Message for the youth	2049	युवा संदेश का अंग्रेजी अनुवाद	गिरधरनगर
32.	यौवन सुरक्षा विशेषांक	2049	ब्रह्मचर्य विषयक लेखों का संग्रह	गिरधरनगर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
33.	आनंद की शोध	2050	5 जाहिर प्रवचन	गिरधरनगर
34.	आग और पानी भाग-1	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
35.	आग और पानी भाग-2	2050	समरादित्य चरित्र कथा	माटुंगा
36.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	2068	शत्रुंजय महिमा एवं यात्रा विधि	पालीताणा
37.	सवाल आपके, जवाब हमारे	2050	जैन धर्म विषयक प्रश्नोत्तरी	माटुंगा
38.	जैन विज्ञान	2050	नव तत्व के पदार्थों पर विवेचन	थाणा
39.	आहार विज्ञान विशेषांक	2050	जैन आहार पद्धति	थाणा
40.	How to live true life ?	2050	जीवन की मंगल यात्रा का अनुवाद	थाणा
41.	भक्ति से मुक्ति	2050	प्रभु भक्ति के स्तवन आदि	थाणा
42.	आओ ! प्रतिक्रमण करे	2051	राई व देवसी आदि प्रतिक्रमण	थाणा
43.	प्रिय कहानियाँ	2051	कहानियों का संग्रह	मुलुंड
44.	अध्यात्म योगी पूज्य गुरुदेव	2051	पू. श्री के जीवन विषयक लेख	भायखला
45.	आओ ! श्रावक बने	2051	श्रावक के 12 व्रतों का निर्देश	कल्याण
46.	गौतम स्वामी-जंबुस्वामी	2051	महापुरुषों का विस्तृत जीवन	कल्याण
47.	जैनाचार विशेषांक	2051	जैन आचार विषयक लेख	कल्याण
48.	हंसश्राद्धव्रत दीपिका (गु.)	2051	श्रावक के 12 व्रत	कल्याण
49.	कर्म को नहीं शर्म	2052	भीमसेन चरित्र	कुर्ला
50.	मनोहर कहानियाँ	2052	प्रेरणादायी 90 कहानियाँ	कुर्ला
51.	मृत्यु-महोत्सव	2052	मृत्यु पर विवेचन	दादर
52.	Chaitya Vandan Sootra	2052	अंग्रेजी हिन्दी में मूल सूत्र	
53.	सफलता की सीढियाँ	2052	श्रावक के 21 गुणों पर विवेचन	दादर
54.	श्रमणाचार विशेषांक	2052	साधु जीवनचर्या विषयक	
55.	विविध देववंदन	2052	दीपावली आदि देववंदन	भायंदर
56.	नवपद-प्रवचन	2052	नवपद के प्रवचन	चीराबाजार
57.	ऐतिहासिक कहानियाँ	2052	भरत आदि 19 महापुरुष	सायन
58.	तेजस्वी सितारे	2053	स्थूलभद्र आदि छ महापुरुष	सायन
59.	सन्नारी विशेषांक	2053	सन्नारी विषयक लेख संग्रह	सायन
60.	मिच्छामि दुक्कडम्	2053	क्षमापना पर उपदेश	सायन
61.	Panch Pratikraman Sootra	2053	पंच प्रतिक्रमण मूल सूत्र	सायन
62.	जीवन ने जीवी तूं जाण (गुज.)	2053	श्रद्धांजलि लेखों का संग्रह	सायन
63.	आवो ! वार्ता कहुं (गुज.)	2053	विविध वार्ताओं का संग्रह	सायन
64.	अमृत की बुंदे	2054	प्रेरणादायी उपदेश	बांद्रा (ई)
65.	श्रीपाल-मयणा	2054	श्रीपाल और मयणा सुंदरी	थाणा
66.	शंका और समाधान-भाग-1	2054	1200 प्रश्नों के जवाब	थाणा
67.	प्रवचन धारा	2054	पांच जाहिर प्रवचन	धूले
68.	राजस्थान तीर्थ विशेषांक	2054	राजस्थान के तीर्थ	धूले

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
69.	क्षमापना	2054	क्षमापना संबंधी चिंतन	धूले
70.	भगवान महावीर	2054	महावीर प्रभु के 27 भव	धूले
71.	आओ ! पौषध करें	2055	पौषध की विधि	चिंचवड
72.	प्रवचन मोती	2054	उपदेशात्मक वचन	चिंचवड
73.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	2055	चैत्यवंदन-स्तुति संग्रह	चिंचवड
74.	श्रावक कर्तव्य भाग 1	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
75.	श्रावक कर्तव्य भाग 2	2055	श्रावक के 18 कर्तव्यों पर विवेचन	कराड
76.	कर्म नचाए नाच	2056	महासती तरंगवती चरित्र	सोलापूर
77.	माता-पिता	2056	संतानों के कर्तव्य	सोलापूर
78.	प्रवचन-रत्न	2056	प्रवचनों का आंशिक अवतरण	पूना
79.	आओ ! तत्वज्ञान सीखे !	2056	जैन तत्वज्ञान के रहस्य	चिंचवड स्टे.
80.	क्रोध आबाद तो जीवन बरबाद	2056	क्रोध के कटु परिणाम	चिंचवड स्टे.
81.	जिन शासन के ज्योतिर्धर	2057	प्रभावक महापुरुष	चिंचवड गांव
82.	आहार क्यों और कैसे ?	2057	आहार संबंधी जानकारी	दहीसर
83.	महावीर प्रभु का सचित्र जीवन	2057	सचित्र संपूर्ण जीवन	थाणा
84.	प्रभु पूजन सुख संपदा	2057	प्रभु दर्शन पूजन विधि	भिवंडी
85.	भाव श्रावक	2057	भाव श्रावक के 17 गुणों पर विवेचन	भायंदर
86.	महान् ज्योतिर्धर	2057	रामचंद्रसूरीश्वरजी का जीवन	भायंदर
87.	संतोषी नर सदा सुखी	2058	लोभ के कटु परिणाम	गोरेगांव
88.	आओ ! पूजा पढाए !	2058	चोसठ प्रकारी पूजाओं के अर्थ	गोरेगांव
89.	शत्रुंजय की गौरव गाथा	2058	शत्रुंजय के 16 उद्धार	भायंदर
90.	चिंतन मोती	2058	विविध चिंतनों का संग्रह	टिंबर मार्केट-पूना
91.	प्रेरक कहानियाँ	2058	प्रेरणादायी कहानियाँ व नाटक	पूना
92.	आईवडिलांचे उपकार	2058	'माता-पिता' का मराठी अनुवाद	पूना
93.	महासतियों का जीवन संदेश	2059	सुलसा आदि के चरित्र	देहुरोड
94.	आनंदघनजी पद विवेचन	2059	आनंदघनजी के 18 पदों पर विवेचन	पूना
95.	Duties towards Parents	2059	माता-पिता का अंग्रेजी	पूना
96.	चौदह गुणस्थानक	2059	'गुणस्थानक क्रमारोह विवेचन	येरवडा
97.	पर्युषण अष्टाह्निक प्रवचन	2059	पर्युषणपर्व के प्रवचन	येरवडा
98.	मधुर कहानियाँ	2059	कुमारपाल आदि का चरित्र	येरवडा
99.	पारस प्यारो लागे	2060	पार्श्व प्रभु के 10 भव आदि	येरवडा
100.	बीसवीं सदी के महानयोगी	2060	पूं.पं.श्री भद्रंकरविजयजी स्मृति ग्रंथ	दीपक ज्योतिटॉवर
101.	अमरवाणी	2060	पूं.पं. श्री भद्रंकरविजयजी म. के प्रेरक प्रवचन	दीपक ज्योतिटॉवर
102.	कर्म विज्ञान	2060	'कर्म विपाक' पर विवेचन	दीपक ज्योतिटॉवर
103.	प्रवचन के बिखरे फूल	2061	प्रवचन के सारभूत अवतरण	बोरीवली (ई)

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
104.	कल्पसूत्र के हिन्दी प्रवचन	2061	कल्पसूत्र पर दिए प्रवचन	थाणा
105.	आदिनाथ शांतिनाथ चरित्र	2061	प्रभु के भवों का वर्णन	थाणा
106.	ब्रह्मचर्य	2061	ब्रह्मचर्य पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
107.	भाव सामायिक	2061	सामायिक सूत्रों पर विवेचन	श्रीपालनगर, मुंबई
108.	राग म्हणजे आग	2061	'क्रोध आबाद' का मराठी	श्रीपालनगर, मुंबई
109.	आओ ! उपधान-पौषध करे	2062	उपधान संबंधी विस्तृत जानकारी	भिवंडी
110.	प्रभो ! मन मंदिर पधारो	2062	प्रभु भक्ति विषयक चिंतन	आदीश्वर धाम
111.	सरस कहानियाँ	2062	नल-दमयंती आदि कहानियाँ	परेल मुंबई
112.	महावीर वाणी	2062	आगमोक्त सूक्तियों पर विवेचन	कर्जत
113.	सद्गुरु उपासना	2062	सद्गुरु का स्वरुप	कर्जत
114.	चिंतनरत्न	2062	विविध चिंतन	कर्जत
115.	जैनपर्व प्रवचन	2063	कार्तिक पूनम आदि पर्वों के प्रवचन	कर्जत
116.	नींव के पत्थर	2063	अध्यात्म प्राप्ति के 15 गुण	आदीश्वर धाम
117.	विखुरलेले प्रवचन मोती	2063	प्रवचन के बिखरे फूल का मराठी	वणी
118.	शंका समाधान भाग-2	2063	1200 प्रश्नों के जवाब	आदीश्वर धाम
119.	श्रमण शिल्पी प्रेमसूरीश्वरजी	2063	पूज्यश्री का संक्षिप्त जीवन	भायंदर
120.	भाव चैत्यवंदन	2063	जग चिंतामणि से सूत्रों पर विवेचन	भिवंडी
121.	Youth will shine then	2063	'तब चमक उठेगी' का अंग्रेजी अनुवाद	भिवंडी
122.	नव तत्त्व विवेचन	2063	'नवतत्त्व' पर विवेचन	भिवंडी
123.	जीव विचार विवेचन	2063	'जीव विचार' पर विवेचन	भिवंडी
124.	भव आलोचना	2064	श्रावक जीवन संबंधी आलोचना स्थल	
125.	विविध पूजाएं	2064	नवपद, आदि पूजाओं का भावानुवाद	आदीश्वर धाम
126.	गुणवान बनो	2064	18 पाप स्थानकों पर विवेचन	महावीर धाम
127.	तीन भाष्य	2064	तीन भाष्यों का विवेचन	आदीश्वर धाम
128.	विविध तपमाला	2064	प्रचलित तपों की विधियां	डोंबिवली
129.	महान् चरित्र	2064	पेथडशा आदि का जीवन	कल्याण
130.	आओ ! भावयात्रा करे	2064	शत्रुंजय आदि भाव यात्राएं	कल्याण
131.	मंगल स्मरण	2064	नवस्मरण आदि संग्रह	कल्याण
132.	भाव प्रतिक्रमण भाग-1	2065	वंदित्तु तक हिन्दी विवेचन	विक्रोली
133.	भाव प्रतिक्रमण भाग-2	2065	आयरिय उवज्झाए से विवेचन	विक्रोली
134.	श्रीपालरास और जीवन	2065	श्रीपाल मयणा का रास एवं जीवन	थाणा
135.	दंडक विवेचन	2065	दंडक सूत्र पर हिन्दी विवेचन	कुर्ला
136.	पर्युषण प्रतिक्रमण करें	2065	संवत्सरी प्रतिक्रमण विधि	भिवंडी
137.	सुखी जीवन की चाबियाँ	2066	मार्गानुसारिता के 35 गुण (कमलदर्शन)	मुंबई
138.	पाँच प्रवचन	2066	पाँच जाहिर प्रवचन	मोहना
139.	सज्झायों का स्वाध्याय	2066	सज्झायों का संग्रह	मोहना

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
140.	वैराग्य शतक	2066	वैराग्य पोषक विवेचन	मलाड
141.	गुणानुवाद	2066	10 आचार्यों का जीवन परिचय	रोहा
142.	सरल कहानियाँ	2066	प्रेरणादायी कथाएं	रोहा
143.	सुख की खोज	2066	सुख संबंधी चिंतन	रोहा
144.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-1	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-1	थाणा
145.	आओ ! संस्कृत सीखें भाग-2	2067	सिद्धहैम प्रवेशिका-भाग-2	थाणा
146.	आध्यात्मिक पत्र	2067	पू.पं.श्री भद्रंकरविजयजी म.सा. के पत्रों का हिन्दी अनुवाद	थाणा
147.	शंका और समाधान भाग-3	2067	लगभग छोटे मोटे 750 प्रश्नों के जवाब	थाणा
148.	जीवन शणगार प्रवचन	2067	संस्कार शिबिर-रोहा के प्रवचन	धारावी
149.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-1	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
150.	प्रात:स्मरणीय-महापुरुष भाग-2	2067	महापुरुषों के चरित्र	भायंदर
151.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-1	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
152.	प्रात:स्मरणीय-महासतियाँ भाग-2	2067	महासतियों के चरित्र	भायंदर
153.	ध्यान साधना	2068	ध्यान शतक-आराधना धाम	हालार
154.	श्रावक आचार दर्शक	2068	धर्म संग्रह का हिन्दी अनुवाद	राजकोट
155.	अध्यात्माचा सुगंध (मराठी)	2068	नीव के पत्थर का मराठी अनुवाद	नासिक
156.	इन्द्रिय पराजय शतक	2068	वैराग्य वर्धक	पालीताणा
157.	जैन शब्द कोष	2068	शास्त्रिय शब्दों के अर्थ	पालीताणा
158.	नया दिन-नया संदेश	2069	तिथि अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा
159.	तीर्थ यात्रा	2069	शत्रुंजय गिरनार तीर्थ महिमा	हस्तगिरि तीर्थ
160.	महामंत्र की साधना	2069	चिन्तन	पिन्डवाडा
161.	अजातशत्रु अणगार	2069	श्रद्धाजंली लेख	भद्रंकर नगर-लुणावा
162.	प्रेरक प्रसंग	2069	कहानियां	बाली
163.	The way of Metaphysical Life	2069	नीव के पत्थर का English अनुवाद	बाली
164.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-1	2070	प्राकृत प्रवेशिका	सेसली तीर्थ
165.	आओ ! प्राकृत सीखे भाग-2	2070	Guide Book	सेसली तीर्थ
166.	आओ ! भाव यात्रा करे ! भाग-2	2070	68 तीर्थ भावयात्रा	बेडा तीर्थ
167.	Pearls of Preaching	2070	प्रवचन मोती का अनुवाद	नाकोडा तीर्थ
168.	नवकार चिंतन	2070	चिंतन	उदयपूर
169.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-1	2070	दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
170.	आओ दुर्ध्यान छोडे ! भाग-2	2070	63 प्रकार के दुर्ध्यान विषय पर विवेचन	घाणेराव
171.	परम तत्त्व की साधना भाग-1	2071	चिन्तन कीर्ति स्थंभ	घाणेराव
172.	रत्न संदेश भाग-1	2071	दैनिक सुविचार	बाली
173.	गागर मे सागर-1	2071	बाली तथा घाणेराव के प्रवचन अंश	पालीताणा
174.	रत्न संदेश भाग-2	2071	तारीख अनुसार दैनिक सुविचार	पालीताणा

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
175.	My Parents	2071	माता-पिता का English अनुवाद	पालीताणा
176.	श्रावकाचार प्रवचन-1	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
177.	श्रावकाचार प्रवचन-2	2071	श्रावक कर्तव्य	पालीताणा
178.	परम तत्त्व की साधना भाग-2	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
179.	परम तत्त्व की साधना भाग-3	2071	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	पालीताणा
180.	बाली चातुर्मास विशेषांक	2069	बाली चातुर्मास	बाली
181.	उपधान स्मृति विशेषांक	2072	पालीताणा में उपधान	पालीताणा
182.	नवपद आराधना	2072	नवपद के 11 प्रवचन	लोढा धाम
183.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-1	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	गुंदेचा गार्डन
184.	हेमचंद्राचार्य और कुमारपाल	2072	जीवन चरित्र	डोंबिवली
185.	आईचे वात्सल्य	2072	माता-पिता का मराठी अनुवाद	नासिक
186.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-2	2072	पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	नासिक
187.	जैन-संघ व्यवस्था	2072	देव द्रव्य आदि की व्यवस्था	नासिक
188.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-1	2074	1 से 16 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
189.	चौबीस तीर्थंकर चरित्र भाग-2	2074	17 से 24 तीर्थंकरों के चरित्र	नासिक
190.	संस्मरण	2073	संयम जीवन के अनुभव	गोकाक
191.	संबोह सित्तरि	2073	वैराग्य का अमृतकुंभ	गोकाक
192.	विवेकी बनों !	2073	विवेक गुण पर विवेचन	राणे बेन्नुर
193.	आत्म उत्थान का मार्ग भाग-3	2073	तत्त्व चिंतन	बेंगलोर
194.	लघु संग्रहणी	2073	जैन भूगोल	बेंगलोर
195.	समाधि मृत्यु	2073	मृत्यु समय समाधि के उपाय	बेंगलोर
196.	कर्मग्रंथ भाग-2	2073	दूसरे व तीसरे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
197.	कर्मग्रंथ भाग-3	2073	चौथे कर्मग्रंथ का विवेचन	बेंगलोर
198.	आदर्श कहानियाँ	2074	प्रेरणादायी कहानियाँ	बेंगलोर
199.	प्रवचन वर्षा	2074	प्रवचन के बिंदु	सुशीलधाम
200.	अमृत रस का प्याला	2074	199 पुस्तकों का सार	बेंगलोर
201.	महान् योगी पुरुष	2074	पं. भद्रंकरविजयजी के जीवन प्रसंग	बेंगलोर
202.	बारह चक्रवर्ती	2074	बारह चक्रवर्तियों का जीवन	मैसूर
203.	प्रेरक प्रवचन	2074	प्रेरणादायी प्रवचन	मैसूर
204.	पाँचवाँ-कर्मग्रंथ	2075	कर्मग्रंथ का विवेचन	मैसूर
205.	छठा-कर्मग्रंथ	2074	हिन्दी में विवेचन	बेंगलोर
206.	Celibacy	2074	ब्रह्मचर्य का अनुवाद	सेलम (T.N.)
207.	मंत्राधिराज प्रवचन सार	2074	पू.भद्रंकर वि. के प्रवचनांश	ईरोड (T.N.)
208.	श्रमण क्रिया के मुख्य सूत्र	2075	साधु जीवन के सूत्रों पर विवेचन	कोयम्बतूर
209.	मोक्ष मार्ग के कदम	2075	मोक्ष मार्ग के 21 गुण	कोयम्बतूर
210.	शंका समाधान भाग-4	2075	मननीय प्रश्नों के जवाब	कोयम्बतूर

नं.	पुस्तक नाम	प्रकाशन वर्ष वि.सं.	विषय	विमोचन स्थल
210.	शंका समाधान भाग-4	2075	मननीय प्रश्नों के जवाब	कोयम्बतूर
211.	व्यसन-मुक्ति	2076	सात व्यसन के अनर्थ	चैनइ
212.	गणधर-संवाद	2076	गौतम स्वामि आदि 11 गणधर प्रतिबोध कथा	चैनइ
213.	New Message for a New Day	2077	सुवाक्य संकलन (अंग्रेजी)	चैनइ
214.	चिंतन का अमृत-कुंभ	2077	पूज्यश्री का मार्मिक चिंतन	बेंगलोर
215.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव-बलदेव	2077	चरित्र ग्रंथ	बेंगलोर
216.	अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार (भाग-1)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (कर्णाटक)
217.	अचिंत्य चिंतामणि–श्री नवकार (भाग-2)	2077	नमस्कार महामंत्र की महिमा	बल्लारी (कर्णाटक)
218.	हार्दिक श्रद्धांजलि	2077	पंन्यासजी म.सा. के शिष्य प्रशिष्य आदि के जीवन चरित्र	बल्लारी (कर्णाटक)
219.	सुखी जीवन के Mile-Stone	2077	प्रवचन बिन्दू	बीजापूर (कर्णाटक)
220.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9 तक)	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
221.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40 तक)	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
222.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57 तक)	2077	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
223.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80 तक)	2078	महापुरुषों के चरित्र	बीजापूर (कर्णाटक)
224.	अर्हद् दिव्य-संदेश (दीक्षा-विशेषांक)	2078	संयम जीवन की महत्ता एवं मु. विमलपुण्यविजयजी की दीक्षा प्रसंग	इचलकरंजी (M.S.)
225.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	2078	बेंगलोर में हुए प्रवचन	कराड (M.S.)
226.	श्री नमस्कार महामंत्र	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	बोरीवली (ई)
227.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	2078	पू.पं.श्री भद्रंकरवि. का चिंतन	भायंदर (W)
228.	आठ कर्म निवारण पूजाएं	2078	64 प्रकारी पूजा का विवेचन	भायंदर
229.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-1)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
230.	तत्त्वार्थ-सूत्र (भाग-2)	2078	तत्त्वार्थ सूत्र का हिन्दी विवेचन	भायंदर
231.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	2078	सामायिक विधि एवं श्रेणी	भायंदर
232.	वैराग्य-वाणी	2079	पू.आ.श्री रामचन्द्रसूरिजी के प्रवचन	भायंदर

परम पूज्य आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म. सा. का संक्षिप्त परिचय

गृहस्थ नाम	: राजु (राजमल चोपड़ा)
माता का नाम	: चंपाबाई
पिता का नाम	: छगनराजजी गेनमलजी चोपड़ा
जन्मभूमि	: बाली (राज.)
जन्मतिथि	: भादों सुद-3, संवत् 2014 दि. 16-9-58
बचपन में धार्मिक अभ्यास	: पंच प्रतिक्रमण-नवस्मरण आदि
ब्रह्मचर्यव्रत स्वीकार	: 18 जून 1974
व्यावहारिक अभ्यास	: 1st year B.Com. (पार्श्वनाथ उम्मेद कॉलेज फालना-राज.)
दीक्षादाता	: पू.पं. श्री हर्षविजयजी गणिवर्य
गुरुदेव	: अध्यात्मयोगी **पू. पंन्यास श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य**
दीक्षादिवस	: माघ शुक्ला 13, संवत् 2033 दि. 2-2-1977
समुदाय	: शासन प्रभावक पू.आचार्यदेव **श्रीमद् विजय रामचन्द्रसूरीश्वरजी म.सा.**
दीक्षादिवस विशेषता	: भारत भर में लगभग 50 से अधिक दीक्षाएँ
108 मुमुक्षु वरघोड़ा	: 9 जनवरी 1977, मुंबई
दीक्षा स्थल	: न्याति नोहरा-बाली राज.
दीक्षा समय उम्र	: 18 वर्ष
बड़ी दीक्षा	: फाल्गुन शुक्ला 12, संवत् 2033
बड़ी दीक्षा स्थल	: घाणेराव (राज.)
प्रथम चातुर्मास	: संवत् 2033 पाटण पू.पं. श्री हर्षविजयजी के सान्निध्य में

◆ **अभ्यास :** प्रकरण, भाष्य, 6 कर्मग्रंथ, कम्मपयडी, पंचसंग्रह, न्याय, काव्य, कोश, संस्कृत-प्राकृत व्याकरण, संस्कृत-प्राकृत साहित्य वाचन, ज्योतिष, आगम वाचन आदि.

◆ **भाषाबोध :** हिन्दी, अंग्रेजी, गुजराती, राजस्थानी, संस्कृत, प्राकृत, मराठी आदि

◆ **प्रथम प्रवचन :** फागुन सुदी 14, संवत् 2034 पाटण (गुजरात)

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन प्रारंभ :** बाली संवत् 2038

◆ **चातुर्मासिक प्रवचन :** बाली (दो बार), पाली (दो बार), रतलाम, अहमदाबाद (ज्ञानमंदिर), पाटण, सुरेन्द्रनगर, रानीगाँव, पिंडवाड़ा, उदयपुर, जामनगर, अहमदाबाद (गिरधरनगर), थाणा, कल्याण, दादर (मुंबई), सायन (मुंबई), धूलिया, कराड़, चिंचवड़, भायंदर, पूना, येरवड़ा, दीपक ज्योति टॉवर, श्रीपाल नगर, कर्जत, भिवंडी (दो बार), कल्याण (दो बार), रोहा, भायंदर (तीन बार), पालीताणा (दो बार), नासिक, बेंगलोर, मैसूर, कोयम्बतूर, बीजापुर ।

◆ **विहार क्षेत्र :** राजस्थान, गुजरात, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, कर्णाटक, तामिलनाडु आदि

◆ **पाद विहार :** आजतक लगभग 45,000 K.M.

◆ **छ'री पालक निश्रादाता :** उदयपुर से केशरियाजी, गिरधरनगर से शंखेश्वर, धूलिया से नेर, कराड़ से कुंभोज, सोलापुर से बार्शी, भिवंडी से महावीर धाम, कर्जत से मानस मंदिर, हस्तगिरि से शत्रुंजय-गिरनार, सेवाडी से राणकपूर (पंचतीर्थी), शत्रुंजय बारह गाऊ, बेंगलोर से सुशीलधाम, कोयम्बत्तूर से अव्वलपुंदरी ।

◆ **प्रथम पुस्तक आलेखन : वात्सल्य के महासागर** संवत् 2038

◆ **अद्यावधि प्रकाशित पुस्तकें :** (232) लगभग

◆ **संस्कृत साहित्य संपादन-सह संपादन :** सिद्ध हैमशब्दानुशासनम्-बृहद्वृत्ति लघु न्यास सह, पांडवचरित्र आदि

◆ **शिष्य-प्रशिष्य : स्व. मुनि श्री उदयरत्नविजयजी, स्व.मुनि श्री केवलरत्नविजयजी, स्व.मुनि श्री कीर्तिरत्नविजयजी, मुनि श्री प्रशांतरत्नविजयजी, मुनि श्री शालिभद्रविजयजी, मुनि श्री स्थूलभद्रविजयजी, स्व. मुनि श्री यशोभद्रविजयजी, बाल मुनि श्री विमलपुण्यविजयजी म. ।**

◆ **उपधान निश्रा दाता :** कुर्ला, धुले, येरवडा, आदीश्वर धाम (दो बार), कर्जत, विक्रोली, मोहना, पालीताणा (दो बार), सेसली, कीर्तिस्तंभ (घाणेराव) नासिक, सुशीलधाम (बेंगलोर), मैसूर, महावीर धाम ।

◆ **गणि पदवी :** वैशाख वदी-6, संवत् 2055, दि.7-5-1999 चिंचवड गाँव, पूना ।

◆ **पंन्यास पदवी :** कार्तिक वदी-5, संवत् 2061, दि.2-12-2004 श्रीपालनगर, मुंबई ।

◆ **आचार्य पदवी :** पौष वदी-1, संवत् 2067, दि.20-1-2011 थाणा ।

विवेचनकार की कलम से

'जिनेश्वर भगवंत द्वारा निर्दिष्ट जीव आदि नौ तत्त्वों को जानना, समझना सम्यग्ज्ञान है ।'

'जो ज्ञान आत्मा में रहे अज्ञान को दूर करे, राग-द्वेष की परिणति को दूर करे और आत्म-हित के लिए प्रेरित करे, वह सम्यग्ज्ञान है ।

आज देश-दुनिया में ज्ञान तो बढ़ रहा है, परंतु लगभग मिथ्याज्ञान का ही प्रचार-प्रसार हो रहा है, इसके फलस्वरूप राग-द्वेष की परिणतियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं, इसी कारण सर्वत्र संघर्ष और अशांति का वातावरण है । सम्पूर्ण विश्व में आज अशांति की आग धधक रही है और इसका मुख्य कारण सम्यग्ज्ञान का अभाव और मिथ्या ज्ञान का जोरशोर से प्रचार-प्रसार है ।

जीव आदि नौ तत्त्वों को जानने से जीवन में से हेय का त्याग होता है, उपादेय में प्रवृत्ति होती है, इसके परिणामस्वरूप जीवन में शांति बढ़ती है ।

आज तक हमारी आत्मा अनंतकाल से चतुर्गति रूप संसार में परिभ्रमण कर रही है । इस सब का मूल अपने आत्म-स्वरूप की अज्ञानता ही है ।

सारी दुनिया को जानने-पहिचानने वाली यह आत्मा अपने आपको ही भूल गई है । 'मैं कौन हूँ ?' इसका अभी तक सही जवाब नहीं खोज पाई है । 'मैं कमलेश हूँ ।' अरे भाई ! यह तेरा वास्तविक स्वरूप नहीं है । यह तो लोक व्यवहार चलाने के लिए किसी का दिया हुआ तुम्हारा नाम है । यह नाम तो इस देह का रखा है; जबकि तू तो उस देह से सर्वथा भिन्न अजर-अमर-अविनाशी है ।

'अपने स्वरूप की अज्ञानता के कारण ही आत्मा सांसारिक पदार्थों में ममत्व व द्वेष बुद्धि धारणकर निरर्थक ही भयंकर पापकर्मों का बंध कर रही है ।

अब अपने इस संसार-भ्रमण का अंत लाना हो तो तुझे अपने सही स्वरूप की पहिचान करनी ही होगी । किसी भी पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानना बहुत जरूरी है । जीव तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानना हो तो अजीव तत्त्व के स्वरूप को भी जानना बहुत जरूरी है । इसलिए नौ तत्त्वों में जीव तत्त्व के बाद अजीव तत्त्व का निरूपण किया है ।

यद्यपि कर्म जड़ स्वरूप है, फिर भी कुछ शुभ कर्म का उदय जीव को शाता देता है और कुछ कर्म का उदय जीव को कष्ट देता है, अतः अजीव तत्त्व के बाद सुख-दुःख को देनेवाले पुण्य और पाप का वर्णन किया गया है ।

संसार में जीव और कर्म स्वतंत्र रूप से रहे हुए हैं, परंतु जीव द्वारा होनेवाली कुछ-प्रवृत्ति, जिसे आस्रव कहते हैं, उसके द्वारा ही आत्मा में कर्मों का आगमन होता है, अतः पुण्य-पाप के बाद आस्रव तत्त्व का वर्णन किया गया है।

आत्मा के निर्मल स्वरूप को प्रगट करना हो तो नवीन कर्म-बंध को रोकना भी जरूरी है और पूर्व में संचित कर्मों का क्षय करना भी जरूरी है, बस, इसी उद्देश्य से आस्रव के बाद संवर व निर्जरा तत्त्व का निरूपण किया गया है।

आत्मा पर लगे संपूर्ण कर्मों का क्षय होना उसे मोक्ष कहते हैं तो उस मोक्ष के पहले आत्मा संसार में किस प्रकार के कर्मों का बंध करती है, उसे समझने के लिए निर्जरा के बाद बंध तत्त्व का वर्णन किया है।

इन आठ तत्त्वों को जानने का मुख्य उद्देश्य आत्मा के विशुद्ध स्वरूप मोक्ष को प्राप्त करना ही है, इसलिए अंत में मोक्ष तत्त्व का स्वरूप बतलाया गया है।

जैन धर्म के वैज्ञानिक सिद्धांत :–

जैन धर्म के प्रणेता वीतराग परमात्मा सर्वज्ञ होने से उन्होंने जो भी सिद्धांत बतलाए हैं, वे सब पूर्ण सत्य हैं।

आधुनिक विज्ञान ज्यों-ज्यों नई शोध में आगे बढ़ रहा है, त्यों-त्यों जैन धर्म के सिद्धांतों की सत्यता का भान हो रहा है।

पहले विज्ञान जीव के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता था, परंतु जाति-स्मरण ज्ञान द्वारा पुनर्जन्म की बननेवाली अनेक घटनाओं के शोध-संशोधन के बाद आज का विज्ञान भी यह स्वीकार कर रहा है कि इस जगत् में आत्मा नाम का एक स्वतंत्र पदार्थ विद्यमान है।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक **जगदीशचंद्र बोस** ने अनेक प्रयोगों के बाद यह सत्य सिद्ध किया है कि वनस्पति में भी सुख-दुःख की संवेदनाएँ होती हैं। उनमें भी हर्ष-शोक की अनुभूतियाँ होती हैं।

जैन आगमों में तो यह स्पष्ट उल्लेख है कि वनस्पति में भी आहार, भय, मैथुन और परिग्रह संज्ञा होती है। ये वनस्पतियाँ मिट्टी, जल, खाद, हवा आदि अनुकूल सामग्री को प्राप्त कर विकसित होती हैं, बढ़ती हैं और आहार-सामग्री के अभाव में नष्ट भी हो जाती हैं।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक **एच.टी.बर्सटापेन** का कथन है कि `जिस प्रकार बालक बढ़ता है, उसी प्रकार पर्वत भी धीरे-धीरे बढ़ता है।'

श्री बेल्मेन के अनुसार आल्प्स पर्वतमाला का पश्चिमी भाग अब भी बढ़ रहा है। द्वीपों की भूमि का उठाव तथा पर्वतों की वृद्धि पृथ्वी की सजीवता के स्पष्ट प्रमाण हैं। (नवनीत-सितंबर 1962)।

प्रसिद्ध वैज्ञानिक केप्टन स्कवोर्सबी ने एक यंत्र द्वारा एक लघुकाय जलकण में 36450 त्रस काय गिनाये हैं ।

इसी प्रकार अग्नि भी वायु से ऑक्सीजन लेकर जीवित रहती है और जलती है । हवा स्वयं जीव है, ऐसी जैन दर्शन की स्पष्ट मान्यता है ।

नवतत्त्व रचयिता :–

नवतत्त्व नाम के इस प्रकरण ग्रंथ में कहीं भी ग्रंथकर्ता के नाम का उल्लेख नहीं है । अज्ञातकर्तृक यह रचना हमें नवतत्त्व का स्पष्ट बोध कराती है ।

ग्रंथ की रचना शैली बहुत ही सरल एवं सुगम है ।

प्रत्येक जैन को नवतत्त्वों का बोध अवश्य होना चाहिए ।

नवतत्त्व के स्वरूप को जाने-पहिचाने बिना जैन शासन के परम रहस्य को पा नहीं सकते हैं ।

नवतत्त्व के रहस्य को समझने के लिए आज तक जैन शासन में विपुल साहित्य का सर्जन हुआ है ।

नवतत्त्व संबंधी अधिकांश साहित्य संस्कृत, प्राकृत एवं गुजराती भाषा में है ।

हिन्दी भाषा यद्यपि राष्ट्रभाषा है, फिर भी इस भाषा में जैन दर्शन के साहित्य की बहुत बड़ी कमी है ।

नवतत्त्व संबंधी कुछ चित्र 'सचित्र नवतत्त्व' (संपादक : पू. प्रवर्तक श्री हरीशभद्रविजयजी म.सा.) एवं रंगीन चित्र **''सुशील सद्बोध शतक''** (संपादक : पू.आ.श्री जिनोत्तमसूरीश्वरजी म.सा.) में से साभार लिये है ।

नमस्कार महामंत्र के अजोड़ साधक, निःस्पृह शिरोमणि, सूक्ष्म तत्त्व चिंतक, प्रशांतमूर्ति **पूज्यपाद गुरूदेव पंन्यासप्रवर श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्यश्री** की असीम कृपावृष्टि से ही **'नवतत्त्व'** पर संक्षेप में विवेचन तैयार कर सका हूँ ।

प्रस्तुत विवेचन में जिनाज्ञा से विपरीत कुछ भी लिखने में आया हो तो त्रिविध-त्रिविध मिच्छा मि दुक्कड़म् ।

महावीर धाम
मगसर व.14/30
दि. 23-11-2022

अध्यात्मयोगी पू. पंन्यासप्रवर
श्री भद्रंकरविजयजी गणिवर्य
चरणरज
आचार्यदेव श्रीमद् विजय
रत्नसेनसूरि

–: मूल-सूत्र :–

जीवा-ऽजीवा पुण्णं, पावाऽऽसव संवरो य निज्जरणा ।
बंधो मुक्खो य तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ।।1।।

चउदस चउदस बायालीसा, बासी य हुंति बायाला ।
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ।।2।।

एगविह दुविह तिविहा-चउव्विहा पंच छव्विहा जीवा ।
चेयण-तस इयरेहिं, वेय-गइ-करण-काएहिं ।।3।।

एगिंदिय सुहुमियरा, सन्नीयर-पणिंदिया य स बिति-चउ ।
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ।।4।।

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एअं जीवस्स लक्खणं ।।5।।

आहार-सरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाण-भास-मणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इग विगलाऽसन्नि-सन्नीणं ।।6।।

पणिंदिअ ति बलूसा, साऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ ।
इग-दु-त्ति-चउरिंदीणं, असन्नि-सन्नीण य नव दस य ।।7।।

धम्माऽधम्मा-गासा, तिय तिय भेया तहेव अद्धा य ।
खंधा देस पएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ।।8।।

धम्माऽधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अज्जीवा ।
चलण सहावो धम्मो, थिर संठाणो अहम्मो य ।।9।।

अवगाहो आगासं, पुग्गल-जीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देस पएसा, परमाणु चेव नायव्वा ।।10।।

सद्दंधयार उज्जोअ, पभा छायातवेहि अ ।
वण्ण गंध रसा फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ।।11।।

एगा कोड़ि सतसट्ठि, लक्खा सत्तहत्तरी सहस्सा य ।
दो य सया सोलहिया, आवलिआ इग मुहुत्तम्मि ।।12।।

समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मास वरिसा य ।
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणी-सप्पिणी कालो ।।13।।

परिणामी जीव मुत्तं, सपएसा एग खित्त किरिया य ।
णिच्चं कारण कत्ता, सव्वगय इयर अप्पवेसे ।।14।।

सा उच्चगोअ मणुदुग, सुरदुग पंचिंदिजाइ पणदेहा ।
आइ-ति-तणूणुवंगा, आइम संघयण संठाणा ।।15।।

वन्न चउक्का-गुरुलहु-परघा उस्सास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइ निमिण तसदस, सुरनर-तिरिआउ तित्थयरं ।।16।।
तस बायर पज्जत्तं, पत्तेअ थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुस्सर आइज्ज जसं, तसाइ दसगं इमं होइ ।।17।।
नाणंतराय दसगं, नव बीए नीअ साय मिच्छत्तं ।
थावर दस निरयतिगं, कसाय पणवीस तिरियदुगं ।।18।।
इग बि ति चउ जाइओ, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्न चऊ, अपढ़म संघयण-संठाणा ।।19।।
थावर सुहुम अपज्जं, साहारण-मथिर-मसुभ-दुभगाणि ।
दुस्सर णाइज्ज जसं, थावर दसगं विवज्जत्थं ।।20।।
इंदिअ कसाय अव्वय-जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा ।
किरियाओ पणवीसं, इमा उ ताओ अणुक्कमसो ।।21।।
काइय अहिगरणीया, पाउसिया पारितावणी किरिया ।
पाणाइवायरंभिय, परिगहिया मायवत्ती अ ।।22।।
मिच्छा-दंसण-वत्ती, अपच्चक्खाणा य दिट्ठि पुट्ठि अ ।
पाडुच्चिअ सामंतो, वणीअ नेसत्थि साहत्थी ।।23।।
आणवणि विआरणिया, अणभोगा अणवकंखपच्चइया ।
अन्ना पओग समुदाण, पिज्ज दोसेरियावहिया ।।24।।
समिई गुत्ती परिसह, जइधम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पण ति दुवीस दस बार, पंच भेएहिं सगवन्ना ।।25।।
इरिया भासे-सणा-दाणे, उच्चारे समिईसु अ ।
मणगुत्ती वयगुत्ती, कायगुत्ती तहेव य ।।26।।
खुहा पिवासा सी-उण्हं, दंसा-चेलारईत्थिओ ।
चरिया निसीहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा ।।27।।
अलाभ रोग तणफासा, मल सक्कार परिसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ बावीस परिसहा ।।28।।
खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ।
सच्चं सोअं आकिंचणं च, बंभं च जइ धम्मो ।।29।।
पढ़म-मणिच्च-मसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
असुइत्तं आसव, संवरो य तह निज्जरा नवमी ।।30।।

लोगसहावो बोही, दुलहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
एआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ।।31।।

सामाइअत्थ पढ़मं, छेओवट्ठावणं भवे बीअं ।
परिहार-विसुद्धीअं, सुहुमं तह संपरायं च ।।32।।

तत्तो अ अहक्खायं, खायं सव्वम्मि जीवलोगम्मि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरं ठाणं ।।33।।

अणसण-मूणोअरिया, वित्ती-संखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ।।34।।

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ।।35।।

बारसविहं तवो निज्जरा य, बंधो चउ-विगप्पो अ ।
पयइट्ठिइ अणुभाग-पएस-भेएहिं नायव्वो ।।36।।

पयइ सहावो वुत्तो, ठिई कालावहारणं ।
अणुभागो रसो णेओ, पएसो दलसंचओ ।।37।।

पड-पडिहार-सि-मज्ज, हड-चित्त-कुलाल भंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ।।38।।

इह नाण-दंसणावरण, वेय-मोहाउ-नाम-गोआणि ।
विग्घं च पण नव दु, अट्ठवीस चउतिसय दुपणविहं ।।39।।

नाणे अ दंसणावरणे, वेअणिए चेव अंतराए अ ।
तीसं कोड़ाकोड़ी, अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ।।40।।

सत्तरि कोड़ाकोड़ी, मोहणिए वीस नाम गोएसु ।
तित्तीसं अयराइं, आउट्ठिइ बंध उक्कोसा ।।41।।

बारस मुहुत्तं जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नाम गोएसु ।
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बंधट्ठिई माणं ।।42।।

संतपय परुवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य ।
कालो अ अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ।।43।।

संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमं व्व न असंतं ।
मुक्ख त्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाइहिं ।।44।।

गइ इंदिए अ काए, जोए वेए कसाय नाणे अ ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ।।45।।

नरगइ पणिंदि तस भव, सन्नि अहक्खाय खइअसम्मत्ते ।
मुक्खोऽणाहार केवल, दंसणनाणे न सेसेसु ।।46।।

दव्वपमाणे सिद्धाणं, जीव दव्वाणि हुंतिऽणंताणि ।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्को य सव्वेवि ।।47।।

फुसणा अहिया कालो, इग सिद्ध-पडुच्च साइओऽणंतो ।
पड़िवायाऽभावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ।।48।।

सव्व-जियाण-मणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे पारिणामिए, अ पुण होइ जीवत्तं ।।49।।

थोवा नपुंससिद्धा, थी नर सिद्धा कमेण संखगुणा ।
इअ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिया ।।50।।

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणेऽवि सम्मत्तं ।।51।।

सव्वाइं जिणेसर भासियाइं, वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ।।52।।

अंतोमुहुत्तमित्तंपि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढ़पुग्गल, परियट्टो चेव संसारो ।।53।।

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरिअट्टओ मुणेअव्वो ।
तेऽणंताऽतीअद्धा, अणागयद्धा अणंतगुणा ।।54।।

जिण अजिण तित्थऽतित्था, गिहि अन्न सलिंग थी नर नपुंसा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिय इक्कणिक्का य ।।55।।

जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धा य पुंड़रिअ पमुहा ।
गणहारि तित्थ सिद्धा, अतित्थसिद्धा य मरूदेवी ।।56।।

गिहिलिंगसिद्ध भरहो, वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहू सलिंगसिद्धा, थी-सिद्धा चंदणा-पमुहा ।।57।।

पुंसिद्धा गोयमाइ, गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, भणिया करकंडु कविलाई ।।58।।

तह बुद्धबोहि गुरूबोहिया, इग समये एग सिद्धा य ।
इग समये वि अणेगा, सिद्धा तेऽणेग सिद्धा य ।।59।।

जइ-आइ होइ पुच्छा, जिणाण मग्गंमि उत्तरं तइआ ।
इक्कस्स निगोयस्स, अनंतभागो य सिद्धिगओ ।।60।।

नवतत्त्व-प्रकरण

जीवा-ऽजीवा पुण्णं, पावाऽऽसव संवरो य निज्जरणा ।
बंधो मुक्खो य तहा, नव तत्ता हुंति नायव्वा ।।1।।

शब्दार्थ :– जीव=जीवतत्त्व **अजीवा=**अजीव तत्त्व, **पुण्णं=**पुण्य, **पाव=**पाप, **आसव=**आस्त्रव, **संवरो=**संवर, **य=**तथा, **निज्जरणा=**निर्जरा, **बंधो=**बंध, **मुक्खो=**मोक्ष, **तहा=**तथा, **नवतत्ता=**नौ तत्त्व, **हुंति=**हैं, **नायव्वा=**जानने योग्य ।

भावार्थ : जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये नौ तत्त्व जानने योग्य हैं ।

विवेचन : किसी भी ग्रंथ का प्रारंभ करते समय सर्वप्रथम मंगलाचरण किया जाता है अर्थात् किसी भी इष्ट देव को नमस्कार करके ग्रंथ का प्रारंभ किया जाता है ।

प्रश्न हो सकता है, इस नवतत्त्व ग्रंथ के प्रारंभ में किसी भी अरिहंतादि पंच परमेष्ठी को नमस्कार नहीं किया गया है, ऐसा क्यों ?

इसका जवाब हैं–शास्त्र में तीन प्रकार से मंगलाचरण बतलाए हैं

(1) अरिहंत आदि परमात्मा को नमस्कार रूप जैसे-**'भुवणपइवं वीरं नमिऊण भणामि अबुहबोहत्थं ।'** भुवन में प्रदीप समान ऐसे वीर प्रभु को नमस्कार करके अबुध जन के बोध के लिए ।

(2) आशीर्वादात्मक :– 'कमठे धरणेन्द्रे च' इस पद द्वारा कल्याण की कामना की गई है । यह आशीर्वाद रुप मंगल है ।

(3) वस्तु संकीर्तन रूप :– जिनेश्वर भगवंतों के द्वारा निर्दिष्ट तत्त्वों का सम्यग्बोध स्वयं मंगल स्वरूप है । अतः जिनेश्वर परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट तत्त्वों का वर्णन जिस प्रकरण में हो, वह प्रकरण स्वयं मंगल स्वरूप ही है ।

प्रस्तुत नवतत्त्व प्रकरण ग्रंथ में इष्ट देव को नमस्कार या आशीर्वाद रूप मंगलाचरण नहीं है, परंतु **वस्तु संकीर्तन रूप** मंगलाचरण अवश्य है ।

इस प्रकरण ग्रंथ में नौ तत्त्वों के स्वरूप का वर्णन होने से इस ग्रंथ का विषय 'नवतत्त्व' है ।

नवतत्त्व ग्रंथ का अनंतर उद्देश्य नौ तत्त्वों का बोध प्राप्त कराना है और परंपरा से अंतिम उद्देश्य नौ तत्त्वों में निर्दिष्ट मोक्षपद प्राप्त करना है ।

जिनके दिल में नौ तत्त्वों की जिज्ञासा है, वे इस ग्रंथ के अध्ययन के अधिकारी है ।

अभिधेय और ग्रंथ का वाच्य-वाचक संबंध है, अर्थात् इस ग्रंथ में नौ तत्त्व अभिधेय हैं और यह ग्रंथ उन नौ तत्त्वों को बतलानेवाला है ।

नौ तत्त्वों की संक्षिप्त व्याख्या

1) जीव तत्त्व :– 1) जो जीवित है, अर्थात् जिसमें चेतना है-वह जीव है ।

2) जिसमें ज्ञान हो (उपयोग हो) तथा जो सुख-दुःख का अनुभव करता है, उसे जीव कहते हैं ।

3) जो दश प्रकार (कम-ज्यादा) के प्राणों को धारण करता है, उसे जीव कहते हैं ।

4) जो कर्म का कर्त्ता है, कर्म के फल को भोगनेवाला है, जो कर्म-फल के अनुसार चार गति में भटकता है और जो पुरूषार्थ द्वारा सभी कर्मों का नाश करता है, उसे जीव कहते हैं ।

2) अजीव तत्त्व :– जिसमें जीवन न हो, जिसमें चेतना, ज्ञानशक्ति व सुख-दुःख का अनुभव न हो, उसे जड़ अर्थात् अजीव कहते हैं ।

3) पुण्य तत्त्व :– जिस कर्म के उदय से जीव को बाह्य सुख-सामग्री प्राप्त हो, उसे पुण्य तत्त्व कहते हैं ।

4) पाप तत्त्व :– जिस कर्म के उदय से जीव को प्रतिकूल सामग्रियाँ प्राप्त होती हों, उसे पाप तत्त्व कहते हैं ।

इस पुण्य-पाप तत्त्व की चतुर्भंगी होती है-

क) पुण्यानुबंधी पुण्य :– जिस पुण्य कर्म का उदय जीव को नवीन सत्कर्म-शुभकर्म करने के लिए प्रेरणा देता हो, वह पुण्यानुबंधी पुण्य कहलाता है । इस पुण्य के उदयवाला जीव संसार के श्रेष्ठ भौतिक सुखों को अनासक्त भाव से भोगता है और जब चाहे तब उन सुखों का त्याग भी कर सकता है ।

पुण्यानुबंधी पुण्य के उदयवाले जीव शक्कर पर बैठी मक्खी समान

होते हैं, जो मक्खी मधुर स्वाद भी ले सकती है और जब चाहे तब उड़ भी सकती है ।

उदाहरण-शालिभद्र ! शालिभद्र मनुष्य भव में भी दिव्य सुखों का अनुभव करते थे और अवसर आने पर उन सभी सुखों का त्याग भी कर पाये ।

ख) पापानुबंधी पुण्य :– जिस पुण्य के उदय में जीव पापकारी प्रवृत्तियों में प्रवृत्त होता है । पुण्य के उदय से संपत्ति मिली हो और उस संपत्ति का उपयोग हॉटल, वेश्यागमन या विलासिता में करते हो तो वह पुण्य पापानुबंधी कहलाता है । जैसे-मम्मण सेठ को मिली संपत्ति पापानुबंधी पुण्यवाली थी । पिघले हुए घी पर बैठी मक्खी घी का स्वाद लेने जाती हैं, परंतु उसे बेमौत मरना ही पड़ता है । पापानुबंधी पुण्य के उदयवाले जीव दुर्गतिगामी होते हैं । वे या तो धन आदि का संग्रह कर धन में अत्यंत आसक्त होते हैं या धन का भोग-विलास में ही उपयोग करते हैं । सत्कर्म में धन के सद्व्यय की बुद्धि उन्हें सुझती ही नहीं है ।

ग) पुण्यानुबंधी पाप :– पाप के उदय के कारण बाह्य दृष्टि से प्रतिकूल संयोग हो, लेकिन सद्बुद्धि के कारण वे आत्माएँ नवीन पापकर्म का बंध नहीं करती हैं, बल्कि नवीन पुण्य कर्म का ही बंध करती हैं । ऐसी आत्माओं को पुण्यानुबंधी पाप का उदय कहलाता है । जैसे-पुणिया श्रावक ! पाप के उदय के कारण उसे गरीबी थी, परंतु समता भाव के कारण वह नवीन पुण्य कर्म का ही अनुबंध कर रहा था ।

घ) पापानुबंधी पाप :– पाप के उदय से जीव वर्तमान में भी दुःखी हो और पुनः नवीन पापवाली प्रवृत्तियाँ करता हो, उसे पापानुबंधी पाप का उदय कहते है । ऐसा जीव पाप के उदय के कारण वर्तमान में भी दुःखी होता है और पाप-प्रवृत्ति के कारण भविष्य में भी दुःखी होता है ।

पापानुबंधी पाप के उदयवाले जीव श्लेष्म पर बैठी मक्खी जैसे होते हैं, जिन्हें स्वाद तो कुछ मिलता नहीं है, परंतु बेमौत मरना ही पड़ता है ।

उदा. कालसौरिक कसाई । जो इस भव में भी दुःखी था और मरकर भी 7वीं नरक में गया ।

5) आस्रव :– जिस क्रिया के द्वारा आत्मा में शुभ-अशुभ कर्मों का आगमन होता है, उसे आस्रव कहते हैं ।

6) संवर :– जिस क्रिया के द्वारा आत्मा में नवीन कर्मों का आगमन रूकता हो, उसे संवर कहते हैं ।

7) निर्जरा :– आत्मा पर लगे हुए कर्मों का आंशिक या पूर्ण रूप से क्षय होना, उसे निर्जरा कहते हैं ।

8) बंध :– दुध और पानी के मिश्रण की तरह आत्मा और कर्म का संबंध होना उसे बंध कहते हैं ।

9) मोक्ष :– समस्त कर्मों के क्षय से आत्मा के शुद्ध स्वरूप का प्रगट होना, उसे मोक्ष कहते हैं ।

हेय, ज्ञेय और उपादेय

हेय अर्थात् छोड़ने योग्य ।

ज्ञेय अर्थात् जानने योग्य ।

उपादेय अर्थात् आदर करने या ग्रहण करने योग्य ।

1. ज्ञेय तत्त्व :– जीव और अजीव तत्त्व जानने योग्य हैं ।

2. हेय तत्त्व :– पाप, आस्त्रव और बंध तत्त्व आत्मा के लिए अहितकर होने से छोड़ने योग्य हैं अर्थात् उनका त्याग ही करने जैसा है ।

3. उपादेय तत्त्व:– जो तत्त्व आत्मा के लिए लाभकारी या हितकारी सिद्ध होता हो, उसे उपादेय तत्त्व कहते हैं । पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष ये चार तत्त्व, उपादेय तत्त्व कहलाते हैं ।

पुण्य तत्त्व उपादेय भी है और हेय भी है । मोक्षमार्ग की अनुकूल सामग्री पुण्य के उदय से ही प्राप्त होती है अतः पुण्य तत्त्व को प्राथमिक कक्षा में उपादेय माना गया है परंतु मोक्ष पद की प्राप्ति के लिए पुण्य और पाप दोनों का क्षय करना पड़ता है, अतः उस अपेक्षा से पुण्य तत्त्व को हेय भी माना गया है ।

नव तत्त्वों के क्रम में हेतु :–

1) जीव तत्त्व :– नौ तत्त्वों में सर्व प्रथम जीव तत्त्व बतलाया है, क्योंकि अन्य सभी तत्त्वों को जाननेवाला जीव ही है । जैसे-मूर्ति न हो तो मंदिर की कीमत नहीं है, जीव न हो तो शरीर की कीमत नहीं है, उसी प्रकार जीव तत्त्व न हो तो अन्य तत्त्वों का उपयोग ही नहीं है, अतः नौ तत्त्वों में सर्व प्रथम जीव तत्त्व बतलाया है ।

2) अजीव तत्त्व :– जीव का विरोधी तत्त्व अजीव तत्त्व है, अतः जीव के बाद अजीव तत्त्व का वर्णन आता है ।

जीव को गति, स्थिति, अवगाहना आदि में अजीव तत्त्व ही सहायता करता है, अतः जीव के बाद अजीव तत्त्व लिया गया है ।

3) पुण्य तत्त्व :– जीव को अनुकूल सामग्री और सांसारिक सुख प्रदान करनेवाला पुण्य तत्त्व है, अतः अजीव तत्त्व के बाद पुण्य तत्त्व का वर्णन किया गया है ।

4) पाप तत्त्व :– जीव को हैरान-परेशान करनेवाला पुण्य का विरोधी पाप तत्त्व है, अतः पुण्य के बाद पाप तत्त्व का वर्णन किया गया है ।

5) आस्त्रव तत्त्व :– जीव में पुण्य और पाप कर्म का आगमन आस्त्रव के द्वारा ही होता है अतः पुण्य-पाप के बाद आस्त्रव तत्त्व का वर्णन किया गया है ।

6) संवर तत्त्व :– नवीन कर्मों के आगमन को रोकने का काम संवर तत्त्व करता है । आस्त्रव का विरोधी होने से आस्त्रव के बाद संवर तत्त्व का वर्णन आता है ।

7) निर्जरा तत्त्व :– आत्मा में संगृहीत किए कर्मों का नाश निर्जरा द्वारा ही होता है, अतः संवर के बाद निर्जरा तत्त्व का वर्णन किया गया है ।

8) बंध तत्त्व :– संवर का विरोधी बंध तत्त्व होने से निर्जरा के बाद बंध तत्त्व का वर्णन आता है ।

9. मोक्ष तत्त्व :– कर्मों का संपूर्ण क्षय होने पर आत्मा का शुद्ध स्वरूप प्रगट होता है । कर्मों की संपूर्ण निर्जरा होने पर आत्मा का मोक्ष होता है अतः निर्जरा के बाद मोक्ष तत्त्व बतलाया गया है ।

नौ तत्त्वों में रूपी-अरूपी

जो दृष्टि का विषय बनता हो, उसे रूपी कहते हैं और जो दृष्टि से अगोचर हो, उसे अरूपी कहते हैं ।

यद्यपि जीव तत्त्व अपने विशुद्ध स्वरूप की अपेक्षा से अरूपी है, परंतु यहाँ कर्म से युक्त जीव की विवक्षा होने से जीव को रूपी गिना गया है ।

अजीव तत्त्व में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल द्रव्य अरूपी हैं, जबकि पुद्गलास्तिकाय रूपी है, अतः अजीव द्रव्य को रूपी और अरूपी दोनों में गिना जा सकता है ।

इस प्रकार विचार करने पर नौ तत्त्वों में जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव और बंध रूपी हैं और अजीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष अरूपी हैं ।

नौ तत्त्वों में जीव अजीव

नौ तत्त्वों में जीव, संवर, निर्जरा और मोक्ष जीव स्वरूप हैं और अजीव, पुण्य, पाप, आस्त्रव और बंध अजीव स्वरूप हैं ।

पुण्य, पाप, आस्त्रव और बंध भी पुद्‌गल के विकार स्वरूप होने से अजीव स्वरूप हैं और संवर, निर्जरा और मोक्ष तत्त्व आत्मा के विशुद्ध स्वरूप को प्रगट करने में सहायक तत्त्व होने से जीव स्वरूप हैं ।

नवतत्त्व-विवेचन

नौ तत्त्वों के मुख्य भेद

चउदस चउदस बायालीसा बासी य हुंति बायाला ।
सत्तावन्नं बारस, चउ नव भेया कमेणेसिं ।।2।।

शब्दार्थ :– **चउदस=**चौदह, **बायालीस=**बेतालीस, **बासी=**बयासी, **य=**तथा, **हुंति=**होते हैं, **बायाला=**बेतालीस, **सत्तावन्नं=**सत्तावन, **बारस=**बारह, **चउ=**चार, **नव=**नौ, **भेया=**भेद, **कमेण=**क्रमशः, **एसिं=**उनके ।

सामान्य अर्थ :– गत गाथा में निर्दिष्ट नौ तत्त्वों के यहाँ क्रमशः भेद बतलाते हुए कहते हैं । जीव तत्त्व के 14, अजीव तत्त्व के 14, पुण्य तत्त्व के 42, पाप तत्त्व के 82, आस्रवतत्त्व के 42, संवर तत्त्व के 57, निर्जरा तत्त्व के 12, बंध तत्त्व के 4 और मोक्ष तत्त्व के 9 भेद हैं ।

विवेचन :– किसी भी वस्तु का यथार्थ बोध करना हो तो उस वस्तु के भेद-प्रभेद आदि को भी अच्छी तरह से जानना चाहिए ।

प्रस्तुत गाथा में जीव आदि नौ तत्त्वों के भेदों की संख्या बतलाई गई है ।

यहाँ जीव आदि तत्त्वों के भेदों की जो संख्या बतलाई है, वह किसी अपेक्षा से ही बतलाई है । अपेक्षा बदलने से वह संख्या भी बदल जाती है । जैसे-इस गाथा में जीव तत्त्व के 14 ही भेद बतलाए हैं, जबकि अन्यत्र जीवों के 563 भेद भी बतलाए हैं ।

1.	जीव तत्त्व के	14 भेद
2.	अजीव तत्त्व के	14 भेद
3.	पुण्य तत्त्व के	42 भेद
4.	पाप तत्त्व के	82 भेद
5.	आस्रव तत्त्व के	42 भेद
6.	संवर तत्त्व के	57 भेद
7.	निर्जरा तत्त्व के	12 भेद
8.	बंध तत्त्व के	4 भेद
9.	मोक्ष तत्त्व के	9 भेद
	कुल = 276 भेद	

नौ तत्त्वों के कुल 276 भेद होते हैं ।

जीव-अजीव की अपेक्षा कुल भेद

जीव तत्त्व

जीव तत्त्व	14 भेद
संवर तत्त्व	57 भेद
निर्जरा तत्त्व	12 भेद
मोक्ष तत्त्व	9 भेद
	कुल 92

अजीव तत्त्व

अजीव तत्त्व	14 भेद
पुण्य तत्त्व	42 भेद
पाप तत्त्व	82 भेद
अस्त्रव तत्त्व	42 भेद
बंध तत्त्व	4 भेद
	कुल 184

रूपी-अरूपी की अपेक्षा 9 तत्त्व के भेद

रूपी तत्त्व

जीव तत्त्व	14 भेद
अजीव तत्त्व	4 भेद
पुण्य तत्त्व	42 भेद
पाप तत्त्व	82 भेद
आस्त्रव तत्त्व	42 भेद
बंध तत्त्व	4 भेद
	कुल 188 भेद

अरूपी तत्त्व

अजीव तत्त्व	10 भेद
संवर तत्त्व	57 भेद
निर्जरा तत्त्व	12 भेद
मोक्ष तत्त्व	9 भेद
	कुल 88 भेद

ज्ञेय-हेय-उपादेय से नौ तत्त्वों के भेद

ज्ञेय तत्त्व

जीव तत्त्व	14 भेद
अजीव तत्त्व	14 भेद
	कुल 28 भेद

हेय तत्त्व

पाप तत्त्व	82
आस्त्रव तत्त्व	42
बंध तत्त्व	4
	कुल 128 भेद

उपादेय तत्त्व

पुण्यतत्त्व	42
संवर तत्त्व	57
निर्जरा तत्त्व	12
मोक्ष तत्त्व	9
	कुल 120 भेद

1 जीव तत्त्व

भेद-प्रभेद

एगविह दुविह तिविहा-चउव्विहा पंच छव्विहा जीवा ।
चेयण-तस इयरेहिं, वेय-गई-करण-काएहिं ।।3।।

शब्दार्थ :– एगविह=एक प्रकार, **दुविह=**दो प्रकार, **तिविहा=**तीन प्रकार, **चउव्विहा=**चार प्रकार, **पंच=**पाँच, **छव्विहा=**छ प्रकार, **चेयण=**चेतना, **तस=**त्रस, **इयरेहिं=**इतर (स्थावर), **वेय=**वेद, **गइ=**गति, **करण=**इन्द्रियाँ, **काएहिं=**काया द्वारा ।

भावार्थ :– चेतना की दृष्टि से जीव एक प्रकार का है । त्रस और स्थावर की अपेक्षा जीव के दो प्रकार हैं । नर, मादा और नपुंसक वेद की अपेक्षा जीव के तीन प्रकार हैं । देव-मनुष्य, नरक व तिर्यंच गति की अपेक्षा जीव के चार प्रकार हैं । स्पर्शनेन्द्रिय आदि इन्द्रियों की अपेक्षा जीव के पांच प्रकार हैं और पृथ्वीकाय आदि की अपेक्षा जीव के छह प्रकार हैं ।

विवेचन :– स्याद्वादमय जैन दर्शन में किसी भी पदार्थ का वर्णन अनेक अपेक्षाओं से होता है । संसार में रही प्रत्येक वस्तु अनंत-धर्मात्मक है । किसी भी पदार्थ का वर्णन, उस पदार्थ में रहे किसी विशेष गुण धर्म को लेकर ही किया जाता है ।

प्रस्तुत गाथा में जीव तत्त्व के अपेक्षा विशेष से अलग-अलग संख्या में भेद बतलाए हैं ।

यद्यपि इस विराट् संसार में अनंतानंत जीव हैं, फिर भी उन सभी जीवों को 1,2,3,4,5 व 6 भेदों में विभक्त किया जा सकता है ।

1. जीव का एक प्रकार :– चेतना गुण धर्म की अपेक्षा विचार किया जाय तो संसार के सभी जीव एक समान हैं । निगोद में रहा जीव हो या महाज्ञानी मनुष्य का जीव हो, परंतु उन सभी जीवों में चेतना अवश्य होती है । चेतना के दो प्रकार हैं- 1) दर्शन चेतना और 2) ज्ञान चेतना ।

वस्तु के सामान्य बोध को दर्शन चेतना कहते हैं और वस्तु के विशेष बोध को ज्ञान चेतना कहते हैं ।

निगोद जैसी निकृष्ट दशा में भी, उस जीव में 'चेतना' अवश्य होती है । निगोद में रहे जीव में भी मति और श्रुतज्ञान का अनंतवाँ भाग अवश्य होता है । संसार में कोई भी जीव चेतना रहित नहीं है ।

जीव में यदि चैतन्य धर्म न हो तो वह जड़ ही बन जाय । चैतन्य धर्म के कारण ही जीव तत्त्व, अजीव तत्त्व से अलग पड़ता है ।

2. जीव के दो प्रकार :– त्रस और स्थावर की अपेक्षा संसार में रहे सभी जीवों को दो भागों में बाँट सकते हैं ।

सुख की प्राप्ति और दुःख से मुक्ति के उद्देश्य से जो जीव एक स्थान से दूसरे स्थान में जा-आ सकते हों, वे जीव त्रस कहलाते हैं ।

सुख को पाने की इच्छा व दुःख से मुक्ति की इच्छा होने पर भी जो जीव अपनी इच्छानुसार कहीं भी जा आ नहीं सकते हैं, वे जीव, स्थावर कहलाते हैं ।

द्वीन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के सभी जीव त्रस कहलाते हैं, जबकि पृथ्वीकाय आदि सभी एकेन्द्रिय जीव स्थावर कहलाते हैं ।

त्रस और स्थावर में संसार के सभी जीवों का समावेश हो जाता है ।

3. जीव के तीन प्रकार :– वेद अर्थात् लिंग (Gender) की अपेक्षा विचार किया जाय तो संसार के सभी जीवों को पुरूषलिंग, स्त्रीलिंग और नपुंसक लिंग में विभक्त कर सकते हैं । लिंग के तीन ही प्रकार हैं, कोई चौथा प्रकार नहीं है ।

देवलोक में पुरूष व स्त्री लिंग के रूप में देव-देवी हैं । नरक में रहे सभी नारक नपुंसक ही होते हैं । तिर्यंच में एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय तक सभी नपुंसक होते हैं, पंचेन्द्रिय मनुष्य व पंचेन्द्रिय तिर्यंच में पुरूष, स्त्री और नपुंसक ये तीनों लिंग पाए जाते हैं ।

4. जीवों के चार प्रकार :– गति की अपेक्षा विचार किया जाय तो संसार के सभी जीवों को चार भागों में बाँट सकते हैं । देवगति, मनुष्यगति, तिर्यंचगति और नरकगति । किसी अपेक्षा मुक्ति को पाँचवीं गति भी कहा जाता है ।

ठीक ही कहा है, **''चिहुं गति भ्रमण संसारमां, जन्म मरण जंजाल ।**
पंचमी गति विण जीव ने, सुख नहीं हुं त्रिहुं काल ।।''

संसारी जीव देव आदि चार गतियों में भटकता रहता है, पाँचवीं गति मोक्ष के सिवाय आत्मा को संसार में कहीं भी पूर्ण व सच्चा सुख नहीं है ।

5. जीवों के पाँच प्रकार :– इन्द्रियों की अपेक्षा संसारी-जीवों को पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–

1. एकेन्द्रिय जीव :– संसार में कुछ जीव ऐसे हैं, जिनके सिर्फ एक ही इन्द्रिय है और वह भी सिर्फ स्पर्शन इन्द्रिय । ये जीव एक ही इन्द्रिय से अपना जीवन व्यतीत करते हैं-जैसे पृथ्वी स्वरूप जीव, पानी स्वरूप जीव, आदि ।

2. द्वीन्द्रिय जीव :– संसार में रहे कुछ जीवों के स्पर्शन और रसना रूप दो ही इन्द्रियाँ होती हैं । जैसे-शंख, आदि ।

3. त्रीन्द्रिय जीव :– संसार में रहे कुछ जीवों के स्पर्शन, रसना और घ्राण रूप तीन इन्द्रियाँ होती हैं । जैसे-चींटी आदि ।

4. चउरिन्द्रिय जीव :– संसार में रहे कुछ जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु रूप चार इन्द्रियाँ होती हैं । जैसे-बिच्छू आदि ।

5. पंचेन्द्रिय जीव :– संसार में रहे कुछ जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कान रूप पाँचों इन्द्रियाँ होती हैं । जैसे-मनुष्य आदि ।

6. जीवों के छह प्रकार :– काया की अपेक्षा संसारी जीवों को छह भागों में बाँटा जा सकता है–

पृथ्वी रूप काया को धारण करनेवाले जीव पृथ्वीकाय कहलाते हैं ।

पानी रूप काया को धारण करनेवाले जीव अप्काय कहलाते हैं ।

अग्नि रूप काया को धारण करनेवाले जीव तेउकाय कहलाते हैं ।

वायु रूप काया को धारण करनेवाले जीव वायुकाय कहलाते हैं ।

वनस्पति रूप काया को धारण करनेवाले जीव वनस्पति काय कहलाते हैं ।

त्रस रूप काया को धारण करनेवाले जीव त्रसकाय कहलाते हैं ।

जीवों के 14 भेद

एगिंदिय सुहुमियरा, सन्नीयर-पणिंदिया य स बि-ति-चउ ।
अपज्जत्ता पज्जत्ता, कमेण चउदस जियट्ठाणा ।।4।।

शब्दार्थ :– एगिंदिय=एक इन्द्रिय, **सुहुम=**सूक्ष्म, **इयरा=**इतर (भिन्न) अर्थात् बादर, **सन्नी=**संज्ञी, **इयर=**असंज्ञी, **पणिंदिया=**पंचेन्द्रिय, **य=**और, **स=**सहित, **बि=**द्वीन्द्रिय, **ति=**त्रीन्द्रिय, **चउ=**चतुरिन्द्रिय, **अपज्जत्ता=**अपर्याप्त, **पज्जत्ता=**पर्याप्त, **कमेण=**अनुक्रम से, **चउदस=**चौदह, **जियट्ठाणा=**जीव स्थान ।

भावार्थ :– सूक्ष्म और बादर एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, संज्ञी पंचेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय इन सात को पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से गुणने पर जीव के कुल 14 स्थान होते हैं ।

विवेचन :– नवतत्त्व प्रकरण की दूसरी गाथा में जीव तत्त्व के जो 14 भेद बतलाए हैं, उन 14 भेदों का निर्देश उपर्युक्त गाथा में किया है ।

जीवों के 14 भेद

1)	अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय	2)	पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय
3)	अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय	4)	पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय
5)	अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव	6)	पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव
7)	अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव	8)	पर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव
9)	अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीव	10)	पर्याप्त चतुरिन्द्रिय जीव
11)	अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	12)	पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव
13)	अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव	14)	पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव

(1) सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव :– जिन जीवों के सिर्फ स्पर्शन रूप एक ही इन्द्रिय होती है, उन्हें एकेन्द्रिय कहते हैं ।

सूक्ष्म नाम कर्म का उदय होने के कारण सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव इतने सूक्ष्म (छोटे) हैं कि उन जीवों को सिर्फ केवलज्ञानी या अवधिज्ञानी ही देख सकते हैं । मति व श्रुतज्ञानवालों के लिए ये जीव सर्वथा अदृश्य ही होते हैं ।

प्रत्येक वनस्पतिकाय को छोड़कर पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय के जीव सूक्ष्म हो सकते हैं । ये सभी सूक्ष्म जीव चौदह राजलोक में सर्वत्र ठूंस-ठूंसकर भरे हुए हैं, उन सबका आयुष्य अन्तर्मुहूर्त ही होता है, ये सभी जीव चक्षु से अगोचर ही होते हैं ।

बहुत से सूक्ष्म जीव इकट्ठे हो जायें तो भी उन्हें न तो चक्षु से देख सकते हैं और न ही वायु की भाँति उनका स्पर्श कर सकते हैं ।

तलवार की तीव्र धार से भी उनका छेदन नहीं होता है और न ही वज्र या अग्नि द्वारा उनका उपघात होता है, ऐसे जीवों की हिंसा सिर्फ मन द्वारा हो सकती है, परंतु वचन या काया द्वारा नहीं ! ये जीव मनुष्य के उपभोग में भी नहीं आते हैं । इन सूक्ष्म जीवों की जघन्य आयु 256 आवलिका और उत्कृष्ट आयु मुहूर्त का संख्यातवाँ भाग प्रमाण होती है ।

इन सूक्ष्म जीवों के आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छ्वास रूप चार पर्याप्तियाँ होती हैं, जो सूक्ष्म जीव स्वयोग्य चार पर्याप्तियों को पूर्णकर फिर मरते हैं, वे पर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय और जो पर्याप्तियाँ पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं, वे अपर्याप्त सूक्ष्म एकेन्द्रिय कहलाते हैं ।

(2) बादर एकेन्द्रिय जीव :– बहुत से शरीर इकट्ठे होने पर जो चक्षु से देखे जा सकते हैं और अन्य इन्द्रियों से भी जिन्हें जान सकते हैं, वे बादर नाम कर्म के उदयवाले होते हैं । ये बादर एकेन्द्रिय जीव मनुष्य के उपभोग में भी आते हैं । ये जीव चौदह राजलोक में सर्वत्र नहीं हैं । शस्त्र आदि द्वारा उनका छेदन-भेदन हो सकता है । ये जीव परस्पर भी एक-दूसरे की मौत में निमित्त बन सकते हैं । ये जीव स्वकाय शस्त्र, परकाय शस्त्र और उभयकाय शस्त्रवाले भी होते हैं । इन जीवों के मात्र एक ही इन्द्रिय होती है ।

1. बादर पृथ्वीकाय :– स्फटिक, मणि, रत्न, पारा, सोना, चांदी, अभ्रक, मिट्टी, सुरमा, नमक आदि बादर पृथ्वीकाय रूप हैं ।

2. बादर अप्काय :– कुंए का पानी, नदी का पानी, बर्फ, ओसबिंदु, घनोदधि आदि बादर अप्काय के जीव कहलाते हैं ।

3. बादर तेउकाय :– अग्नि, ज्वाला, भट्टी की आग, आकाश से गिरनेवाली बिजली आदि बादर तेउकाय के जीव हैं ।

4. बादर वायुकाय :– उदभ्रामक, उत्कलिक, मंड़लिक, महावायु, शुद्धवायु, घनवात, तनुवात आदि बादर वायुकाय के भेद हैं ।

5. बादर साधारण वनस्पति के भेद :– कच्ची हल्दी, पालक की भाजी, आलू, प्याज, लहसन, थोर, गुग्गली आदि साधारण वनस्पतिकाय के भेद हैं ।

6. बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय के भेद :– वृक्ष, लता, गुल्म आदि बादर प्रत्येक वनस्पतिकाय के भेद हैं ।

जो बादर एकेन्द्रिय जीव स्वयोग्य आहार, शरीर, इन्द्रिय और श्वासोच्छवास रूप चार पर्याप्तियों को पूर्ण करते हैं, वे पर्याप्त बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं और जो जीव इन पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं वे अपर्याप्त बादर एकेन्द्रिय कहलाते हैं ।

(3) द्वीन्द्रिय जीव :– इन जीवों के स्पर्शन इन्द्रिय और रसनेन्द्रिय ये दो इन्द्रियाँ होती हैं । शंख, कौड़ी, जौंक, केंचुआ, पूरा, कृमि आदि अनेक प्रकार के द्वीन्द्रिय जीव होते हैं ।

द्वीन्द्रिय आदि जीव बादर नाम कर्म के उदयवाले ही होते हैं, वे सूक्ष्म नहीं होते हैं ।

द्वीन्द्रिय जीवों के पाँच पर्याप्तियाँ आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा होती है । जो द्वीन्द्रिय जीव स्वयोग्य पाँचों पर्याप्तियों को पूर्ण कर फिर मरते हैं, वे पर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं और जो इन पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं, वे अपर्याप्त द्वीन्द्रिय जीव कहलाते हैं ।

(4) त्रीन्द्रिय जीव :– जिन जीवों के स्पर्शन, रसना व घ्राण रूप तीन इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें त्रीन्द्रिय जीव कहते हैं ।

इन्द्रगोप, जूं, खटमल, मकोड़ा, दीमक, इयल, चींटी आदि तेइन्द्रिय जीव हैं ।

स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्णकर जो त्रीन्द्रिय जीव मरते हैं, वे पर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव कहलाते हैं और जो स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना मर जाते हैं वे अपर्याप्त त्रीन्द्रिय जीव कहलाते हैं ।

(5) चतुरिन्द्रिय जीव :– जिन जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण और चक्षु रूप चार इन्द्रियाँ होती हैं, उन्हें चतुरिन्द्रिय जीव कहते हैं । बिच्छु, मक्खी, मच्छर, टिड्ड़ी, तितली आदि चतुरिन्द्रिय जीव हैं ।

इन जीवों के आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास और भाषा रूप पांच पर्याप्तियाँ होती हैं । जो चतुरिन्द्रिय जीव इन पर्याप्तियों को पूर्ण करके मरते हैं, वे पर्याप्त चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं और जो पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना ही मर जाते हैं, वे अपर्याप्त चतुरिन्द्रिय कहलाते हैं ।

(6) पंचेन्द्रिय जीव :– जिन जीवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र रूप पाँच इन्द्रियाँ होती हैं, वे पंचेन्द्रिय कहलाते हैं । चारों गति-देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक में पंचेन्द्रिय जीव होते हैं ।

देव व नरक के जीवों का जन्म उपपात से होता है अर्थात् वे गर्भ से उत्पन्न नहीं होते हैं । अन्तर्मुहूर्त मात्र काल में ही उनका शरीर तैयार हो जाता है ।

मनुष्य और तिर्यंच पंचेन्द्रियों का जन्म संमूर्च्छन और गर्भ दोनों प्रकार से होता है, जो जीव संमूर्च्छिम होते हैं, वे मन रहित होते हैं, अतः उनमें सोच-विचार की शक्ति नहीं होती है, इस कारण वे असंज्ञी कहलाते हैं । नारक, देव, गर्भज तिर्यंच और गर्भज मनुष्य संज्ञी कहलाते हैं ।

स्व योग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना जो मृत्यु पाते हैं वे अपर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं और जो स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण कर मरण पाते हैं, वे पर्याप्त असंज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों में जो जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्णकर मरण पाते हैं, वे पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं और जो स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण किए बिना मरण पाते हैं, वे अपर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय कहलाते हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय में नारक के जीव 7 प्रकार के हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय में तिर्यंच के जीव जलचर, स्थलचर और खेचर की अपेक्षा तीन प्रकार के हैं ।

संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य कर्मभूमि, अकर्मभूमि और अंतरद्वीप में उत्पन्न होने की अपेक्षा तीन प्रकार के हैं । संज्ञी पंचेन्द्रिय देव, भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष और वैमानिक की अपेक्षा से चार प्रकार के हैं ।

जीव का लक्षण

नाणं च दंसणं चेव, चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगो य, एअं जीवस्स लक्खणं ।।5।।

शब्दार्थ :– नाणं=ज्ञान, **दंसणं=**दर्शन, **चेव=**निश्चय, **चरित्तं=**चारित्र, **तवो=**तप, **तहा=**तथा, **वीरियं=**वीर्य, **उवओगो=**उपयोग, **एअं=**यह, **जीवस्स=**जीव का, **लक्खणं=**लक्षण ।

भावार्थ :– ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये छह जीव के लक्षण हैं ।

विवेचन :– इस गाथा में जीव तत्त्व के लक्षण बतलाए गए हैं । ये सभी लक्षण सिर्फ जीव तत्त्व में ही पाए जाते हैं, किसी भी अजीव आदि में ये लक्षण देखने को नहीं मिलते हैं ।

किसी भी वस्तु को पहिचानना हो तो उसके लक्षण से ही पहिचान सकते हैं । लक्षण की व्याख्या करते हुए कहा है-**'वस्तु में रहे असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं ।'** अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव इन तीन दोषों से जो रहित हो, वही असाधारण-धर्म, लक्षण कहलाता है ।

1) अतिव्याप्ति :– जिस वस्तु का लक्षण किया हो, उस वस्तु में भी और अन्य वस्तु में भी रहता हो, वह लक्षण अतिव्याप्ति दोषवाला कहलाता है । उदा. :– गाय का लक्षण **शृंगीत्वम्** यानी शृंग गाय में भी है और गाय से अन्य भेंसादि में भी है ।

2) अव्याप्ति :– जिस वस्तु का जो लक्षण किया हो वह उस वस्तु के किसी एक भाग में रहता हो और किसी अन्य भाग में नहीं रहता हो, वह लक्षण अव्याप्ति दोषवाला कहलाता है । उदा.:– **श्वेतत्वं** या **कपिलत्वं** यानी सभी गाय श्वेत भी नहीं है या काबरचीतरी (भिन्न-भिन्न रंगों की) भी नहीं होती है अर्थात् गाय के एक देश में यह लक्षण जाता है ।

3) असंभव :– जिस वस्तु का जो लक्षण किया हो, वह लक्षण उस वस्तु में ही न हो तो वह लक्षण असंभव दोषवाला कहलाता है । उदा.:– **एकशफत्वं** यानी एक खुरी होना (पैरों में बकरी की तरह दो भाग न होना ।) किसी भी गाय में एक खुरी नहीं होती है । दो खुरी ही होती है ।

गाय का सच्चा लक्षण है **सास्नादिमत्वम्** यानी गले के नीचे लटकती हुई चमडी । यह लक्षण सभी गाय में अवश्य ही होता है ।

इस गाथा में जीव के छह लक्षण बतलाए हैं-

(1) ज्ञान :– ज्ञान यह आत्मा का लक्षण है, अतः हर आत्मा में न्यूनाधिक अंश में अवश्य पाया जाता है । सम्यग्दृष्टि आत्मा को मतिज्ञान आदि सम्यग्ज्ञान होता है, जबकि मिथ्यादृष्टि आत्मा को मति अज्ञान होता है, परंतु ज्ञान तो होता ही है, ज्ञान का सर्वथा अभाव नहीं होता है ।

निगोद के जीव में भी कुछ अंश में ज्ञान अवश्य होता ही है ।

(2) दर्शन :– वस्तु के विशेष बोध को ज्ञान कहते हैं और वस्तु में रहे सामान्य बोध को दर्शन कहते हैं । प्रत्येक जीव में यह दर्शन गुण भी अवश्य होता है ।

(3) चारित्र :– मोहनीय कर्म का उदय आत्मा में रहे हुए चारित्र गुण को ढ़कने का काम करता है । निगोद के जीव में भी पूर्ण चारित्र का अनंतवाँ भाग अवश्य होता है ।

(4) तप :– तप यह भी आत्मा का गुण है । सभी आत्माओं में न्यूनाधिक अंश में यह तप गुण अवश्य देखने को मिलता है ।

(5) वीर्य :– उत्साह, बल, पराक्रम, शक्ति आदि को वीर्य कहते हैं । यह वीर्य दो प्रकार का है–

1) करणवीर्य :– मन, वचन और काया के आलंबन से होनेवाला वीर्य करणवीर्य कहलाता है ।

2) लब्धिवीर्य :– ज्ञान, दर्शन और चारित्र में प्रवर्तन यह आत्मा के स्वाभाविक वीर्य को लब्धिवीर्य कहते हैं ।

यह वीर्य गुण केवली भगवंतों को संपूर्णतया प्रगट हुआ होता है, जबकि अन्य सांसारिक जीवों में न्यूनाधिक अंश में प्रगट हुआ होता है ।

6. उपयोग :– उपयोग के कुल 12 भेद हैं-5 ज्ञान, 3 अज्ञान और 4 दर्शन । इन बारह उपयोगों में से हर आत्मा में न्यूनाधिक अंश में कुछ-न-कुछ उपयोग अवश्य होता है ।

ये सभी लक्षण, सभी जीव में अवश्य होते है, मात्र जीवों में ही होते है, और अजीव में नहीं होते है । इस प्रकार जीव के इन लक्षणों से अतिव्याप्ति, अव्याप्ति और असंभव दोषों से रहित शुद्ध लक्षण सिद्ध होता है ।

पर्याप्तियाँ

आहार-सरीरिंदिय, पज्जत्ती आणपाण-भास-मणे ।
चउ पंच पंच छप्पिय, इग विगलाऽसन्नि-सन्नीणं ।।6।।

शब्दार्थ :– आहार=आहार **सरीर=**शरीर **इंदिय=**इन्द्रिय **पज्जत्ती=**पर्याप्ति **आणपाण=**श्वासोच्छ्वास **भास=**भाषा पर्याप्ति **मणे=**मन पर्याप्ति **चउ=**चार **पंच=**पाँच **छप्पिय=**छह भी **इग=**एकेन्द्रिय **विगल=**विकलेन्द्रिय **असन्नि=**असंज्ञी **सन्नीणं=**संज्ञी को ।

भावार्थ :– आहार पर्याप्ति, शरीर पर्याप्ति, इन्द्रिय पर्याप्ति, श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति, भाषा पर्याप्ति और मन पर्याप्ति ये छह पर्याप्तियाँ हैं । एकेन्द्रिय जीवों को चार, विकलेन्द्रिय व असंज्ञी जीवों को पाँच और संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को छह पर्याप्तियाँ होती हैं ।

विवेचन : पर्याप्ति की व्याख्या :– आत्मा जब पूर्व शरीर का त्याग कर नए शरीर को धारण करती है, तब उसे अपने नए शरीर का निर्माण करना होता है । अपने नवीन जन्मक्षेत्र में आत्मा एक साथ, पुद्गलों का उपचय करती है, उसे अथवा उससे उत्पन्न होनेवाली पौद्गलिक शक्ति को पर्याप्ति कहते हैं । बृहत् संग्रहणी में कहा है–

''जिस दलिक रूप पुद्गल समूह से आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन की रचना होती है, उन दलिकों का अपने-अपने विषय रूप में परिणमन के प्रति जो शक्ति रूप करण है, उसे पर्याप्ति कहते हैं ।''

पर्याप्तियों के छह भेद–

1. आहार पर्याप्ति :– पुद्गलों के उपचय से उत्पन्न शक्ति से आहार ग्रहण कर उसे खल (कचरा) और रस के रूप में परिणमन करने की शक्ति को आहार पर्याप्ति कहते हैं । यहाँ खल शब्द से मल-मूत्रादि रूप असार पुद्गल और रस शब्द से सात धातु में परिणमन योग्य जल जैसा प्रवाही पदार्थ समझना चाहिए ।

2. शरीर पर्याप्ति :– जीव पुद्गलोपचय से उत्पन्न शक्ति द्वारा रस (प्रवाही) रूप में परिणत आहार को सप्त धातु रूप में परिणत करने की शक्ति को शरीर पर्याप्ति कहते हैं । इस पर्याप्ति द्वारा आत्मा रस को रक्त, मांस, चर्बी, हड्डी, मज्जा और वीर्य रुप बनाकर उसे शरीर रूप में बनाती हैं ।

3. इन्द्रिय पर्याप्ति :– शरीर रूप में परिणत पुद्गलों में से इन्द्रिय योग्य पुद्गलों को ग्रहण कर उसे इन्द्रिय रूप में परिणमन करने की शक्ति को इन्द्रिय पर्याप्ति कहते हैं ।

4. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति :– श्वासोच्छ्वास योग्य पुद्गल वर्गणा को ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्वास रूप में परिणमन करने की शक्ति को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति कहते हैं । बाहर के वायु को शरीर में लेना और अंदर के वायु को बाहर निकालने को श्वासोच्छ्वास कहते हैं ।

5. भाषा पर्याप्ति :– आत्मा जिस शक्ति विशेष से भाषा योग्य वर्गणा (पुद्गलों) को ग्रहण कर उन्हें भाषा रूप में परिणत करती है, उस शक्ति को भाषा पर्याप्ति कहते हैं ।

6. मनः पर्याप्ति :– जिस शक्ति से आत्मा मनोयोग्य वर्गणा (पुद्गलों) को ग्रहण कर उन्हें मन रूप में परिणत करती है उसे मनःपर्याप्ति कहते हैं ।

किस जीव को कितनी पर्याप्ति ?

सभी संसारी जीव समस्त पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं करते हैं ।

1. एकेन्द्रिय जीव के चार पर्याप्ति :– आहार, शरीर, इन्द्रिय व श्वासोच्छ्वास को ही पूर्ण करते हैं । एकेन्द्रिय जीवों में भाषा व मन का अभाव होता है ।

2. द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव, पाँच पर्याप्ति के योग्य होते हैं ।

3. संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव सभी छह पर्याप्तियों को पूर्ण करते हैं ।

पर्याप्ति का आरंभ व समाप्ति काल–

जो जीव जितनी पर्याप्ति के योग्य है वह जीव उन सभी पर्याप्तियों का प्रारंभ तो एक ही साथ करता है परन्तु उनकी समाप्ति क्रमशः होती है । जीवात्मा सर्वप्रथम आहार-पर्याप्ति पूर्ण करता है, उसके बाद शरीर, इन्द्रिय आदि पर्याप्ति पूर्ण करता है ।

उत्पत्ति (जन्म) के प्रथम समय में ही आहार पर्याप्ति पूर्ण हो जाती है, जबकि अन्य समस्त पर्याप्तियों को पूर्ण करने में अन्तर्मुहूर्त का समय लग जाता है ।

पर्याप्ति की अपेक्षा जीवों के चार भेद–

1. लब्धि अपर्याप्त :– जो जीव स्वयोग्य पर्याप्ति को पूर्ण करने के पहले ही मर जाता है, उसे लब्धि अपर्याप्त कहते हैं । वह जीव भी आहार, शरीर व इन्द्रिय, इन तीन पर्याप्तियों को तो अवश्य पूर्ण करता ही है, क्योंकि उसके सिवाय नए भव के आयुष्य का बंध नहीं होता है ।

उदाहरण :– संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणी स्व योग्य छह पर्याप्तियों में से चार या पाँच पर्याप्ति पूर्ण करने के पहले ही मर जाय उसे लब्धि अपर्याप्त कहते हैं ।

2. लब्धि पर्याप्त :– जो आत्मा अपनी मृत्यु के पूर्व स्वयोग्य पर्याप्तियों को अवश्य पूर्ण करनेवाली हो, लेकिन अभी तक पर्याप्तियाँ पूर्ण की हो या न की हो उसे लब्धि पर्याप्त कहते हैं । पर्याप्त नाम कर्म के उदय से जीव को यह शक्ति प्राप्त होती है ।

3. करण अपर्याप्त :– जो जीव जब तक स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण नहीं कर पाया हो तब तक उसे करण अपर्याप्त कहते हैं ।

4. करण पर्याप्त :– जिस जीव ने स्व योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण कर दी हों उसे करण पर्याप्त कहते हैं ।

सूक्ष्म और बादर जीव

सर्वव्यापी सूक्ष्म जीव

पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और साधारण वनस्पतिकाय ये पाँच सूक्ष्म और बादर दोनों प्रकार के होते हैं । प्रत्येक वनस्पतिकाय के जीव बादर परिणाम वाले ही होते हैं, सूक्ष्म नहीं ।

सूक्ष्म नाम कर्म के उदय से जीव सूक्ष्म पृथ्वीकाय आदि रूप में उत्पन्न होते हैं । ये सूक्ष्म जीव इतने छोटे होते हैं कि सिर्फ विशिष्ट अवधिज्ञानी और केवलज्ञानी ही उन्हें अपने ज्ञान से देख सकते हैं, अन्य छद्मस्थ जीवों के लिए वे अदृश्य होते हैं । अर्थात् सूक्ष्म दर्शक यंत्र अथवा तीक्ष्ण-दृष्टि (नजर) से भी ये जीव चक्षुगोचर नहीं होते हैं ।

ये जीव इतने सूक्ष्म होते हैं कि तलवार की तीक्ष्ण धारा के प्रहार से भी इन्हें उपघात नहीं होता है, आग की भयंकर ज्वालाएँ भी इन्हें जला नहीं सकती हैं ।

ये जीव चौदह राजलोक में सर्वत्र व्याप्त हैं । अपने हलन-चलन आदि का उन जीवों पर कोई असर नहीं होता है ।

चौदह राजलोक में सूई के अग्रभाग जितना भी ऐसा कोई भाग नहीं है, जहाँ पर ये सूक्ष्म जीव रहे हुए नहीं हों ।

इन जीवों का आयुष्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण होता है । इन जीवों का जघन्य आयुष्य 256 आवलिका प्रमाण और उत्कृष्ट आयुष्य दो घड़ी का संख्यातवाँ भाग प्रमाण होता है ।

बादर जीव

बादर शब्द स्थूलता का वाचक है, फिर भी बादर पृथ्वीकाय के स्वतंत्र एक जीव को हम अपने चक्षु के द्वारा नहीं देख सकते हैं । बादर नामकर्म के उदय से जीव को बादर शरीर की प्राप्ति होती है ।

दश प्राण

पणिंदिअ ति बलूसासाऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ ।
इग-दु-त्ति-चउरिंदीणं, असन्नि-सन्नीण य नव दस य ।।7।।

शब्दार्थ :–पणिंदिय=पाँच इन्द्रियाँ, **ति=**तीन, **बलूसास=**बल, श्वासोच्छवास, **आऊ=**आयुष्य, **दस=**दश, **पाण=**प्राण, **चउ=**चार, **छ=**छह, **सग=**सात, **अट्ठ=**आठ, **इग=**एकेन्द्रिय, **दु=**बेइन्द्रिय, **त्ति=**तेइन्द्रिय, **चउरिंदीणं=**चउरिन्द्रिय को **असन्नि=**असंज्ञी, **सन्नीण=**संज्ञी को, **य=**तथा, **नव=**नौ, **दस=**दश ।

भावार्थ :– पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्य ये दस प्राण हैं । उनमें एकेन्द्रिय जीव को चार, बेइन्द्रिय को छह, तेइन्द्रिय को सात, चउरिन्द्रिय को आठ, असंज्ञी पंचेन्द्रिय को नौ व संज्ञी पंचेन्द्रिय को दश प्राण होते हैं ।

विवेचन :– संसारी जीवों को प्राणी भी कहते हैं । 10 प्रकार के प्राणों में यथायोग्य प्राणों को धारण करनेवालों को प्राणी कहते हैं ।

5वीं गाथा में जो जीव के लक्षण बतलाए हैं, वे जीव के अभ्यंतर लक्षण हैं, जबकि इस गाथा में जो लक्षण बतलाए हैं, वे बाह्य लक्षण हैं ।

दशविध प्राणों को धारण करनेवाले को जीव कहते हैं । इन प्राणों के संयोग से ही जीव के `जीवन' का व्यवहार होता है और इन प्राणों के वियोग या नाश को ही `मरण' कहते हैं । प्रमाद के योग से किसी भी जीव के प्राणों का नाश करना ही हिंसा कहलाता है ।

ये 10 प्राण निम्नलिखित हैं–

1) स्पर्शनेन्द्रिय प्राण 2) रसनेन्द्रिय प्राण 3) घ्राणेन्द्रिय प्राण 4) चक्षु-रिन्द्रिय प्राण 5) श्रोत्रेन्द्रिय प्राण 6) मन बल प्राण 7) वचन बल प्राण 8) कायबल प्राण 9) श्वासोच्छ्वास प्राण 10) आयुष्य प्राण ।

छह पर्याप्तियों के कारण ही नौ प्राण पैदा होते हैं, इन्द्रिय पर्याप्ति से स्पर्शन इन्द्रिय आदि पाँच इन्द्रियाँ तैयार होती हैं । मनःपर्याप्ति से मनोबल, भाषा पर्याप्ति से वचन बल और शरीर पर्याप्ति से काय बल पैदा होता है । श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति से श्वासोच्छ्वास बल पैदा होता है ।

आयुष्य कर्म के कारण आयुष्य प्राण टिकता है । अपने जीवन-व्यवहार में इन प्राणों की उपयोगिता रहती है ।

1) स्पर्शनेन्द्रिय द्वारा हमें वस्तु में शीत, उष्ण, रूक्ष, स्निग्ध, मृदु, कर्कश, गुरू और लघु रूप आठ स्पर्शों का बोध होता है ।

2) रसनेन्द्रिय से कटु, तिक्त, मधुर, खट्टे और तूरे स्वाद का ज्ञान होता है ।

3) घ्राणेन्द्रिय से सुगंध-दुर्गंध का बोध होता है ।

4) चक्षुरिन्द्रिय से काला, पीला, लाल, हरा और सफेद वर्ण का बोध होता है ।

5) श्रोत्रेन्द्रिय से सचित्त, अचित्त और मिश्र शब्दों का बोध होता है ।

6) मनोबल से हम किसी भी वस्तु के विषय में चिंतन-मनन कर सकते हैं ।

7) वचनबल से किसी प्रकार की भाषा के शब्दों का उच्चारण कर सकते हैं ।

8) कायबल से काया संबंधी अनेकविध प्रवृत्तियाँ कर सकते हैं ।

9) श्वासोच्छ्वास प्राण से फेफड़े और चर्म छिद्रों द्वारा श्वास ले सकते हैं ।

10) आयुष्य प्राण द्वारा जीव नियत समय तक नियत शरीर में रह सकता है ।

आयुष्य प्राण :– आयुष्य कर्म के पुद्‌गल दलिकों को द्रव्य आयुष्य कहते हैं और उन पुद्‌गल दलिकों के कारण जीव एक भव में जितने काल तक रहता है, उसे काल आयुष्य कहते हैं । आयुष्य कर्म के पुद्‌गल दलिक जब तक हो तभी तक जीव जी सकता है, वे पुद्‌गल दलिक पूर्ण होते ही जीव को अवश्य मरना ही पड़ता है, फिर आहार, औषधि का प्रयोग करने पर भी व्यक्ति जी नहीं सकता है ।

संसारी जीव मृत्यु के समय अपने द्रव्य-आयुष्य (आयुष्य कर्म के दलिक) को तो अवश्य पूर्ण करता है । जीव अपना काल आयुष्य पूरा करता भी है और नहीं भी करता है ।

आयुष्य के दो प्रकार :–

1) अपवर्तनीय :– शस्त्र, जल आदि के प्रहार से जल्दी नष्ट हो जाता हो, उसे अपवर्तनीय आयुष्य कहते हैं । इस आयुष्य में अकाल मृत्यु होती है । अर्थात् पूर्व भव में जितना आयुष्य बाँधा हो, वह आयुष्य पूरा भोगने के पहले ही मृत्यु हो जाती है ।

2) अनपवर्तनीय :– शस्त्र आदि का चाहे जैसा आघात लगे फिर भी जिस आयुष्य के काल में लेश भी हानि नहीं होती हो, उसे अनपवर्तनीय आयुष्य कहते हैं ।

उपक्रम के दो प्रकार :–

1. सोपक्रम :– उपक्रम अर्थात् बाह्य निमित्त । जिस आयु के अंतिम समय में शस्त्र आदि का उपघात लगता हो, उसे सोपक्रम आयुष्य कहते हैं ।

2. निरूपक्रम :– किसी भी प्रकार के बाह्य निमित्त बिना जो आयुष्य पूरा होता हो, उसे निरूपक्रम आयुष्य कहते हैं ।

अनपवर्तनीय आयुष्य की पूर्णाहुति में बाह्य निमित्त होता भी है और नहीं भी होता है अर्थात् वह आयुष्य सोपक्रम और निरूपक्रम दोनों प्रकार का होता है ।

जबकि अपवर्तनीय आयुष्य तो अवश्य सोपक्रम ही होता है, उस उपक्रम (प्रहार) के कारण ही आयुष्य जल्दी पूरा होता है और अकाल मृत्यु होती है ।

अनपवर्तनीय आयुष्य सोपक्रमवाला हो तो भी उसमें आयुष्य घटता नहीं है अर्थात् उसमें अकाल मृत्यु नहीं होती है । वह उपक्रम निमित्त मात्र होता है ।

तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, प्रतिवासुदेव और उसी भव में मोक्ष में जानेवाली चरमशरीरी आत्मा, असंख्य वर्ष के आयुष्यवाले युगलिक तिर्यंच व मनुष्य का आयुष्य अनपवर्तनीय निरूपक्रम होता है, जबकि अन्य तिर्यंच व मनुष्यों का आयुष्य सोपक्रम व निरूपक्रम दोनों प्रकार का होता है ।

आयुष्य उपक्रम के 7 प्रकार :–

1. प्रबल अध्यवसाय :– राग, भय और स्नेह आदि के तीव्र अध्यवसाय के कारण अचानक ही आयुष्य पूरा हो जाता है ।

जैसे 1) पुत्रमरण के अचानक समाचार पाकर हार्टएटेक से पिता की मृत्यु हो जाना ।

2) पति के मरण के आघात से पत्नी की मृत्यु हो जाना ।

दृष्टांत-कृष्ण के आगमन को सुन गजसुकुमाल के हत्यारे सोमिल ब्राह्मण की भय से मृत्यु हो गई ।

राम-लक्ष्मण के स्नेह की परीक्षा के लिए किसी देव ने परीक्षा की, राम की मृत्यु के झूठे समाचार मिलते ही लक्ष्मण की आघात से मृत्यु हो गई थी ।

2. शस्त्र :– तलवार, बंदुक, चाकु, छुरी-ड़ोरी आदि के शस्त्र-प्रहार से भी आयुष्य पर उपघात लगने से अकाल मृत्यु हो जाती है ।

3. अहितकर आहार :– भूख से अति आहार या अयोग्य-अहितकर आहार से भी व्यक्ति की अकाल मृत्यु हो जाती है ।

जैसे संप्रति राजा की पूर्व भव में अति आहार के कारण अकाल मृत्यु हुई थी ।

4. वेदना :– शूल आदि रोगों की असह्यवेदना के कारण भी अचानक आयुष्य पूरा हो जाता है ।

5. पराघात :– ऊपर से पत्थर गिरना, बिजली गिरना, दीवार पर से धक्का लगना आदि के पराघात से भी अकाल मृत्यु हो जाती है ।

6. विष :– सर्पदंश, विषभक्षण आदि से भी अकाल मृत्यु हो जाती है ।

7. श्वासरोध :– नाक दबाने आदि श्वास के अवरोध आदि से भी अकाल- मृत्यु हो जाती है ।

जीव	प्राण
एकेन्द्रिय जीव	**4 प्राण-** 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. कायबल 3. श्वासोच्छ्वास. 4. आयुष्य
द्वीन्द्रिय जीव	**6 प्राण-** 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय. 3. कायबल 4. वचनबल 5. श्वासोच्छ्वास 6. आयुष्य
त्रीन्द्रिय जीव	**7 प्राण** 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय. 3. घ्राणेन्द्रिय 4. कायबल 5 वचनबल 6 श्वासोच्छ्वास 7 आयुष्य
चतुरिन्द्रिय जीव	**8 प्राण** 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4. चक्षुरिन्द्रिय 5 वचनबल 6 कायबल 7 श्वासोच्छ्वास 8 आयुष्य.
असंज्ञी पंचेन्द्रिय	**9 प्राण** 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4 चक्षुरिन्द्रिय 5. श्रोत्रेन्द्रिय 6 वचनबल 7 कायबल 8 श्वासोच्छ्वास 9 आयुष्य
संज्ञी पंचेन्द्रिय	**10 प्राण** 1. स्पर्शनेन्द्रिय 2. रसनेन्द्रिय 3. घ्राणेन्द्रिय 4 चक्षुरिन्द्रिय 5 श्रोत्रेन्द्रिय 6 मनबल 7 वचनबल 8 कायबल 9 श्वासोच्छ्वास 10 आयुष्य

जीव तत्त्व को जानने से लाभ

नौ तत्त्वों में सर्व प्रथम तत्त्व जीव तत्त्व है । जीव तत्त्व ज्ञेय तत्त्व है । जीव तत्त्व को जाने-पहिचाने बिना अन्य तत्त्वों के बोध का कोई अर्थ नहीं है । मूल ही न हो तो वृक्ष टिक नहीं सकता, उसी प्रकार यदि जीव तत्त्व ही न हो तो अन्य तत्त्वों के अस्तित्व का कोई अर्थ नहीं है । जीव तत्त्व का ही बोध न हो तो अन्य तत्त्वों के बोध का कोई अर्थ नहीं है ।

जीव तत्त्व के यथार्थ स्वरूप को जानने से हमें यह ख्याल आता है कि `मैं कौन हूँ ?' `मेरा क्या कर्तव्य है ?' `मैं कहाँ भूल कर रहा हूँ ?'

`जीव' तत्त्व को सही रूप में जाननेवाला ही अपनी आत्मा की शुद्धि के लिए योग्य प्रयत्न कर सकता है ।

2 अजीव तत्त्व

धम्माऽधम्मा-गासा, तिय तिय भेया तहेव अद्धा य ।
खंधा देस पएसा, परमाणु अजीव चउदसहा ।।8।।

शब्दार्थ :–धम्मा=धर्मास्तिकाय, **अधम्मा=**अधर्मास्तिकाय, **आगासा=**आकाशास्तिकाय, **तियतिय=**तीन-तीन, **भेया=**भेदवाले, **तहेव=**उसी प्रकार, **अद्धा=**काल, **खंधा=**स्कंध, **देस=**देश, **पयेसा=**प्रदेश, **परमाणु**-परमाणु, **अजीव=**अजीव, **चउदसहा=**चौदह प्रकार ।

भावार्थ :– अजीव तत्त्व के कुल 14 भेद हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय तीन-तीन भेदवाले हैं तथा काल का एक भेद है, जबकि पुद्गलास्तिकाय के स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु इस प्रकार चार भेद हैं ।

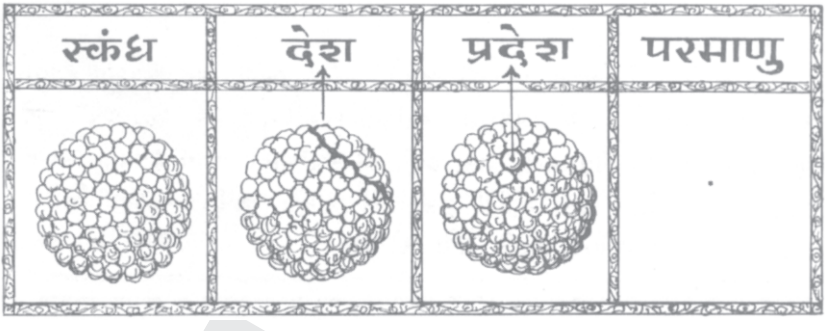

विवेचन :– लोक व्यवहार में धर्म शब्द का अर्थ शुभ क्रिया और अधर्म शब्द का अर्थ पाप अर्थात् अशुभ क्रिया करते हैं ।

जैन दर्शन के चरण करण अनुयोग में धर्म-अधर्म का यही पुण्य-पाप अर्थ करते हैं परंतु जैन दर्शन के द्रव्यानुयोग में धर्म-अधर्म का विशेष अर्थ हैं ।

यहाँ धर्म अर्थात् धर्मास्तिकाय और अधर्म अर्थात् अधर्मास्तिकाय ।

अस्ति अर्थात् प्रदेश और काय अर्थात् समूह । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के स्कंध, देश और प्रदेश रूप तीन-तीन भेद होते हैं ।

1) स्कंध :– संपूर्ण वस्तु को स्कंध कहा जाता है । जैसे टेबल, मूर्ति, पेन, पेंसिल, कुर्सी आदि ।

2) देश :– संपूर्ण वस्तु के आंशिक भाग को देश कहते हैं । जैसे-टेबल का एक पाँव, मूर्ति का हाथ आदि । देश स्कंध से जुड़ा होता है, तभी देश कहलाता है । वह देश अलग हो जाय तो पुनः स्कंध ही कहलाएगा ।

3) प्रदेश :– स्कंध में रहे अविभाज्य अंश को प्रदेश कहते हैं ।

4) परमाणु :– केवली की दृष्टि में अविभाज्य अंश, जिसके पुनः दो टुकड़े नहीं हो सकते हों, ऐसा सूक्ष्म अंश जो स्कंध से अलग पड़ा हो, उसे परमाणु कहते हैं ।

परमाणु का अस्तित्व एक मात्र पुद्गलास्तिकाय में ही है ।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय इन तीन द्रव्यों में मात्र स्कंध, देश और प्रदेश ही हैं, इनमें परमाणु नहीं होता है ।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के स्कंध स्वाभाविक स्कंध हैं, क्योंकि वे हमेशा एक समान स्थिति में रहते हैं, उनमें कभी कुछ भी परिवर्तन नहीं होता है, जबकि पुद्गल के स्कंध वैभाविक स्कंध कहलाते हैं, क्योंकि उनके स्वरूप में परिवर्तन होता रहता है ।

काल एक समय रूप ही है, अतः उसके कोई विशेष भेद-प्रभेद नहीं हैं । भूतकाल बीत चुका है और भविष्यकाल पैदा ही नहीं हुआ है, अतः वर्तमान-काल मात्र एक समय का ही है ।

चौदह राजलोक का विचार किया जाय तो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के प्रदेश एक समान हैं और वे असंख्य हैं, परंतु लोक-अलोक का विचार किया जाय तो आकाशास्तिकाय के प्रदेश अनंत हो जाते हैं, क्योंकि चौदह राजलोक के बाहर अनंत आकाश है ।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य, चौदह राजलोक के भीतर ही हैं, चौदह राजलोक के बाहर नहीं हैं ।

धम्माऽधम्मा पुग्गल, नह कालो पंच हुंति अज्जीवा ।
चलण सहावो धम्मो, थिर संठाणो अहम्मो य ।।9।।

अवगाहो आगासं, पुग्गल-जीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देस पएसा, परमाणु चेव नायव्वा ।।10।।

शब्दार्थ :– **धम्म=**धर्मास्तिकाय, **अधम्मा=**अधर्मास्तिकाय, **पुग्गल=** पुद्गलास्तिकाय, **नह=**आकाश, **कालो=**काल, **पंच=**पाँच, **हुंति=**हैं, **अज्जीवा=**अजीव, **चलण सहावो=**चलने में सहायता करनेवाला, **धम्मो=**धर्मास्तिकाय, **थिर संठाणो=**स्थिर रहने में सहायता करनेवाला, **अहम्मो=**अधर्मास्तिकाय, **अवगाहो=**अवकाश देनेवाले, **आगासं=**आकाशास्तिकाय, **पुग्गल=**पुद्गल, **जीवाण=**जीवों को, **चउहा=**चार प्रकार का, **खंधा=**स्कंध, **देस=**देश, **पएसा=**प्रदेश, **परमाणु=**परमाणु, **चेव=**निश्चित रूप से, **नायव्वा=**जानना चाहिए ।

भावार्थ :– धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, आकाशा स्तिकाय और काल ये पाँच अजीव हैं । उनमें धर्मास्तिकाय गति करने में सहायता करनेवाला है, अधर्मास्तिकाय स्थिर रहने में सहायता करने के स्वभाववाला है, आकाशास्तिकाय जीव और पुद्गल को अवकाश देने के स्वभाववाला है । पुद्गलास्तिकाय स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु की अपेक्षा चार प्रकारवाला है ।

विवेचन :– जिसमें लेश भी चेतना न हो, उसे अजीव तत्त्व कहते हैं । इस अजीव तत्त्व में मुख्यतया 5 द्रव्य आते हैं । 1) धर्मास्तिकाय 2) अधर्मास्तिकाय

3) पुद्गलास्तिकाय 4) आकाशास्तिकाय और 5) काल ।

जैन दर्शन की दृष्टि से यह संपूर्ण जगत् षड् द्रव्य अर्थात् छह द्रव्यों से बना हुआ है, उसमें एक द्रव्य जीवास्तिकाय, जीव स्वरूप है, बाकी 5 द्रव्य धर्मास्तिकाय आदि अजीव स्वरूप हैं ।

इन दो गाथाओं में धर्म-अधर्म आदि 5 अजीव द्रव्यों के लक्षण बतलाए हैं ।

1. धर्मास्तिकाय :– इस जगत् में जीव और पुद्गल द्रव्य में गति रही हुई है । गतिशील जीव और पुद्गल द्रव्य को गति में सहायक **धर्मास्तिकाय द्रव्य** है ।

यदि जगत् में धर्मास्तिकाय नाम का द्रव्य नहीं होता तो कोई भी जीव या पुद्गल इस संसार में कहीं भी गमनागमन नहीं कर सकता ।

जिस प्रकार मछली में तैरने की शक्ति होते हुए भी पानी के अभाव में वह तैर नहीं सकती है ।

पक्षी में उड़ने की शक्ति होने पर भी हवा के अभाव में वह उड़ नहीं सकता है ।

ट्रेन Train में दौड़ने की शक्ति होने पर भी पटरी के अभाव में वह दौड़ नहीं सकती है ।

बस, इसी प्रकार जीव व जड़ पदार्थों को चलने में सहायक **धर्मास्ति-काय** द्रव्य है ।

2. अधर्मास्तिकाय :– जिस प्रकार मार्ग में चलने से थका हुआ पथिक, वृक्ष की छाया देखकर विश्राम करने की इच्छा करता है । वहाँ स्थिर रहने की प्रक्रिया पथिक में होते हुए भी, उसे स्थिर रहने में वृक्ष की छाया मदद करती है । बस, इसी प्रकार जीव और अजीव द्रव्य को स्थिर रहने में अधर्मास्तिकाय द्रव्य सहायता करता है ।

धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्यों में सिर्फ जीव और पुद्गल में ही गति करने का स्वभाव है ।

संसारी जीव कर्म के उदय और पुद्गल के आलंबन से संसार में एक गति से दूसरी गति, एक भव से दूसरे भव में गति करता है । मनुष्य भव व तिर्यंच भव में औदारिक देह की मदद से और परभव में जाते समय कार्मण देह की मदद से जीव गति करता है ।

जीव जब कर्मों के बंधन से सर्वथा मुक्त बनता है, तब अपनी स्वाभाविक ऊर्ध्वगति से सिद्धशिला पर चौदह राजलोक के अग्र भाग में जाकर स्थिर हो जाता है, वहाँ स्थिर रहने में उस जीव को अधर्मास्तिकाय द्रव्य सहाय करता है ।

शुद्ध जीव अर्थात् सिद्धात्मा चौदह राजलोक के आगे गति नहीं करती है, क्योंकि आगे अलोक में आत्मा को गति में सहायक ऐसा धर्मास्तिकाय नाम का द्रव्य नहीं है ।

धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय दोनों द्रव्य चौदह राजलोक व्यापी, एक और अखंड़ द्रव्य हैं । उनका अस्तित्व शाश्वत है अर्थात् ये दोनों द्रव्य शाश्वत हैं ।

इस जगत् का अस्तित्व अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहनेवाला है । जगत् के साथ इन दोनों द्रव्यों का अस्तित्व भी जगत् में अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा ।

जिस प्रकार किसी ईश्वर विशेष ने इस जगत् का निर्माण नहीं किया है, बल्कि यह जगत् अनादिकाल से है, इसी प्रकार इस जगत् में धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्य भी अनादि काल से हैं, उनका भी निर्माण किसी ने नहीं किया है, वे अनादिसिद्ध द्रव्य हैं ।

हम जो कुछ बोलते हैं, उसमें भाषा वर्गणा के पुद्गलों का उपयोग करते हैं । भाषा, श्वासोच्छ्वास, मन आदि पुद्गलों के ग्रहण और विसर्जन का कार्य धर्मास्तिकाय की मदद के बिना शक्य नहीं है । अतः जीव की गति, भाषा, उच्छ्वास तथा मन, वचन काया की प्रवृत्ति में धर्मास्तिकाय उपकार करता है तथा बैठने, खड़े रहने व पौद्गलिक पदार्थों की स्थिरता में अधर्मास्तिकाय मदद करता है अर्थात् जीव की समस्त स्थिर क्रियाओं में अधर्मास्तिकाय उपकारी है ।

द्रव्य/धर्मास्तिकाय Medium of Motion गति सहायक एवं अधर्मास्तिकाय द्रव्य Medium of Rest स्थिरता में सहायक द्रव्य है ।

3. आकाशास्तिकाय :– पुद्गल और जीव को अवगाहना-अवकाश देने में आकाशास्तिकाय का उपकार है ।

आकाश सर्वव्यापी है और अनंत है । चौदह राजलोक में भी आकाश

है और चौदह राजलोक के बाहर भी आकाश है । चौदह राजलोक में रहे आकाश को लोकाकाश कहते हैं और चौदह राजलोक के बाहर रहे आकाश को अलोकाकाश कहा जाता है ।

हम जहाँ रहे हुए हैं, उसके चारों ओर यह आकाश द्रव्य रहा हुआ है ।

ये सारी पृथ्वियाँ व देवलोक में रहे विमान आदि भी आकाश में ही रहे हुए हैं ।

हम जहाँ हैं, वहाँ से 900 योजन नीचे जाने पर अधोलोक चालू होता है, अधोलोक में रत्नप्रभा आदि 7 पृथ्वियाँ रही हुई हैं । ये सारी पृथ्वियाँ घनोदधि अर्थात् जमकर स्थूल बने पानी पर रही हुई हैं । वह घनोदधि, घनवात पर और यह घनवात, तनुवात के आधार पर रहा हुआ है । यह तनुवात आकाश में रहा हुआ है ।

ऊर्ध्वलोक में रहे सभी देवताओं के विमान भी आकाश में रहे हुए हैं ।

यदि पानी से भरे गिलास Glass में गुड़ का टुकड़ा ड़ालते हैं तो वह गुड़ पानी में समा जाता है । जिस प्रकार पानी ने गुड़ को अवकाश दिया, उसी प्रकार आकाशास्तिकाय, जीव तथा पुद्गल आदि सभी द्रव्यों को रहने के लिए जगह देता है ।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय ये सभी द्रव्य 14 राजलोक के विस्तार में ही रहे हुए होने के कारण जैन दर्शन की दृष्टि से यह विश्व चौदह राजलोक प्रमाण माना जाता है ।

एक राजलोक में असंख्य योजन होते हैं । एक राजलोक का प्रमाण जानने के लिए शास्त्र में कहा है कि 1 निमेष (आँख के पलकारे में) मात्र में 1 लाख योजन की दूरी पार करनेवाला देव छह मास में जितनी दूरी पार करता है, उसे एक राजलोक कहते हैं ।

अथवा 3,81,27,970 मण के वजन वाले गोले को जोर से फेंकने पर 6 मास, 6 दिन, 6 प्रहर, 6 घड़ी व 6 समय में जितना अंतर पार करता है, उसे एक राजलोक प्रमाण कहते हैं ।

ऐसे 14 राजलोक प्रमाण यह संपूर्ण लोक है ।

आकाश का कोई वर्ण नहीं है, आकाश में कोई गंध नहीं है, आकाश में रस व स्पर्श भी नहीं है । वह एक अमूर्त द्रव्य है ।

प्रश्न :– आकाश नीला Blue क्यों दिखता है ?

उत्तर :– नीला रंग आकाश का नहीं है, वह रंग तो वायुमंड़ल व अन्य पौद्‌गलिक रज का है ।

दर्शन क्रिया के नियमानुसार जो वस्तु बहुत दूर होती है, वह नीले रंग की ही दिखाई देती है ।

प्रश्न :– आकाश घुम्मट की तरह गोलाकार क्यों दिखता है ?

उत्तर :– अपनी दृष्टि के दोष के कारण ही आकाश गोलाकार दिखता है । अति दूर रही वस्तु हमें गोलाकार दिखती है । सूर्य, चंद्र, तारा आदि की आकृति कुछ भी हो, अति दूरी से वे हमें गोल ही दिखते हैं ।

नैयायिक दर्शन की मान्यता है कि शब्द आकाश का गुण है, वह आकाश में पैदा होता है, जबकि जैन दर्शन की यह स्पष्ट मान्यता है कि आकाश अरूपी एवं शब्द आदि से रहित एवं निष्क्रिय है । शब्द तो पुद्‌गल का गुण है । इसका विशेष वर्णन अगली गाथा में आएगा ।

शब्द यह पुद्‌गल का ही परिणाम है, यह बात आज के वैज्ञानिक प्रयोगों से सिद्ध हो चुकी है । रेड़ियो, ग्रामोफोन, टी.वी. आदि से शब्द की पुद्‌गलता सिद्ध हो चुकी है । शब्द पुद्‌गल रूप होने से ही उसे सर्वत्र भेजा जा सकता है ।

दिशाओं का ज्ञान भी आकाश के निमित्त से ही होता है । ऊपर के भाग को ऊर्ध्वदिशा व नीचे के भाग को अधो दिशा कहते हैं, इसी के आधार पर सभी दिशाओं का ज्ञान होता है ।

भूवलय के मध्य भाग में आए हुए मेरूपर्वत के आठ रूचक प्रदेश को चौदह राजलोक का मध्य भाग माना जाता है, उससे 900 योजन ऊपर और 900 योजन नीचे कुल 1800 योजन का मध्यलोक या तिर्च्छालोक है । मध्यलोक के ऊपर 7 राजलोक प्रमाण ऊर्ध्वलोक और नीचे 7 राजलोक प्रमाण अधोलोक है ।

पुद्‌गलास्तिकाय

पुद् अर्थात् इकट्ठा होना और गल अर्थात् बिखर जाना ।

पुद्‌गल के मुख्य चार भेद हैं-स्कंध, देश, प्रदेश और परमाणु ।

अजीव तत्त्व में परमाणु का विभाग सिर्फ पुद्‌गलास्तिकाय में ही बतलाया गया है ।

यह परमाणु पुद्गल अविभाज्य, अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य तथा अग्राह्य है अर्थात् किसी भी उपाय से उसके दो विभाग नहीं हो सकते हैं । किसी भी शस्त्र द्वारा परमाणु का छेदन या भेदन नहीं हो सकता है । किसी भी प्रकार की अग्नि द्वारा उसे जलाया नहीं जा सकता है अर्थात् वह अदाह्य है तथा किसी भी इन्द्रिय द्वारा एक परमाणु को ग्रहण नहीं कर सकते हैं ।

प्रश्न :– परमाणु अभेद्य है तो उसका विस्फोट कैसे हो सकता है । आज के विज्ञान ने अणुबम की शोध की है तो वह अणुबम कैसे फूटता है ?

उत्तर :– आज का विज्ञान जिसे अणु या परमाणु कहता है, वह वास्तव में जैन दृष्टि से अणु नहीं किंतु अनेक अणुओं का समूह एक स्कंध Molecule ही है, इसी कारण उसका विस्फोट हो सकता है ।

परमाणु की गति :– परमाणु जड़ होते हुए भी उसमें गति करने का स्वभाव है । जघन्य से 1 समय में 1 परमाणु अपने निकटवर्ती आकाश-प्रदेश तक जा सकता है और उत्कृष्ट से चौदह राजलोक के किसी भी अंतिम किनारे तक जा सकता है ।

जिस आकाश-प्रदेश में एक परमाणु रहा हो, उसी आकाश-प्रदेश में दूसरा परमाणु भी स्वतंत्र रूप से रह सकता है और अनंतप्रदेशी स्कंध भी रह सकता है ।

चौदह राजलोक में आकाश-प्रदेश असंख्य हैं, जबकि परमाणु अनंत हैं ।

स्कंध-निर्माण : जगत् में स्वतंत्र रूप से 1-1 परमाणु भी है और वे ही दो परमाणु इकट्ठे होते हैं तो द्विप्रदेशी स्कंध बनता है । इसी प्रकार तीन, चार, पाँच, हजार, लाख, करोड़, असंख्य व अनंत परमाणुओं के इकट्ठा होने पर त्रिप्रदेशी, चतुःप्रदेशी, संख्य प्रदेशी, असंख्य प्रदेशी व अनंतप्रदेशी स्कंध भी बनते हैं ।

जिस प्रकार पर्वत की एक बड़ी शिला टूटने से शिला का स्वतंत्र एक स्कंध बनता है, उसी प्रकार उस शिला के अलग-अलग हजारों टुकड़े हो जाँय तो वे हजारों स्कंध बनते हैं ।

पुद्गल के अन्य लक्षण

सद्दंधयार उज्जोअ, पभा छायातवेहि अ ।
वण्ण गंध रसा फासा, पुग्गलाणं तु लक्खणं ।।11।।

शब्दार्थ :– सद्द=शब्द, **अंधयार=**अंधकार, **उज्जोअ=**उद्योत, **पभा=**प्रभा, **छाया=**प्रतिबिंब, **आतवेहि=**आतप, **अ=**तथा, **वन्न=**वर्ण, **गंध=**गंध, **रसा=**रस, **फासा=**स्पर्श, **पुग्गलाणं=**पुद्गलों का **तु=**तथा, **लक्खणं=**लक्षण ।

भावार्थ : शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श ये पुद्गलों के लक्षण हैं ।

विवेचन :–

1. रूप, रस, गंध और स्पर्श की तरह शब्द, अंधकार, उद्योत, प्रभा, छाया, आतप आदि भी पुद्गल के लक्षण हैं ।

इससे स्पष्ट है कि जैन दर्शन के अनुसार शब्द आदि भी पुद्गल स्वरूप हैं । भारत के कुछ दर्शनकार शब्द को पुद्गल स्वरूप नहीं मानकर उसे आकाश का गुण मानते हैं, परंतु रेड़ियो आदि की शोध से भी यह बात स्पष्ट हो चुकी है कि शब्द आकाश का नहीं, पुद्गल का लक्षण है ।

जैन दर्शन की स्पष्ट मान्यता है कि शब्द यह पुद्गल का ही ध्वनि रूप परिणाम है और वह श्रोत्रेन्द्रिय से ग्राह्य है । शब्द अरूपी और अभौतिक नहीं किंतु मूर्त है ।

• ढ़ोल आदि के बजाने से पृथ्वी में जो कंपन होता है, उसका कारण शब्द की मूर्तता ही है ।

• वाद्ययंत्रों की तीव्र ध्वनि से कान के पर्दे फट जाते हैं, उसका भी कारण शब्द की मूर्तता ही है ।

• पर्वत की गुफाओं आदि में जोर से आवाज करने पर उसकी प्रतिध्वनि सुनाई पड़ती है, वह भी पुद्गल का ही परिणाम है ।

• सूर्य के तेज प्रकाश में तारों आदि का प्रकाश छिप जाता है, उसी प्रकार जोर से बोले गए शब्द की आवाज में धीरे से बोले गए शब्दों की आवाज छिप जाती है ।

इससे स्पष्ट है कि शब्द भी पुद्‌गल का ही परिणाम है ।

2. अंधकार :– नैयायिक दर्शनकार अंधकार को पुद्‌गल रूप न मानकर तेज के अभाव रूप मानते हैं । जबकि जैनदर्शन के अनुसार अंधकार भी पुद्‌गल का ही पर्याय है । अंधकार में श्याम वर्ण और शीत स्पर्श रहा हुआ है । इससे स्पष्ट है कि अंधकार भी पुद्‌गल का ही पर्याय है ।

3. छाया :– प्रकाश पर आवरण आने पर छाया दिखाई देती है, वह भी पुद्‌गल स्वरूप ही है । नीम आदि वृक्षों की छाया शीत स्पर्श वाली है-जो स्वानुभव सिद्ध है ।

छाया के दो प्रकार हैं-1. तद्‌वर्णविकार और 2. अतद्‌वर्णविकार । स्वच्छ दर्पण में जो स्पष्ट मुख दिखाई देता है वह तद्‌वर्णविकार रूप छाया है और अस्वच्छ पदार्थ में प्रतिछाया रूप जो आकार दिखाई देता है, वह अतद्‌वर्ण विकार है ।

इन्हें अंग्रेजी में Refelection और Shadow भी कहते हैं ।

छाया पुद्‌गल स्वरूप है, इसी कारण इसे फोटो केमेरा के द्वारा ग्रहण किया जा सकता है ।

जैन दर्शन की यह स्पष्ट मान्यता है कि बादर परिणामी पुद्‌गल स्कंधों में से प्रति समय पानी के फव्वारे की तरह आठस्पर्शी पुद्‌गल स्कंध का प्रवाह सतत बहता रहता है । वह प्रवाह इतना अधिक सूक्ष्म होता है कि उसे चर्म-चक्षुओं के द्वारा देखा नहीं जा सकता किंतु वैज्ञानिक प्रयोग द्वारा उस आकार को पिण्डीभूत किया जा सकता है । T.V. के पर्दे पर आने वाले दृश्य छाया पुद्‌गलों का ही परिणाम है ।

जैन दर्शन में ब्रह्मचर्य के पालन के लिए जो नौ बाड़ का विधान किया गया है, उसमें एक यह भी है कि जहाँ स्त्री बैठी हो उस स्थान पर पुरुष 48 मिनिट तक नहीं बैठे और जहाँ पुरुष बैठा हुआ हो वहाँ स्त्री तीन प्रहर तक नहीं बैठे-इसके पीछे भी यही विज्ञान रहा हुआ है कि हमारे शरीर में से प्रति समय छाया पुद्‌गल निकलते रहते हैं, जो व्यक्ति के मन को प्रभावित किए बिना नहीं रहते ।

4. प्रकाश-प्रभा :– सूर्य, चंद्र, ग्रह, नक्षत्र, तारा आदि का प्रकाश और उनकी प्रभा भी पुद्‌गल स्वरूप ही है । सूर्य का प्रकाश उष्ण है, जबकि चंद्र का प्रकाश शीतल है ।

1) वर्ण :– वर्ण अर्थात् रंग colour वर्ण के मुख्य पाँच भेद हैं 1) सफेद 2) लाल 3) पीला 4) नीला और 5) काला । इन मुख्य पाँच वर्णों के मिश्रण से हजारों रंग उत्पन्न हुए दिखाई देते हैं । जो भी वर्ण है, वे सब पुद्गल स्वरूप ही है ।

दृष्टांत क्रमश :– 1) खरगोश 2) टमाटर 3) हल्दी 4) पोपट 5) काजल ।

2. गंध :– गंध के दो भेद हैं 1) सुगंध और 2) दुर्गंध । प्रत्येक परमाणु में इन दोनों में से एक गंध अवश्य होती है ।

दृष्टांत सुगंध=कस्तूरी, दुर्गंध=विष्ठा ।

3. रस :– रस के मुख्य पाँच प्रकार हैं 1) कड़वा 2) तीखा 3) कषाय (कसैला) 4) खट्टा और 5) मीठा । परमाणु में इन पाँचों में से कोई एक रस अवश्य होता है ।

दृष्टांत :– 1) **कड़वा**-नीम, 2) **तीखा**-मिर्च 3) **कषाय**-त्रिफला 4) **खट्टा**-नींबू 5) **मीठा**-शक्कर ।

स्पर्श :– स्पर्श के आठ भेद हैं-शीत, उष्ण, स्निग्ध, रूक्ष, लघु, गुरू, मृदु और कर्कश ।

दृष्टांत 1. **शीत=**बर्फ 2 **उष्ण=**आग
3. **स्निग्ध=**घी 4. **रुक्ष=**राख
5. **लघु=**रूई 6. **गुरू=**लोहा
7. **मृदु=**मक्खन 8. **कर्कश=**करवत

पुद्गलास्तिकाय

जिस द्रव्य में संयोजन-विभाजन की क्रिया निरंतर चलती रहती है, उसे पुद्गल कहते हैं । धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और जीवास्तिकाय द्रव्यों में प्रदेश (अविभाज्य अंश) कभी भी मूल द्रव्य से अलग नहीं पड़ता है, जबकि पुद्गल में संयोजन-विभाजन की क्रिया सतत चलती रहती है ।

धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य अरूपी हैं, जबकि पुद्गलास्तिकाय रूपी द्रव्य है । उसके चरम परमाणु को तो हम अपने चर्मचक्षु द्वारा नहीं देख सकते हैं किंतु उसी परमाणु रूप द्रव्य को भी केवलज्ञानी प्रत्यक्ष देख सकते हैं ।

हम अपनी आँखों से जिन जिन भौतिक पदार्थों को देखते हैं, वे सब पुद्‌गल रूप ही हैं और वे सब पदार्थ अनंत परमाणुओं के संयोजन से बने स्कंधस्वरूप ही हैं ।

सूक्ष्म पुरमाणु

श्री **भगवती सूत्र** में कहा है कि परमाणु पुद्‌गल अविभाज्य, अछेद्य, अभेद्य, अदाह्य और अग्राह्य है ।

- तात्पर्य यह है कि किसी शस्त्र आदि के द्वारा परमाणु का और विभाजन नहीं किया जा सकता है ।
- तीव्र अग्नि से भी उसे जलाया नहीं जा सकता है ।
- इन्द्रियों के माध्यम से उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता है ।
- परमाणु हमेशा अप्रदेशी होता है, उसका और विभाजन नहीं हो सकता ।
- पुद्‌गल में पाँच वर्ण, पाँच रस, दो गंध और आठ स्पर्श होते हैं ।
- पुद्‌गल की संख्या अनंत है ।
- पुद्‌गल द्रव्य के पर्याय बदलते रहते हैं, परन्तु उसके मूल द्रव्य का कभी नाश नहीं होता है ।
- प्रत्येक परमाणु में 5 वर्ण में से एक वर्ण, पाँच रस में से एक रस, दो गंध में से एक गंध और आठ स्पर्श में से दो स्पर्श (स्निग्ध-रूक्ष में से एक और शीत-उष्ण में से एक) होते हैं ।
- प्रत्येक परमाणु में विवक्षित काल में जो वर्ण, गंध, रस आदि होते हैं, वे सदा काल के लिए नहीं होते हैं, उनमें परिवर्तन होता रहता है ।

स्कंध निर्माण-अनेक परमाणुओं के संयोग से ही स्कंध का निर्माण होता है । दृश्यमान टेबल, कुर्सी, पेन, पेंसिल आदि अनंत परमाणुओं के ही स्कंध है ।

दो आदि परमाणुओं के संयोजन में परमाणु में रही हुई स्निग्धता और रूक्षता ही मुख्य कारण है ।

1. कोई दो परमाणु लें, उन दोनों में स्निग्धता गुण है । उन दोनों की स्निग्धता के बीच कम-से-कम दो गुणा अंतर हो तभी उन दो परमाणुओं का संयोग हो सकता है और एक स्कंध बन सकता है । जैसे एक परमाणु में दो गुणा स्निग्धता हो तो दूसरे परमाणु में चार गुणा स्निग्धता होनी चाहिए ।

2. दूसरे दो परमाणु लें-उन दोनों में रूक्षता है । ये दोनों परमाणु भी सजातीय स्पर्श वाले हैं, परन्तु उन दोनों की रूक्षता के बीच दो गुणा अंतर होना आवश्यक है, तभी उन दो परमाणुओं के बीच संयोग हो सकता है ।

3. दूसरे दो परमाणु लें-एक परमाणु में स्निग्धता है और दूसरे परमाणु में रूक्षता है-तो उन दोनों का संयोग अवश्य हो जाएगा । दोनों के समान गुण हों या विषम गुण हों । दो गुण स्निग्धता व दो गुण रूक्षता वाले परमाणु का भी स्कंध बनता है और एक गुण स्निग्धता और दो या तीन गुण रूक्षता वाले परमाणु का भी स्कंध बनता है ।

हाँ ! एक गुण रूक्षता और एक गुण स्निग्धता वाले-जघन्य गुण वाले परमाणु का कभी संयोग नहीं होता है ।

इस जगत् में स्वतंत्र रूप से 1-1 परमाणु भी अनंत रहे हुए हैं । दो-दो परमाणुओं के संयोग वाले स्कंध भी अनंत हैं । तीन, चार, पाँच, आठ, दस, लाख, करोड़, असंख्य और अनंत परमाणुओं के संयोग से बने हुए स्कंध भी अनंत हैं ।

कोई भी स्कंध अधिकतम, असंख्य काल तक एक ही स्थिति में रह सकता है, उसके बाद उसके परमाणु अवश्य अलग पड़ते हैं ।

बंध योग्य स्निग्धता-रूक्षता के प्रमाण में परिवर्तन हो जाने पर भी स्कंध का अवश्य विघटन हो जाता है ।

परमाणुओं की विलक्षणता यह है कि जिस आकाश प्रदेश में एक परमाणु रहा हो, उसी आकाश प्रदेश में दूसरा परमाणु भी रह सकता है, और उसी आकाश प्रदेश में अनंत प्रदेश वाला स्कंध भी रह सकता है ।

पुद्गल के भेद :–

1. अतिस्थूल:– जिस पुद्गल स्कंध का छेदन-भेदन हो सकता हैं, जिसे अन्यत्र ले जाया जा सकता है वह अतिस्थूल स्कंध है । जैसे-पाषाण, लकड़ी आदि ।

2. स्थूल :– जिस पुद्गल स्कंध का छेदन-भेदन नहीं हो सकता हो परन्तु उन्हें अन्यत्र ले जा सकते हैं । जैसे-दूध, दही, तेल, पानी आदि ।

3. स्थूल-सूक्ष्म :– जिस पुद्गल स्कंध का छेदन भेदन नहीं हो सकता हो, और चक्षु से दृश्यमान हो, जैसे-धूप, छाया आदि ।

4. सूक्ष्म-स्थूल :– जो पुद्गल स्कंध नेत्र को छोड़ अन्य इन्द्रियों से ही ग्राह्य हो सकते हों, उन्हें सूक्ष्म स्थूल कहते हैं । उदा. वायु, बाष्प आदि ।

5. सूक्ष्म :– जो पुद्गल स्कंध किसी भी इन्द्रिय द्वारा ग्राह्य न हो, उन्हें सूक्ष्म कहते हैं जैसे-मनोवर्गणा, भाषा वर्गणा, कार्मण वर्गणा ।

6. सूक्ष्म-सूक्ष्म :– जो मनोवर्गणा आदि से भी अधिक सूक्ष्म हो, उसे सूक्ष्म-सूक्ष्म कहते हैं । जैसे-द्विप्रदेशी, त्रिप्रदेशी आदि स्कंध ।

परमाणु की सूक्ष्मता व गति :– 19 वीं शताब्दी के अंत तक वैज्ञानिक यह मानते थे कि `अणु' Atom यह पदार्थ की अंतिम स्थिति है । परतु 1911 में एक सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक ने स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि, जिसे हम अणु Atom कहते हैं वह तो वास्तव में सौरमंड़ल के समान है । उसके केन्द्र में प्रोटोन है और उसके चारों ओर इलेक्ट्रोन घूम रहे हैं ।

वास्तव में देखा जाय तो वैज्ञानिक जिसे परमाणु कहते हैं वह तो जिनागमों के अनुसार अनंत परमाणुओं का ही स्कंध है ।

परमाणु की गति के संदर्भ में जिनागमों में कहा है कि एक परमाणु असंख्य आकाश प्रदेश से बने चौदह राजलोक में एक ही समय में गति कर सकता है । चौदह राजलोक के पूर्व चरमांत से पश्चिम चरमांत तक व उत्तर चरमांत से दक्षिण चरमांत तक परमाणु एक ही समय में जा सकता है ।

परमाणु की गति कल्पनातीत है । आज वैज्ञानिक भी कहते हैं-

प्रत्येक इलेक्ट्रोन अपनी कक्षा में प्रति सेकंड़ 1300 मील की गति कर देता है ।

प्रकाश की एक किरण एक सेकंड़ में 1 लाख 86 हजार मील दूर चली जाती है ।

पुद्गलों की 16 महावर्गणाएँ

इस 14 राज लोक प्रमाण लोक में जितने पुद्गल परमाणु हैं, उन सब को मुख्यतया 8 भागों में बाँट सकते हैं-

1. औदारिक 2. वैक्रिय 3. आहारक 4. तैजस 5. भाषा 6. श्वासोच्छ-वास 7. मन और 8. कार्मण । ये आठ वर्गणाएँ क्रमशः सूक्ष्म-सूक्ष्मतर हैं । ग्रहण और अग्रहण की अपेक्षा इनके 16 भेद हो सकते हैं–

1-2 औदारिक अग्रहण और औदारिक ग्रहण महावर्गणा :–

इस जगत् में स्वतंत्र रूप से एक-एक परमाणु भी अनंत की संख्या में बिखरे हुए हैं, परन्तु वे सब परमाणु अग्राह्य हैं ।

दो-दो परमाणुओं के संयोजन से बने स्कंध भी इस दुनिया में अनंत हैं ।

तीन-तीन, चार-चार, करोड़-करोड़, असंख्य-असंख्य और अनंत-अनंत परमाणुओं के संयोजन से बनी हुई वर्गणाएँ भी इस दुनिया में अनंत हैं ।

अनंत परमाणुओं के समूह से बनी ये वर्गणाएँ भी जीवात्मा के द्वारा अग्राह्य होती हैं । ये औदारिक अग्रहण वर्गणा कहलाती हैं । अग्रहण वर्गणा में 1 परमाणु जुड़ने पर वही औदारिक ग्रहण वर्गणा बन जाती है । अनंत परमाणुओं के स्कंध से बनी यह औदारिक वर्गणा, मनुष्य और तिर्यंच के द्वारा ग्राह्य होती है ।

जैसे कोई व्यापारी मात्र सौ-सौ के नोटों से ही व्यापार में लेन-देन करता हो, तो उसके लिए एक से निन्न्यान्वें रुपये अग्राह्य हो जाते है । फिर एक रुपया बढ़ने पर सौ पूर्णांक होने से ग्राह्य हो जाते है । पुनः एक सौ एक से एक सौ निन्न्यान्वें रुपये अग्राह्य हो जाते है । फिर एक रुपया बढ़ने पर दो सौ पूर्णांक होने से ग्राह्य हो जाते है । वैसे ही इन सभी ग्राह्य-अग्राह्य वर्गणाओं में भी समझना चाहिए ।

3-4 वैक्रिय अग्रहण और वैक्रिय ग्रहण महावर्गणा :– औदारिक ग्रहण वर्गणा के स्कंधों में एक-एक परमाणु की वृद्धि से लेकर अनंत परमाणु की वृद्धि होती है, तब वे स्कंध औदारिक और वैक्रिय दोनों के लिए अग्राह्य हो जाते हैं । पुनः उनमें एक-एक परमाणु की क्रमशः वृद्धि होने पर वह वैक्रिय शरीर वाले देव, नारक और वैक्रिय लब्धिधारी मानवों से ग्रहण योग्य बनती है । औदारिक वर्गणा की अपेक्षा वैक्रिय वर्गणा में परमाणुओं की वृद्धि होने पर भी वह महावर्गणा सूक्ष्म-सूक्ष्म बनती जाती है ।

5-6 आहारक अग्रहण तथा आहारक ग्रहण महावर्गणा वैक्रिय ग्रहण वर्गणा के स्कंधों में अनंत परमाणुओं की वृद्धि हो जाने पर वह वैक्रिय और आहारक के लिए अग्रहण योग्य बन जाती है । तत्पश्चात् उनमें एक-एक परमाणु की वृद्धि होने पर वह आहारक लब्धिधारी मुनियों के लिए ग्रहण योग्य बनती है ।

चौदह पूर्वधर आहारक लब्धिधारी महात्मा अपने संशय के निराकरण के लिए एक हाथ प्रमाण आहारक महावर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण कर आहारक शरीर का निर्माण करते हैं । इस शरीर को सीमंधर स्वामी प्रभु आदि किसी के पास भेजकर, उनसे समाधान प्राप्त कर वापस लाते हैं । इन सब क्रियाओं में एक अन्तर्मुहूर्त का ही समय लगता है ।

7-8. तैजस अग्रहण और तैजस ग्रहण महावर्गणा :– ग्रहण किए आहार को पचाने में तैजस शरीर काम करता है । शरीर में रही जठराग्नि भी वास्तव में तैजस शरीर ही है ।

आहारक महावर्गणा में अनंत परमाणु जुड़ने पर वह तैजस अग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है और उसी अग्रहण योग्य वर्गणा में एक परमाणु मिलने पर वह तैजस ग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है ।

9-10 भाषा अग्रहण और भाषा के लिए ग्रहण योग्य महावर्गणा :– तैजस वर्गणा के द्वारा ग्राह्य स्कंधों में अनंत परमाणु मिलने पर वह भाषा अग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है और उसी में 1 परमाणु मिलने पर वह भाषा के लिए ग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है ।

11-12 श्वासोच्छ्वास अग्रहण और श्वासोच्छ्वास ग्रहण महावर्गणा :– भाषा वर्गणा के स्कंधों में अनंत परमाणु जुड़ने पर वह श्वासोच्छ्वास के लिए अग्रहण योग्य बन जाती है और उसी में 1 परमाणु की वृद्धि होने पर वह श्वासोच्छ्वास ग्रहण योग्य महावर्गणा बन जाती है ।

13-14 मन अग्रहण और मन ग्रहण महावर्गणा :– श्वासोच्छ्वास महावर्गणा के स्कंधों में जब अनंत परमाणुओं की वृद्धि हो जाती है तब वह मन के लिए अग्रहण वर्गणा बन जाती है और उसी में 1 परमाणु की वृद्धि होने पर मन के लिए ग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है ।

15-16 कार्मण अग्रहण और कर्म ग्रहण महावर्गणा : मनो वर्गणा के स्कंधों में अनंत परमाणु की वृद्धि होने पर वह कर्म के लिए अग्रहण योग्य बन जाती है और उसी में अनंत परमाणु जुड़ने पर वह कर्म के लिए ग्रहण योग्य वर्गणा बन जाती है ।

आत्मा जो राग-द्वेष करती है, उसे भाव कर्म कहते हैं और उसी भाव कर्म के फल स्वरूप आत्मा द्रव्य कर्म रूप इस कार्मण वर्गणा को ग्रहण करती है । यही कार्मण वर्गणा जब आत्मा पर चिपकती है, तब उसके परिणामस्वरूप आत्मा को इस संसार में जन्म-जरा-मरण-आधि-व्याधि-उपाधि आदि की भयंकर पीड़ाएँ सहन करनी पड़ती हैं ।

काल द्रव्य

एगा कोड़ि सत्तसट्ठि, लक्खा सत्तहत्तरी सहस्सा य ।
दो य सया सोलहिया, आवलिआ इग मुहुत्तम्मि ।।12।।
समयावली मुहुत्ता, दीहा पक्खा य मास वरिसा य ।
भणिओ पलिया सागर, उस्सप्पिणी-सप्पिणी कालो ।।13।।

शब्दार्थ : एगाकोड़ि=एक करोड़, **सत्तसट्ठि=**सड़सठ, **लक्खा=**लाख, **सत्तहत्तरि=**सतहत्तर, **सहस्सा=**हजार, **दो सया=**दो सौ, **सोल=**सोलह, **अहिया=**अधिक, **आवलिया=**आवलिका, **एग=**एक, **मुहुत्तम्मि=**मुहूर्त में, **समय=**समय, **आवली=**आवलिका, **मुहुत्ता=**मुहूर्त्त, **दीहा=**दिन, **पक्खा=**पक्ष, **मास=**मास, **वरिसा=**वर्ष, **य=**और, **भणियो=**कहा है, **पलिया=**पल्योपम, **सागर=**सागरोपम, **उस्सप्पिणी=**उत्सर्पिणी, **सप्पिणी=**अवसर्पिणी, **कालो=**काल-चक्र ।

भावार्थ : एक मुहूर्त में 1 करोड़ 67 लाख 77 हजार 216 से कुछ आवलिकाएँ होती हैं ।

समय, आवली, मुहूर्त, दिन, पक्ष, मास, वर्ष, पल्योपम, सागरोपम, उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल कहा है ।

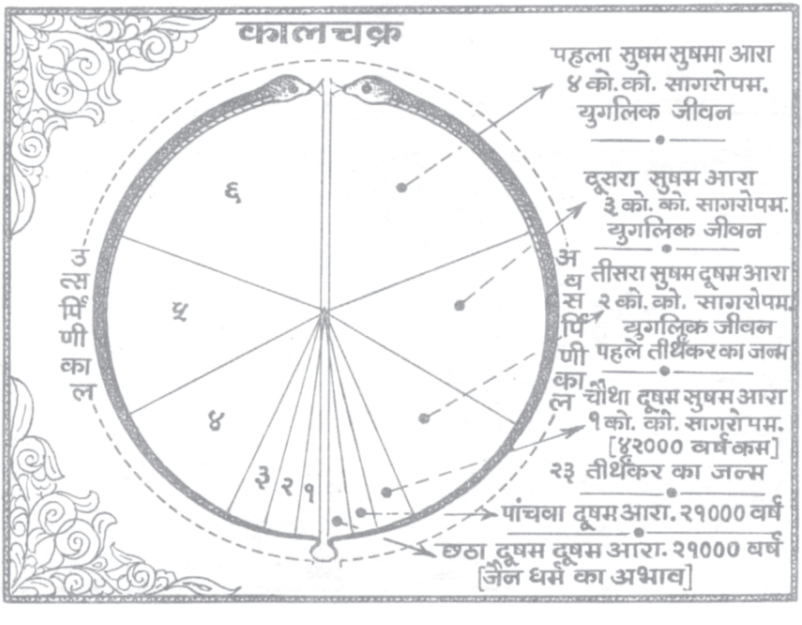

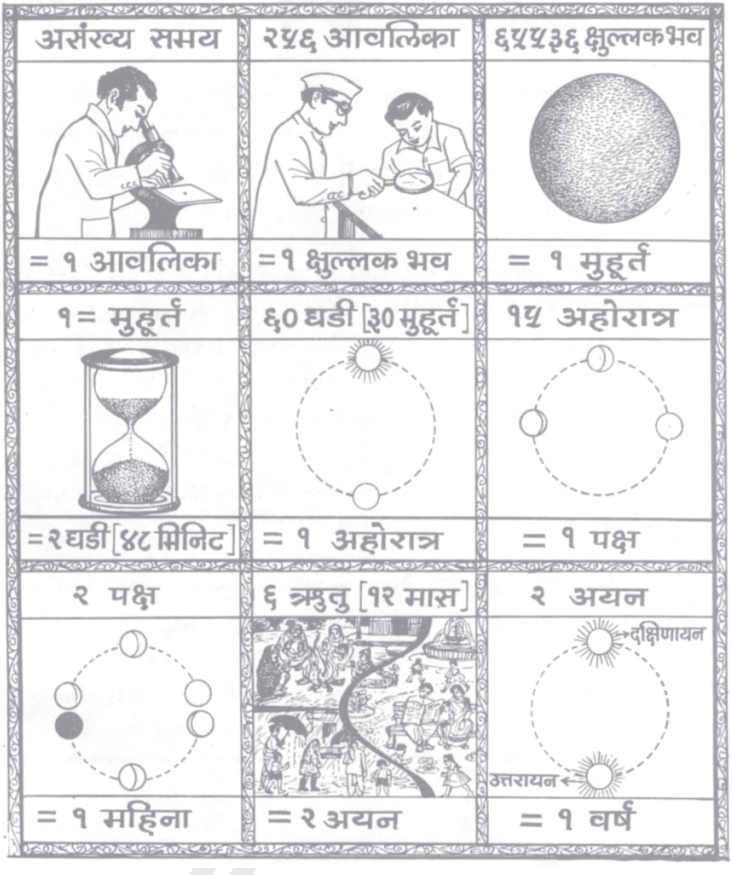

काल द्रव्य

काल, वर्तना लक्षण वाला है । किसी भी प्रकार के पदार्थ को काल के द्वारा ही जाना जा सकता है । नई वस्तु को पुरानी बनाने का काम, काल ही करता है ।

• हम अपनी घड़ी से भी काल का विभाजन करते हैं । काल के सूक्ष्म अंश को सेकण्ड आदि कहते हैं । परंतु केवलज्ञानी की दृष्टि में सेकंण्ड के भी असंख्य हिस्से हो सकते हैं ।

• केवलज्ञानी की दृष्टि से काल के अविभाज्य अंश को समय कहते हैं । निश्चय काल एक समय का है और आवलिका-मुहूर्त आदि व्यवहार काल है ।

• निश्चय से काल के अविभाज्य अंश को इकट्ठा नहीं किया जा सकता, इसी कारण काल को 'अस्तिकाय' नहीं माना गया है ।

काल का प्रमाण

काल अविभाज्य अंश	= एक समय
असंख्य समय	= 1 आवलिका
1,67,77,216 आवलिका	= 1 मुहूर्त
दो घड़ी	= 1 मुहूर्त
7 श्वासोच्छ्वास	= 1 स्तोक
7 स्तोक	= 1 लव
77 लव	= 1 मुहूर्त
256 आवलिका	= निगोद के जीव का क्षुल्लक भव
30 मुहूर्त	= 1 अहोरात्र
15 अहोरात्र	= 1 पक्ष
2 पक्ष	= 1 मास
2 मास	= 1 ऋतु
6 मास	= 1 अयन
12 मास	= 1 वर्ष
5 वर्ष	= 1 युग
84 लाख वर्ष	= 1 पूर्वांग
84 लाख पूर्वांग	= 1 पूर्व
असंख्य वर्ष	= 1 पल्योपम
10 कोटा कोटि पल्योपम	= 1 सागरोपम
10 कोटा कोटि सागरोपम	= 1 उत्सर्पिणी अथवा 1 अवसर्पिणी
20 कोटा कोटि सागरोपम	= 1 कालचक्र
अनंत काल चक्र	= पुद्गल परावर्तनकाल

पल्योपम :– एक योजन लंबे-चौड़े व गहरे खड्डे में 1 से 7 दिन के जन्मे हुए युगलिक बालक के बालों के छोटे-छोटे टुकड़े कर उसे इस प्रकार भर दिया जाए कि चक्रवर्ती के सैन्य से भी वह दबे नहीं, फिर उस कुंए में से प्रति 100 वर्ष बाद 1-1 बाल बाहर निकालने पर जब वह कुँआ खाली हो जाए- उतने काल को एक पल्योपम कहते हैं ।

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल–

महाविदेह क्षेत्र में अवस्थित काल है अर्थात् वहाँ सदा के लिए जीवों के आयुष्य, ऊँचाई आदि की स्थिति एक समान है, जबकि भरत और ऐरवत क्षेत्र में परिवर्तन होता रहता है ।

जिस काल में जीवों की ऊँचाई, आयुष्य, बल, बुद्धि तथा पुद्गलों के वर्ण-गंध-रस-स्पर्श आदि शुभ-शुभतर बनते जाते हों, उसे उत्सर्पिणी काल कहते हैं और जिस काल में जीवों की ऊँचाई आदि में तथा पुद्गलों के वर्ण-गंध आदि में हानि होती रहती हो, उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं ।

एक उत्सर्पिणी काल में 10 कोटा कोटि सागरोपम और एक उत्सर्पिणी में भी 10 कोटा कोटि सागरोपम होते हैं ।

अवसर्पिणी काल के छह आरे

नाम	1 सुषम सुषम	2 सुषम	3 सुषम दु:षम	4 दु:षम सुषम	5 दु:षम	6 दु:षम दु:षम
काल	चार कोटा कोटि सागरोपम	3 कोटा कोटि सागरोपम	2 कोटा कोटि सागरोपम	42 हजार वर्ष न्यून 1 कोटा कोटि सागरोपम	21000 वर्ष	21000 वर्ष
मनुष्य आयुष्य	3 पल्योपम	2 पल्योपम	1 पल्योपम	1 करोड़ पूर्व वर्ष	130 वर्ष	20 वर्ष
ऊँचाई	तीन गाउ	दो गाउ	एक गाउ	500 धनुष	7 हाथ	2 हाथ
आहार	तीन दिन में 1 बार	2 दिन में 1 बार	प्रतिदिन	प्रतिदिन	प्रतिदिन	प्रतिदिन
आहार प्रमाण	तुअर के दाने प्रमाण	बोर प्रमाण	आवले प्रमाण	अनियमित	अनियमित	अनियमित
पुत्र पालन	49 दिन	64 दिन	79 दिन	–	–	–

उत्सर्पिणी काल में ठीक इससे विपरीत होता है ।

भरत व ऐरवत क्षेत्र में तीसरे-चौथे वा पांचवें आरे में धर्म व तीर्थंकर का शासन होता है । शेष आरों में लगभग युगलिक काल होता है ।

अवसर्पिणी काल के पहले, दूसरे व तीसरे आरे में एवं उत्सर्पिणी काल के चौथे, पाँचवें व छठे आरे में युगलिक काल होता है ।

परिणामी जीव मुत्तं, सपएसा एग खित्त किरिया य ।
णिच्चं कारण कत्ता सव्वगय इयर अप्पवेसे ।।14।।

शब्दार्थ :– परिणामी=परिणमनशील, **जीव=**जीव, **मुत्तं=**मूर्त, **सप-एसा=**प्रदेश सहित, **एग=**एक, **खित्त=**क्षेत्र, **किरिया=**क्रियावाला, **णिच्चं=**नित्य, **कारण=**कारण, **कत्ता=**कर्ता, **सव्वगय=**सर्वगत, **इयर=**प्रतिपक्षी भेद, **अप्पवेसे=**अप्र-वेशी, **य=**और ।

भावार्थ :– परिणामीपना, जीवपना, रूपीपना, सप्रदेशीपना, एक-पना, क्षेत्रपना, क्रियापना, नित्यपना, कारणपना, कर्त्तापना, सर्वव्यापीपना तथा अन्य में अप्रवेशीपना इत्यादि प्रकार से विचार करना चाहिए ।

विवेचन :– जीव और अजीव तत्त्व के वर्णन के साथ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल रूप छह द्रव्यों का वर्णन पूरा हुआ । अब इस गाथा में इन छह द्रव्यों का परिणामी आदि 12 द्वारों से विचार किया गया है । इस प्रकार चिंतन करने से षड्द्रव्यों का विशद बोध होता है ।

1. षड्द्रव्यों में परिणामी-अपरिणामी=

परिणामी अर्थात् परिवर्तनशील Changeable

धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्यों में जीव और पुद्गल द्रव्य परिणामी अर्थात् परिवर्तनशील हैं, जबकि धर्मास्तिकाय आदि शेष चार द्रव्य अपरि-णामी अर्थात् अपरिवर्तनशील हैं ।

जीव के मुख्य 10 परिणाम हैं-

1) गति :– देव आदि चार गतियों में जीव का परिवर्तन होना । जैसे-देव में से मनुष्य बनना ।

2) इन्द्रिय :– जीव कभी एक इन्द्रियवाला होता है, कभी दो इन्द्रिय-वाला ।

3) कषाय :– संसारी जीव कभी क्रोधी होता है, कभी मानी ।

4) लेश्या :– संसारी जीव कभी कृष्ण लेश्यावाला होता है, कभी नील लेश्यावाला होता है ।

5) योग :– संसारी जीव कभी मनोयोग, कभी वचनयोग तो कभी काययोग के परिणामवाला होता है ।

6) उपयोग :– संसारी जीव कभी ज्ञानोपयोगवाला होता है, कभी दर्शनोपयोगवाला होता है ।

7) ज्ञान :– संसारी जीव कभी मतिज्ञान, कभी श्रुतज्ञान तो कभी अवधिज्ञान के उपयोगवाला होता है ।

8) दर्शन :– संसारी जीव कोई क्षायोपशमिक, कोई औपशमिक, कोई क्षायिक सम्यक्त्व या कोई जीव मिथ्यात्व से युक्त होता है ।

9) चारित्र :– सामायिक आदि 5 प्रकार के चारित्रवाला होना, यह चारित्र का परिणाम है ।

10) वेद :– संसारी जीव स्त्री, पुरूष या नपुंसक में से किसी एक वेद वाला होता है ।

2. पुद्गल के परिणाम

1. बंध परिणाम :– पुद्गल परमाणुओं का परस्पर संबंध होना, यह बंध परिणाम कहलाता है ।

2. गति परिणाम :– पुद्गल परमाणु का एक स्थान से दूसरे स्थान में जाना यह गति परिणाम है ।

3. संस्थान परिणाम :– पुद्गल परमाणु परस्पर मिलकर अन्य-अन्य आकार को धारण करते हैं, वह संस्थान परिणाम कहलाता है ।

4. भेद परिणाम :– किसी स्कंध में से पुद्गल परमाणुओं का अलग होना, यह भेद परिणाम है ।

5. वर्ण परिणाम :– पुद्गल के वर्ण में परिवर्तन होना, यह वर्ण परिणाम है ।

6. गंध परिणाम :– पुद्गल परमाणु के गंध में परिवर्तन होना, जैसे सुगंधित पदार्थ का दुर्गंधित बनना ।

7. रस परिणाम :– पुद्गल के रस में परिवर्तन होना ।

8. स्पर्श परिणाम :– पुद्गल के स्पर्श में परिवर्तन होना ।

9. अगुरूलघु परिणाम :– पुद्गल में गुरूत्व, लघुत्व, गुरूलघुत्व और अगुरूलघुत्व रूप परिणाम होता है ।

10. शब्द परिणाम :– पुद्‌गल में तत, वितत आदि अनेक प्रकार के शब्द परिणाम पैदा होते हैं ।

2. षड् द्रव्यों में जीव-अजीव का विचार :– धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्यों में एक मात्र जीवास्तिकाय रूप द्रव्य ही 'जीव' स्वरूप है, शेष पाँच द्रव्य चैतन्यरहित अजीव स्वरूप हैं ।

3. षड्द्रव्यों में मूर्त-अमूर्त :– धर्मास्तिकाय आदि छह द्रव्यों में एक मात्र पुद्‌गल द्रव्य ही मूर्त है, शेष सभी द्रव्य अमूर्त अर्थात् वर्ण आदि से रहित हैं ।

यद्यपि संसारी जीव को रूपी कहा गया है, परंतु मूल द्रव्य की अपेक्षा जीव, वर्ण आदि से रहित अर्थात् अरूपी-अमूर्त है ।

4. षड्द्रव्यों में सप्रदेशी-अप्रदेशी :– छह द्रव्यों में एक मात्र काल द्रव्य के प्रदेश नहीं होते हैं अर्थात् काल द्रव्य अप्रदेशी है, जबकि धर्मास्तिकाय आदि पाँच द्रव्य प्रदेशयुक्त हैं, अतः सप्रदेशी हैं ।

5. षड् द्रव्यों में एक-अनेक :– छह द्रव्यों में धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय रूप द्रव्य इस संसार में एक-एक ही हैं जबकि जीवास्तिकाय, पुदगलास्तिकाय और काल द्रव्य अनेक अर्थात् अनंत हैं ।

6. छह द्रव्यों में क्षेत्र-क्षेत्री :– जिसमें अन्य पदार्थ रहते हों, उसे क्षेत्र कहते हैं और रहनेवाले को क्षेत्री कहते हैं । छह द्रव्यों में आकाशास्तिकाय द्रव्य क्षेत्र है, जबकि अन्य पाँच द्रव्य क्षेत्री हैं ।

7. छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रिय :– जिस द्रव्य में गति आदि क्रिया होती हो, उसे सक्रिय कहते हैं और जिस द्रव्य में किसी भी प्रकार की क्रिया नहीं होती हो, उसे निष्क्रिय कहा जाता है ।

छह द्रव्यों में जीव और पुद्‌गल सक्रिय हैं और शेष सभी चार द्रव्य निष्क्रिय हैं ।

8. छह द्रव्यों में नित्य-अनित्य :– जो द्रव्य सदैव एक ही स्थिति में रहता हो, उसे नित्य कहते हैं और जिस द्रव्य की अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, उसे अनित्य कहा जाता है । छ द्रव्यों में जीव व पुद्‌गल द्रव्य की अवस्थाएँ बदलती रहती हैं, अतः ये दो द्रव्य अनित्य हैं, शेष चार द्रव्य नित्य हैं अर्थात् धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्यों में कभी भी कुछ भी परिवर्तन नहीं होता है ।

9. छह द्रव्यों में कारण-अकारण :– एक द्रव्य अन्य द्रव्य के कार्य में निमित्त बनता हो, सहायक बनता हो उसे कारण द्रव्य कहते हैं और जो किसी भी कार्य में सहायक नहीं बनता हो, उसे अकारण द्रव्य कहते हैं ।

धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य गति, स्थिरता, अवगाहना-प्रदान आदि में जीव को सहायता करते हैं, पुद्गल द्रव्य भी जीव के मन, वचन आदि योगों में सहायक बनते हैं, अतः धर्मास्तिकाय आदि 5 द्रव्य कारण द्रव्य हैं, जबकि जीव द्रव्य, अन्य किसी द्रव्य को कोई सहायता नहीं करता है, अतः जीव अकारण द्रव्य कहलाता है ।

10. छह द्रव्यों में कर्ता-अकर्ता :– जो द्रव्य, अन्य द्रव्यों का उपभोग करनेवाला हो, उसे कर्त्ता कहते हैं और उपभोग में आनेवाले द्रव्यों को अकर्ता कहा जाता है ।

छह द्रव्यों में सिर्फ जीव द्रव्य कर्त्ता है, क्योंकि यह अन्य द्रव्यों का उपभोग करनेवाला है, जबकि शेष पाँच द्रव्य अकर्ता हैं ।

11 छह द्रव्यों में सर्वव्यापी-देशव्यापी :– जो द्रव्य सर्वत्र रहा हो, उसे सर्वव्यापी कहते हैं और जो द्रव्य चौदह राजलोक के कुछ भाग में हो उसे देशव्यापी कहते हैं । इस दृष्टि से आकाश द्रव्य लोक-अलोक में होने से सर्व व्यापी है और शेष द्रव्य देशव्यापी हैं ।

12 छह द्रव्यों में सप्रवेशी-अप्रवेशी :– जो द्रव्य दूसरे द्रव्य में प्रवेश कर सकता हो, उसे सप्रवेशी द्रव्य कहते हैं और जो अन्य द्रव्य में प्रवेश नहीं करता हो, उसे अप्रवेशी कहते हैं । धर्मास्तिकाय कभी अधर्मास्तिकाय नहीं होता है, जीव कभी पुद्गल नहीं होता है, इस दृष्टि से सभी द्रव्य अप्रवेशी माने गए हैं ।

3 पुण्य तत्त्व

सा उच्चगोअ मणुदुग, सुरदुग पंचिंदिजाइ पणदेहा ।
आइ-ति-तणूणुवंगा, आइम संघयण संठाणा ।।15।।

वन्न चउक्का-गुरुलहु-परघा उस्सास आयवुज्जोअं ।
सुभखगइ निमिण तसदस, सुरनर-तिरिआउ तित्थयरं ।।16।।

तस बायर पज्जत्तं, पत्तेअ थिरं सुभं च सुभगं च ।
सुस्सर आइज्ज जसं, तसाइ दसगं इमं होइ ।।17।।

शब्दार्थ :– **सा=**शातावेदनीय **उच्चगोअ=**उच्च गोत्र **मणुदुग=**मनुष्य-द्विक **सुरदुग=**देवद्विक **पंचिंदिय=**पंचेन्द्रिय **जाइ=**जाति **पणदेहा=**पाँच शरीर **आइ=**पहले **ति=**तीन **तणूण=**शरीर **उवंगा=**उपांग **आइम=**पहला **संघयण=**संघयण **संठाणा=**संस्थान ।

वन्नचउक्क=वर्ण चतुष्क **अगुरुलहु=**अगुरूलघु **परघा=**पराघात **उस्सास=**श्वासोच्छ्वास **आयव=**आतप **उज्जोअं=**उद्योत **सुभखगइ=**शुभ विहा-योगति **निमिण=**निर्माण **तसदस=**त्रसदशक **सुर=**देव **नर=**मनुष्य **तिरिआउ=**तिर्यंच आयुष्य **तित्थयरं=**तीर्थंकर नामकर्म ।

तस=त्रस **बायर=**बादर **पज्जत्तं=**पर्याप्त **पत्तेअं=**प्रत्येक **थिरं=**स्थिर **सुभं=**शुभ **च=**और **सुभगं=**सौभाग्य **सुस्सर=**सुस्वर **आइज्ज=**आदेय **जसं=**यश **तसाइ=**त्रस आदि **दसगं=**दशक **इमं=**यह **होइ=**है ।

भावार्थ :– शाता वेदनीय, उच्चगोत्र, मनुष्य द्विक (मनुष्य गति, मनुष्यानुपूर्वी), देवद्विक (देवगति-देवानुपूर्वी) पंचेंद्रिय जाति, पाँचशरीर, पहले तीन शरीर के उपांग, पहला संघयण और पहला संस्थान ।

वर्ण चतुष्क (शुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श) अगुरूलघु, पराघात, श्वासोच्छ्वास, आतप, उद्योत, शुभ विहायोगति, निर्माण, त्रस दशक, देव आयुष्य, मनुष्य आयुष्य और तिर्यंच का आयुष्य ।

त्रस, बादर, पर्याप्त, प्रत्येक, स्थिर, शुभ, सौभाग्य, सुस्वर, आदेय और यश ये दश त्रसदशक कहलाते हैं ।

विवेचन :– जीव, अजीव के बाद नौ तत्त्वों में तीसरा पुण्य तत्त्व आता है ।

अशुभ कर्म अर्थात् पाप कर्म से मलिन बनी हुई आत्मा को यह धीरे-धीरे पवित्र करता है ।

संसारी जीवों को संसार में जो कुछ सुख मिलता है, जो कुछ भी पाँच इन्द्रियों के अनुकूल सामग्री मिलती है, लोक में मान-सम्मान, इज्जत-प्रतिष्ठा आदि प्राप्त होती है, वह सब पुण्य कर्म के उदय का ही फल है ।

मोक्ष मार्ग के अनुकूल सामग्री अर्थात् मनुष्य भव, पाँच इन्द्रियों की परिपूर्णता, देव-गुरु का संयोग आदि सब कुछ पुण्यकर्म के उदय से ही प्राप्त होता है ।

इसी कारण पुण्य तत्त्व को उपादेय माना गया है । हाँ ! मोक्ष की प्राप्ति के लिए पुण्य तत्त्व का त्याग भी जरूरी है ।

ठीक ही कहा है, **'कृत्स्नकर्मक्षयान् मोक्षः ।'** जब संपूर्ण कर्मों का क्षय होता है, तब आत्मा का मोक्ष होता है । उस कर्मक्षय में, पाप कर्म के साथ पुण्य कर्म का भी क्षय जरूरी है । पुण्य कर्म भी सत्ता में पड़ा हो, तब तक आत्मा का मोक्ष नहीं होता है ।

एक सद्गृहस्थ श्रावक को अपने स्वयं के जीवन-निर्वाह एवं परिवार के पालन-पोषण आदि के लिए धन आदि की अपेक्षा रहती है, आगामी भवों में मानव भव, पंचेन्द्रिय-पूर्णता व देव गुरू धर्म की सामग्री की अपेक्षा रहती है, अतः श्रावक जीवन में पुण्यबंध की क्रियाओं को भी उपादेय माना गया है । उस पुण्य के बंध हेतु ही श्रावक-जीवन में सुपात्र दान, अनुकंपादान, साधर्मिक भक्ति, प्रभु-भक्ति, गुरू-भक्ति आदि शुभक्रियाओं को उपादेय माना गया है ।

शास्त्रकार महर्षियों ने सद्गृहस्थ को वे सब क्रियाएँ करने का विधान किया है, क्योंकि उन सब शुभ क्रियाओं से उपार्जित पुण्य से ही धर्म आराधना के अनुकूल सामग्री की प्राप्ति होती है ।

साधु-जीवन में कर्मनिर्जरा की प्रधानता है, पुण्यबंध की क्रियाएँ गौण हैं । इसलिए साधु-जीवन में निर्जरा प्रधान-कायोत्सर्ग, जाप, स्वाध्याय आदि की प्रधानता है, जबकि दान, प्रभुपूजा आदि पुण्यबंध की क्रियाओं का सर्वथा निषेध है ।

पुण्य कर्म का बंध नौ प्रकार से होता है, जबकि 9 प्रकार से बँधा हुआ वह पुण्य 42 प्रकार से उदय में आता है ।

यहाँ पुण्य तत्त्व के, पुण्य के उदय की अपेक्षा से 42 भेद बतलाए हैं, अतः इन दो गाथाओं में पुण्य के उदय की 42 पुण्य प्रकृतियों का नामोल्लेख किया गया है ।

यह पुण्य कर्म जब उदय में आता है तब जीव को भिन्न-भिन्न प्रकार की सुख सामग्री प्राप्त होती है ।

संसार के सभी प्राणी कर्म के अधीन हैं । कर्म के अनुसार ही संसारी जीव सुख-दुःख प्राप्त करते हैं । संसारी जीवों को अपने किए हुए कर्मों का फल अवश्य भुगतना ही पड़ता है । इच्छा करे या न करे, किए हुए कर्म का फल अवश्य भुगतना पड़ता है ।

पुण्य कर्म किया होगा तो उसका फल, सुख मिलने ही वाला है और पाप कर्म किया होगा तो नहीं चाहने पर भी दुःख आने ही वाला है ।

पुण्यबंध के नौ हेतु :–

1) अन्नदान :– भूखे को भोजन देने से पुण्य का बंध होता है । साधु-साध्वी, श्रावक तथा श्राविका आदि सुपात्र कहलाते हैं, उनको अन्नदान देने से उत्कृष्ट पुण्य का बंध होता है । श्री अरिहंत परमात्मा रत्नपात्र कहलाते हैं, साधु-साध्वी सुवर्ण पात्र कहलाते हैं और श्रावक-श्राविका रजतपात्र कहलाते हैं । उनको दिया गया दान मोक्ष का कारण बनता है ।

शालिभद्र ने पूर्वभव में मासक्षमण के तपस्वी महात्मा को खीर का दान दिया था, इसके फलस्वरूप शालिभद्र को अपार भौतिक सुख-सामग्री भी मिली तो साथ में मोक्षमार्ग के अनुकूल सामग्री चारित्र धर्म आदि की भी प्राप्ति हुई ।

सुपात्र में दिया दान मोक्ष का कारण बनता है, जबकि दीन-दुःखी व अनाथ को दिया दान परलोक में भौतिक सुख-सामग्री प्रदान करता है ।

2. जलदान :– सुपात्र आत्माओं को जल का दान करने से उत्कृष्ट पुण्य का बंध होता है और दीन-दुःखी को पानी पिलाने से परलोक में सुखदायी ऐसे पुण्य का बंध होता है ।

3. आसनदान :– पात्र आत्माओं को बैठने के लिए आसन देने से भी पुण्य का बंध होता है ।

4. शयनदान :– पात्र आत्माओं को सोने की सामग्री प्रदान करने से पुण्य का बंध होता है ।

5. वस्त्रदान :– पात्र आत्माओं को वस्त्र का दान देने से पुण्य का बंध होता है ।

6. मन पुण्य :– `जगत् के जीवों का कल्याण हो' `दुःखी प्राणी दुःख से मुक्त बनें' ऐसी मानसिक उत्तम भावनाओं से भी पुण्य का बंध होता है ।

7. वचन पुण्य :– वाणी द्वारा दूसरों को हितकारी वचन बोलने से, वाणी द्वारा प्रभु की स्तुति या गुणगान करने से भी पुण्य का बंध होता है ।

8. काय पुण्य :– दूसरों की भलाई में अपनी काया का उपयोग करने से भी पुण्य का बंध होता है ।

9. देवगुरू को नमस्कार :– वीतराग परमात्मा और निर्ग्रंथ गुरू को सद्भावपूर्वक नमस्कार, वंदन, पूजन, सत्कार करने से, उनका आदर-बहुमान करने से भी पुण्य का बंध होता है ।

पुण्य के दो प्रकार :

1) पुण्यानुबंधी पुण्य :– इहलोक और परलोक संबंधी आशंसा से रहित होकर निष्काम भाव से जब आत्मा देव-गुरू-धर्म की भक्ति में प्रवृत्त होती है तो वह आत्मा पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध करती है । निष्काम भाव से जिनशासन की प्रभावना हो ऐसी प्रवृत्ति करने से जिन-प्रतिमा-निर्माण, जिन-मंदिर-निर्माण, जिन भक्ति, देवद्रव्य की वृद्धि, पौषधशाला निर्माण, साधर्मिक की भक्ति तथा किसी को सद्धर्म में स्थिर करने से पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध होता है ।

सम्यग्दृष्टि देशविरति व सर्वविरतिधर आत्मा अपनी शुभ-प्रवृत्तियों द्वारा पुण्यानुबंधी पुण्य का बंध करती है ।

आसन्नभवी आत्माओं को पुण्यानुबंधी पुण्य का उदय होता है । इस पुण्य के उदय से आत्मा इस लोक में भी उत्कृष्ट भौतिक सुख प्राप्त करती है तो साथ में उन सुखों का सर्वथा त्यागकर उत्कृष्ट चारित्र-धर्म की आराधना-साधना के लिए भी उद्यमशील बनती है ।

2) पापानुबंधी पुण्य :– इसलोक और परलोक संबंधी सुखों की आशंसा के मलिन भाव पूर्वक शुभ-प्रवृत्ति करने से पापानुबंधी पुण्य का बंध होता है ।

◆ मिथ्यात्व-पूर्वक जिनाज्ञा से निरपेक्ष रहकर पंचाग्नितप आदि जो अज्ञान तप किया जाता है, उससे पापानुबंधी पुण्य का बंध होता है ।

◆ परलोक संबंधी नियाणा करने से भी पापानुबंधी पुण्य का बंध होता है ।

इस पुण्य के उदय से भौतिक सुख-सामग्री तो मिल जाती है, परंतु वह सामग्री मिलने के बाद दान आदि धर्म करने की बिल्कुल इच्छा नहीं होती है । ऐसा व्यक्ति शक्ति होने पर भी दान नहीं दे पाता है । शारीरिक शक्ति होने

पर भी तप नहीं कर पाता है । ऐसे व्यक्ति को धर्म प्रवृत्ति सुझती नहीं है । ऐसा व्यक्ति पाप प्रवृत्ति खूब आसक्ति पूर्वक करता है और मरकर दुर्गति में जाता है ।

पापानुबंधी पुण्य भी त्याज्य गिना गया है, ऐसे पुण्य का बंध न हो, उसका ख्याल रखना चाहिए !

जिस पुण्य के उदय में पुण्य की परंपरा चलती हो अर्थात् जिस पुण्य के उदय से नवीन पुण्य बंध करने की प्रवृत्ति होती हो, वह पुण्य का अनुबंध करानेवाला पुण्यानुबंधी पुण्य है ।

जिस पुण्य के उदय में पाप प्रवृत्ति करने का मन होता हो, वह पापानुबंधी पुण्य कहलाता है ।

पुण्यानुबंधी पुण्य मार्ग बतानेवाला Guide गाइड़ जैसा है जो मोक्ष का मार्ग बताकर चला जाता है ।

पापानुबंधी पुण्य लुटेरे जैसा है, जो आत्मा के आत्म-धन को लूट लेता है ।

पुण्यानुबंधी पुण्य उपादेय है ।

पापानुबंधी पुण्य हेय है ।

पुण्य प्रकृति के उदय के 42 भेद

1. शाता वेदनीय :– वेदनीय कर्म के दो भेद हैं, उसमें शाता वेदनीय पुण्य प्रकृति रूप है । इसके उदय से जीव को नीरोग काया, विपुल धन-संपत्ति व अनुकूल परिवार की प्राप्ति होती है, जिससे जीव संसार में आनंद, सुख का अनुभव कर पाता है । शालिभद्र आदि को शातावेदनीय का तीव्र उदय था ।

2. उच्च गोत्र :– इस कर्म के उदय से जीव ऊँचे कुल-गोत्र में पैदा होता है । उग्रकुल, भोगकुल, हरिवंशकुल आदि में जन्म पुण्य के उदय से होता है । सद्धर्म की आराधना-साधना में उच्च कुल भी सहायक बनता है ।

3-4. मनुष्य द्विक :– मनुष्य गति और मनुष्यानुपूर्वी ये दोनों नाम कर्म की प्रकृतियाँ हैं । मनुष्य गति नाम कर्म के उदय से जीवात्मा को मनुष्य भव की प्राप्ति होती है ।

एक भव से दूसरे भव में जाने के लिए आनुपूर्वी नाम कर्म की सहायता रहती है ।

देव, नरक व तिर्यंच भव से मनुष्य भव में वक्रगति से आना हो तब मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म मदद करता है ।

5-6. देवद्विक :– किसी भी जीव को देव भव की प्राप्ति देवगति नाम कर्म के उदय से होती है तथा मनुष्य व तिर्यंच के भव से देव भव में जाना हो तब विग्रह गति के समय देवानुपूर्वी नामकर्म सहायक बनता है ।

7. पंचेंद्रिय जाति :– इस पुण्य प्रकृति के उदय से जीव पंचेंद्रिय अवस्था प्राप्त करता है । मनुष्य, देव, तिर्यंच व नारक भव में जीवात्मा को इस पुण्य कर्म के उदय से पाँच इन्द्रियों की प्राप्ति होती है ।

8 से 12 पाँच शरीर :– संसारी जीव को औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मण शरीर की प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है । मनुष्य व तिर्यंच का शरीर औदारिक शरीर है, देव व नारकों का शरीर वैक्रिय शरीर है । चौदह पूर्वधर आहारक लब्धिवाले आहारक शरीर बनाते हैं, उसमें आहारक शरीर नाम कर्म काम करता है । तैजस शरीर आहार आदि को पचाने का काम करता है ।

13-15. औदारिक, वैक्रिय व आहारक अंगोपांग :– औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीर के अंग-उपांग की भी प्राप्ति पुण्य के उदय से होती है ।

औदारिक अंगोपांग नाम कर्म के उदय से औदारिक शरीर संबंधी अंग-उपांग व्यवस्थित प्राप्त होते हैं, वैक्रिय शरीर अंगोपांग नाम कर्म के उदय से वैक्रिय शरीर संबंधी अंगोपांग व्यवस्थित प्राप्त होते हैं । आहारक अंगोपांग नाम कर्म के उदय से आहारक शरीर संबंधी अंगोपांग व्यवस्थित प्राप्त होते हैं ।

16. वज्रऋषभनाराच संघयण नामकर्म :– वज्र अर्थात् कीली, ऋषभ अर्थात् वेष्टन-पट्टी और नाराच अर्थात् दोनों ओर मर्कट बंध । जिस संघयण में दोनों ओर से मर्कट बंध से बंधी हुई दो हड्डियों को भेदने वाली हड्डी पर तीसरी हड्डी की कील लगी हो उसे वज्रऋषभ नाराच कहते हैं । जिस कर्म के उदय से हड्डियों की इस प्रकार की रचना हो उसे वज्रऋषभ नाराच संघयण कहते हैं ।

17. समचतुरस्र संस्थान :– सम्=समान, चतुर्=चार, अस्र-कोण । पर्यंकासन में बैठे हुए पुरूष के दो घुटने का अंतर, बाएँ स्कंध से दाएँ घुटने का अंतर, दाएँ स्कंध और बाएँ घुटने का अंतर तथा आसन और ललाट का अंतर एक समान हो उसे समचतुरस्र संस्थान कहते हैं । पुण्य कर्म के उदय

से जीव को इस संस्थान की प्राप्ति होती है । तीर्थंकर आदि उत्तम आत्माओं को इस संस्थान की प्राप्ति होती है ।

18-19-20-21. शुभवर्ण चतुष्क :– पाँच वर्ण में श्वेत, लाल व पीला वर्ण शुभ है । सुरभि गंध श्रेष्ठ है ।

खट्टा, मीठा व कषाय रस शुभ हैं ।

लघु, मृदु, उष्ण और स्निग्ध चार शुभ स्पर्श हैं ।

पुण्य के उदय से शुभवर्ण, गंध, रस और स्पर्श की प्राप्ति होती है ।

22. अगुरूलघु नाम कर्म :– अति भारी शरीर भी दुःख का कारण बनता है और एकदम हल्का शरीर भी दुःखदायी होता है । न भारी और न हल्का, ऐसा शरीर अगुरूलघु नाम कर्म के उदय से मिलता है । यह भी पुण्य प्रकृति है ।

23. पराघात नाम कर्म :– यह एक पुण्य प्रकृति है जिसके उदय से जीव अपने अस्तित्व मात्र से अथवा वचन मात्र से अन्य व्यक्तियों पर अपना प्रभाव ड़ाल सकता है । उस कर्म के उदय से जीव अपने से अधिक बलवान, बुद्धिमान और विद्वानों की दृष्टि में भी अजेय दिखाई देता है । उसके प्रभाव से ही वे पराभूत हो जाते हैं ।

24. श्वासोच्छ्वास नाम कर्म :– इस पुण्य कर्म के उदय से जीव आराम से श्वासोच्छ्वास ले सकता है । व्यवस्थित नाड़ी तंत्र की प्राप्ति पुण्य के उदय से ही होती है ।

25. आतप नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव का अपना शरीर शीत होने पर भी उष्ण प्रकाश देता हो, उसे आतप नामकर्म कहते हैं । इस आतप नामकर्म का उदय सूर्यबिंब के बाहर रहे पृथ्वीकाय के जीवों को होता है । इन जीवों के सिवाय सूर्यमंड़ल के अन्य जीवों को आतप नामकर्म का उदय नहीं होता है ।

अग्निकाय के जीवों को भी इस कर्म का उदय नहीं होता है, क्योंकि अग्निकाय के जीवों का शरीर स्वयं उष्ण है । इस कर्म का उदय उन्हीं जीवों को होता है जिनका शरीर स्वयं ठंड़ा हो और उनका प्रकाश उष्ण हो । यह भी एक पुण्य प्रकृति ही है ।

26. उद्योत नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव अपने शरीर द्वारा शीत प्रकाश फैलाता हो, उसे उद्योत नामकर्म कहते हैं, चंद्र आदि ज्योतिषी विमान के जीवों को इस कर्म का उदय होने से वे ठंड़ा प्रकाश देते हैं । खद्योत

व कुछ वनस्पति को भी इस कर्म का उदय होता है । साधु व देव के उत्तर वैक्रिय शरीर में भी इस कर्म का उदय होता है ।

27. शुभ विहायोगति :– जिस पुण्य कर्म के उदय से जीव की चाल (गति) हाथी, बैल, हंस आदि की तरह शुभ होती है ।

28. निर्माण नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव के अंग-उपांग आदि व्यवस्थितरूप से होते हैं, उसे निर्माण नाम कर्म कहते हैं, यह भी पुण्य प्रकृति है ।

29-38. तक त्रसदशक

29. त्रस नाम कर्म :– इस पुण्यकर्म के उदय से जीव को त्रसपने की प्राप्ति होती है । जो जीव सुख-दुःख की परिस्थिति में अपनी इच्छानुसार कहीं भी जा-आ सकते हों, वे त्रस जीव कहलाते हैं । बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव त्रस कहलाते हैं ।

30. बादर नाम कर्म :– इस पुण्य कर्म के उदय से जीव को बादर अर्थात् (बड़े) शरीर की प्राप्ति होती है । यह शरीर लोक व्यवहार में काम लगता है ।

31. पर्याप्त नामकर्म :– जिस शक्ति द्वारा जीव, पुद्गलों को ग्रहणकर उन्हें आहार आदि के रूप में परिणत करता है उसे पर्याप्ति कहते हैं । ये पर्याप्तियाँ कुल छह हैं-आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन । एकेन्द्रिय जीवों को चार, बेइन्द्रिय-तेइन्द्रिय-चउरिन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को पाँच पर्याप्ति तथा संज्ञी पंचेन्द्रिय जीवों को छह पर्याप्ति होती हैं ।

इस पुण्य कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण कर सकता है ।

32. प्रत्येक नामकर्म :– जिस पुण्यकर्म के उदय से जीव को स्वतंत्र रूप से शरीर की प्राप्ति होती है, उसे प्रत्येक नाम कर्म कहते हैं ।

33. स्थिर नामकर्म :– जिसके उदय से शरीर की धातु तथा उपधातुएँ अपने अपने स्थान में स्थिरता को प्राप्त हों, वह स्थिर नामकर्म है ।

34. शुभ नामकर्म :– जिसके उदय से शरीर के अवयव व्यवस्थित होते हैं वह शुभनाम कर्म है ।

35. सुभग नामकर्म :– जिसके उदय से अन्यजन में प्रीतिकर अवस्था होती है, वह सुभग नामकर्म है ।

36. सुस्वर नामकर्म :– जिसके उदय से मनोज्ञस्वर की रचना होती हैं, वह सुस्वर नामकर्म है ।

37. आदेय नामकर्म :– जिस नामकर्म के उदय से जिसका वचन सभी को ग्राह्य होता है, वह आदेय नामकर्म है ।

38. यश नामकर्म :– प्रसिद्धि का कारणभूत यशनाम कर्म है ।

39. देव आयुष्य :– जिस कर्म के उदय से जीव जितने काल तक देवभव में रह सकता हो, उसे देव आयुष्य कहते हैं ।

अपने आयुष्य कर्म के अनुसार ही जीव किसी भी गति में रह सकता है । पुण्य के उदय से जीवात्मा को देव आयुष्य की प्राप्ति होती है ।

40. मनुष्य आयुष्य :– जीव का जितना मनुष्य आयुष्य कर्म हो, उतने समय तक जीव मनुष्य भव में रह सकता है । मनुष्य आयुष्य की प्राप्ति भी पुण्य के उदय से ही होती है ।

41. तिर्यंच आयुष्य :– तिर्यंच जीव भी जीना चाहते हैं, मरना नहीं चाहते हैं । उन जीवों को भी पुण्य के उदय से ही आयुष्य की प्राप्ति होती है ।

42. तीर्थंकर नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव, त्रिभुवन में पूज्य ऐसे तीर्थंकर पद को प्राप्त करता है । तीर्थंकर बननेवाली आत्मा ही अपने पूर्व के तीसरे भव में इस तीर्थंकर नाम कर्म को निकाचित करती है । इस कर्म का प्रदेशोदय तीर्थङ्कर नाम कर्म के बंध के अन्तर्मुहूर्त बाद और इस कर्म का रसोदय तीर्थंकर की आत्मा को केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद होता है ।

इस कर्म के उदय से आत्मा अष्ट महाप्रातिहार्य आदि से विभूषित बनती है और जगत् के जीवों को धर्मोपदेश देती है ।

4 पाप तत्त्व

नाणंतराय दसगं, नव बीए नीअसाय मिच्छत्तं ।
थावर दस निरयतिगं, कसाय पणवीस तिरियदुगं ।।18।।

इग बि ति चउ जाइओ, कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स ।
अपसत्थं वन्न चऊ, अपढ़म संघयण-संठाणा ।।19।।

थावर सुहुम अपज्जं, साहारण-मथिर-मसुभ-दुभगाणि ।
दुस्सरणाइज्ज जसं, थावर दसगं विवज्जत्थं ।।20।।

शब्दार्थ :– नाणंतराय=ज्ञानावरणीय और अंतराय **दसगं=**दश **नव=**नौ **बीए=**दूसरा दर्शनावरणीय कर्म **नीअ=**नीच गोत्र **असाय=**अशाता वेदनीय **मिच्छत्तं=**मिथ्यात्व **थावरदस=**स्थावर दशक **निरयतिगं=**नरक त्रिक **कसायपणवीस=**कषाय के 25 भेद **तिरिय दुगं=**तिर्यंच द्विक ।

इग=एकेन्द्रिय **बि=**द्वीन्द्रिय **ति=**तेइन्द्रिय **चउ=**चतुरिन्द्रिय **जाइओ=**जाति **कुखगइ=**अशुभ विहायोगति **उवघाय=**उपघात **हुंति=**हैं **पावस्स=**पाप के भेद **वन्नचउ=**वर्ण चतुष्क **अपसत्थ=**अप्रशस्त **अपढ़म=**प्रथम को छोड़कर **संघयण=**संघयण **संठाणा=**संस्थान ।

थावर=स्थावर **सुहुम=**सूक्ष्म **अपज्जं=**अपर्याप्त **साहारणं=**साधारण **अथिरं=**अस्थिर **असुभ=**अशुभ **दुभगाणि=**दौर्भाग्य **दुस्सर=**खराब स्वर **अणाइज्ज=**अनादेय **अजसं=**अपयश **थावर दसगं=**स्थावर दशक **विवज्जत्थं=**विपरीत अर्थवाले ।

भावार्थ :– ज्ञानावरणीय और अंतराय की 10 प्रकृति, दर्शनावरणीय की 9, नीच गोत्र, अशाता वेदनीय, मिथ्यात्व मोहनीय, स्थावर दशक । नरकत्रिक, पच्चीस कषाय और तिर्यंच द्विक ! ।

भावार्थ :– एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, अशुभ विहायोगति, उपघात, अप्रशस्त वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, पहले को छोड़कर पाँच संघयण और पाँच संस्थान । ये पाप तत्त्व के 82 भेद हैं ।

भावार्थ : स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दौर्भाग्य, दुःस्वर, अनादेय और अपयश ये स्थावर दशक, त्रस दशक के विपरीत अर्थवाले हैं ।

विवेचन :– जगत् में जो कुछ भी दु:ख है, वह सब पाप मात्र का फल है । जगत् में यदि पाप नहीं होता तो जगत् में कोई जीव दु:खी नहीं होता !

जगत् में रहे जीवों की पाप-प्रवृत्ति चालू है तो उसी के परिणामस्वरूप जीवों के जीवन में दु:ख की परंपरा भी चालू है ।

कर्म को बांधने व कर्मफल को भोगने में हर जीव स्वतंत्र है अर्थात् एक जीव का बंधा हुआ कर्म अन्य जीव को सुख-दु:ख नहीं देता है । जिस जीव ने कर्म का बंध किया हो, उसी जीव को उस कर्म की सजा भुगतनी पड़ती है ।

दर्द किसी और को हो और दवा अन्य व्यक्ति खाए तो दर्दी का रोग मिटता नहीं है । बस, इसी प्रकार जो आत्मा कर्म का बंध करती है, उसी आत्मा को उस कर्म की सजा भुगतनी पड़ती है ।

मूल ही नहीं होगा तो वृक्ष कहाँ टिकेगा ? पाप ही नहीं होगा तो पाप का फल दु:ख कहाँ से आएगा ?

शास्त्र में पाप बंध के 18 स्थान बतलाए हैं अर्थात् आत्मा 18 प्रकार से पाप का बंध करती है ।

पाप के मुख्य दो भेद हैं-

(1) पापानुबंधी पाप :– जिस पाप के उदय में आत्मा नए पाप कर्म का बंध करती हो उसे पापानुबंधी पाप कहा जाता है । इस पाप के उदयवाली आत्मा ऐसे भी दु:खी ही होती है और वर्तमान में भी पापकर्म का आचरण कर अपने भविष्य को भी दु:खमय बनाती है ।

(2) पुण्यानुबंधी पाप :– जिस पापकर्म के उदय में भी व्यक्ति पुण्य कर्म-प्रवृत्ति में प्रवृत्त होता हो उसे पुण्यानुबंधी पाप कहते हैं । जैसे-पाप के उदय के कारण व्यक्ति निर्धन है, किंतु उस निर्धन दशा में भी वह थोड़े में भी थोड़ा दान पुण्य करता हो तो उसे पुण्यानुबंधी पाप का उदय कहा जाएगा ।

पापबंध के 18 कारण

1. हिंसा-मन, वचन और काया के योगों से किसी जीव को पीड़ा पहुँचाने से पाप कर्म का बंध होता है ।

2. झूठ-मन, वचन और काया से झूठ बोलने से, अप्रिय बोलने से पाप कर्म का बंध होता है ।

3. चोरी-मन, वचन और काया से चोरी की वृत्ति-प्रवृत्ति करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

4. मैथुन-मन, वचन और काया से अब्रह्म का सेवन करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

5. परिग्रह-मन, वचन और काया से परिग्रह धारण करने से पापकर्म का बंध होता है ।

6. क्रोध-किसी पर गुस्सा करने से पाप का बंध होता है ।

7. मान-अभिमान करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

8. माया-माया-कपट करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

9. लोभ-लोभ करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

10. राग-मन व पाँच इन्द्रियों को प्रिय वस्तु पर राग करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

11. द्वेष-अप्रतिकूल व अप्रिय वस्तु पर, व्यक्ति पर द्वेष, घृणा, तिरस्कार करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

12. कलह-निरर्थक झगड़ा आदि करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

13. अभ्याख्यान-किसी पर झूठा आरोप लगाने से पाप कर्म का बंध होता है ।

14. पैशुन्य-किसी की चुगली खाने से पाप कर्म का बंध होता है ।

15. रति-अरति :– अनुकूल-प्रतिकूल संयोगों में हर्ष-विषाद करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

16. पर-परिवाद :– दूसरों की निंदा करने से पाप कर्म का बंध होता है ।

17. माया-मृषावाद :– मायापूर्वक झूठ बोलने से पापकर्म का बंध होता है ।

18. मिथ्यात्व :– सुदेव, सुगुरू व सुधर्म की उपेक्षा कर कुदेव, कुगुरू में श्रद्धा करने से, जिनवचन से विपरीत वचनों में श्रद्धा करने से मिथ्यात्व रूप पाप कर्म का बंध होता है ।

पापोदय के 82 भेद

1-5 ज्ञानावरणीय कर्म के 5 भेद–

1. मतिज्ञानावरणीय कर्म :– मन और इन्द्रियों की सहायता से होनेवाले पदार्थ बोध को मतिज्ञान कहते हैं और उसके आवारक कर्म को मतिज्ञानावरणीय कहते हैं ।

2. श्रुतज्ञानावरणीय कर्म :– शब्द का श्रवण कर जो अर्थबोध होता है, उसे श्रुतज्ञान कहते हैं और उसे रोकने वाले कर्म को श्रुतज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

3. अवधिज्ञानावरणीय कर्म :– इन्द्रिय और मन की सहायता बिना द्रव्य-क्षेत्र-काल की मर्यादा में आत्मा को प्रत्यक्ष रूपी द्रव्यों का जो ज्ञान होता है उसे अवधिज्ञान कहते हैं और उसे रोकने वाले कर्म को अवधिज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

4. मनः पर्यव ज्ञानावरणीय कर्म :– इन्द्रिय और मन की सहायता बिना ढ़ाई द्वीप में रहे संज्ञी पंचेन्द्रिय प्राणियों के मनोगत भावों को आत्मा के द्वारा साक्षात् जाना जाता है उसे मनःपर्यव ज्ञान कहते है और उसे रोकने वाले कर्म को मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म कहते है ।

5. केवलज्ञानावरणीय कर्म :– इन्द्रिय और मन की सहायता बिना जगत् में रहे हुए समस्त रूपी-अरूपी पदार्थों को प्रत्यक्ष की भाँति जाना-देखा जाए उसे केवलज्ञान कहते हैं और उसके आवारक कर्म को केवलज्ञानावरणीय कर्म कहते हैं ।

प्रत्यक्षज्ञान और परोक्ष ज्ञान

1. मन व इन्द्रियों के माध्यम से होने वाले मति और श्रुत ज्ञान, परोक्ष ज्ञान कहलाते हैं ।

2. मन व इन्द्रियों की सहायता के बिना होने वाले आत्मप्रत्यक्ष अवधि, मनःपर्यव व केवलज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं ।

ज्ञानावरणीय कर्मबंध के हेतु–

1. ज्ञानी की आशातना करने से ।
2. ज्ञान में विघ्न ड़ालने से ।
3. ज्ञानी का अविनय-अनादर करने से ।
4. ज्ञानी व ज्ञान के साधनों पर थूकने से, मल-मूत्र आदि करने से ।
5. ज्ञानी की निंदा करने से ।
6. ज्ञान का विनाश करने से ।
7. ज्ञान का दुरूपयोग करने से ।

ज्ञानावरणीय कर्मबंध से बचने के उपाय–

1. छपे हुए कागज-पुस्तक को जलाना नहीं चाहिए ।
2. छपी पुस्तकों को पटकना, फेंकना और मोड़ना नहीं चाहिए ।

3. छपी पुस्तक-लिखे कागज पर मल-मूत्र नहीं करना चाहिए और उन कागज आदि से मल-मूत्र साफ नहीं करने चाहिए ।

4. छपे हुए कागज पर भोजन नहीं करना चाहिए ।

5. झूठे मुंह बोलना नहीं चाहिए ।

6. अध्ययन कर रहे किसी को अंतराय नहीं करना चाहिए ।

7. M.C. पिरियड़ में बहिनों को पुस्तक आदि नहीं पढ़नी चाहिए ।

8. जिनवचन का गलत अर्थ नहीं करना चाहिए ।

9. ज्ञानद्रव्य का भक्षण नहीं करना चाहिए । उसका पूरी सावधानी से रक्षण करना चाहिए ।

10. पेन-पेंसिल से कान साफ नहीं करने चाहिए ।

11. पुस्तक-अखबार आदि से हवा नहीं ड़ालनी चाहिए ।

12. पुस्तक पर बैठना नहीं चाहिए ।

6-10. अंतराय कर्म के 5 भेद–

6. दानांतराय :– जिस कर्म के उदय से दान में अंतराय (विघ्न) पैदा हो, उसे दानांतराय कर्म कहते हैं । मात्र धन-संपत्ति मिल जाने से व्यक्ति दान नहीं कर पाता है । दान के लिए तो दानांतराय कर्म का क्षयोपशम चाहिए ।

मम्मण सेठ के पास अपार संपत्ति थी, फिर भी दानांतराय कर्म के उदय के कारण वह किसी भी साधु-संत या याचक को थोड़ा भी दान नहीं कर पाता था ।

7. लाभांतराय :– प्रबल पुरूषार्थ करने पर भी लाभांतराय कर्म के उदय के कारण व्यापार आदि में कुछ भी लाभ प्राप्त नहीं होता है । लाभांतराय कर्म का क्षयोपशम हो तो अल्प प्रयास से भी अमाप धन-संपत्ति मिल सकती है ।

ऋषभदेव प्रभु को लाभांतराय कर्म का उदय था, अतः उन्हें परिचित क्षेत्र में भी 400 दिनों तक निर्दोष भिक्षा की प्राप्ति नहीं हो पाई थी ।

8. भोगांतराय :– जिस वस्तु का एक ही बार उपभोग किया जा सके, उसे भोग कहते हैं । जैसे-भोजन सामग्री । एक बार खाने पर वह सामग्री पूरी हो जाती है ।

खाने-पीने व भोग की सामग्री उपलब्ध होने पर भी इस कर्म के उदय के कारण व्यक्ति उस सामग्री का भोग नहीं कर पाता है ।

9. उपभोगांतराय :– जिस वस्तु का पुनःपुनः उपभोग किया जा सके, उसे उपभोग कहते हैं । जैसे-वस्त्र, अलंकार, स्त्री आदि । उपभोग की सामग्री उपलब्ध होने पर भी उपभोगांतराय कर्म के उदय के कारण व्यक्ति उपभोग नहीं कर पाता है ।

10. वीर्यांतराय :– शारीरिक शक्ति, बल, उत्साह आदि को वीर्य कहते हैं । वीर्यांतराय कर्म के उदय के कारण व्यक्ति शारीरिक दृष्टि से कमजोर होता है । इस कर्म का क्षयोपशम हो तो व्यक्ति बलवान् बनता है ।

अंतरायकर्म-बंध के हेतु–

- जिनपूजा में अंतराय करने से इस कर्म का बंध होता है ।
- जिन-आगमों का लोप करने से, विपरीत प्ररूपणा करने से, शक्ति होने पर भी दीन-दुःखी की उपेक्षा करने से, गरीब व्यक्ति पर गुस्सा करने से, किसी को आहार आदि के भोग में अंतराय करने से, किसी को दान देते हुए रोकने से, पोपट आदि को पिंजरे में बंद करने से, पशु, बालक व दीन आदि को भूखा रखने से अंतराय कर्म का बंध होता है ।

11 से 19 तक दर्शनावरणीय कर्म के 9 भेद :—

जगत् में रहे समस्त पदार्थों में सामान्य धर्म और विशेष धर्म रहे हुए हैं । वस्तु में रहे सामान्य धर्म के बोध को, दर्शन कहा जाता है और वस्तु में रहे विशेष बोध को ज्ञान कहा जाता है ।

वस्तु में रहे सामान्य गुण के बोध को रोकनेवाला कर्म दर्शनावरणीय कहलाता है और वस्तु में रहे विशेष गुण के बोध को रोकनेवाला कर्म ज्ञानावरणीय कहलाता है ।

दर्शनावरणीय कर्म के कुल 9 भेद हैं :–

1. चक्षु दर्शनावरणीय कर्म :– आँख के द्वारा पदार्थ में रहे सामान्य धर्म के बोध को चक्षु दर्शन कहते हैं और उसके आवारक कर्म को चक्षु दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं ।

इस कर्म के उदय से एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय और तेइन्द्रिय जीवों को जन्म से ही नेत्र का अभाव होता है तथा चउरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवों के नेत्र भी इस कर्म के उदय से नष्ट हो जाते हैं । इस कर्म के उदय से अंधत्व, रतौंधी तथा नेत्ररोग आदि पैदा होते हैं ।

2. अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म :– आँख सिवाय अन्य इन्द्रिय और मन के द्वारा होने वाले वस्तु के सामान्य बोध को अचक्षु दर्शन कहते हैं और उस

सामान्य बोध को रोकने वाले कर्म को अचक्षु दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं । इस कर्म के उदय से चक्षु सिवाय अन्य इन्द्रियाँ कमजोर प्राप्त होती हैं अथवा प्राप्त हुई हो तो भी क्षीण हो जाती है । गूंगापन, बहरापन आदि इस कर्म के उदय का फल हैं ।

3. अवधि दर्शनावरणीय कर्म :– इन्द्रिय और मन की सहायता बिना आत्मा को रूपी द्रव्य के विषय में होनेवाले सामान्य बोध को अवधि दर्शन कहते हैं और उस बोध को रोकने वाले कर्म को अवधि दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं ।

4. केवल दर्शनावरणीय कर्म :– जगत् में रहे हुए समस्त पदार्थों के त्रैकालिक सामान्य बोध को केवल दर्शन कहते हैं और उस बोध को रोकनेवाले कर्म को केवल दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं ।

5. निद्रा :– जिस कर्म के उदय से जीव को ऐसी नींद आए कि थोड़ी सी मेहनत करने पर अथवा आवाज करने पर नींद खुल जाए, उसे निद्रा नामक दर्शनावरणीय कर्म कहते हैं ।

6. निद्रा-निद्रा :– जिस कर्म के उदय से नींद आने पर जगाना कठिन हो अर्थात् जोर से चिल्लाने व हाथ पकड़कर हिलाने के बाद जगता हो उसे निद्रा-निद्रा कहते हैं ।

7. प्रचला :– जिस कर्म के उदय से बैठे बैठे या खड़े-खड़े नींद आती हो तो उसे प्रचला कहा जाता है ।

8. प्रचला-प्रचला :– जिस कर्म के उदय से चलते चलते नींद आती हो उसे प्रचला-प्रचला कहा जाता है ।

9. स्त्यानर्द्धि :– जिस कर्म के उदय से जाग्रत अवस्था में सोचा हुआ कार्य निद्रावस्था में ही कर दे उसे स्त्यानर्द्धि निद्रा कहते हैं ।

इस निद्रा के आधीन व्यक्ति निद्रा में ही ऐसे कठिन कार्य भी कर लेता है, जो जाग्रत अवस्था में करना असंभव हो । इस निद्रा के उदय से निद्रावस्था में ही व्यक्ति को एक विशेष बल आ जाता है और उस बल से वह असंभव कार्य भी कर ड़ालता है । यदि वज्रऋषभनाराच संघयण के साथ इस निद्रा का उदय हो तो व्यक्ति को वासुदेव से आधा बल इस निद्रावस्था में हो जाता है ।

इस निद्रा के उदय वाला जीव अवश्य नरकगामी होता है ।

इस निद्रा वाला व्यक्ति रात में नींद ही नींद में हाथी को मार ड़ालता है और आकर सो जाता है फिर भी उसे ध्यान नहीं रहता है कि मैंने हाथी को मार ड़ाला है ।

ज्ञानावरणीय और दर्शनावरणीय कर्म के बंध के हेतु एक समान ही हैं । जिस प्रवृत्ति से ज्ञानावरणीय कर्म की प्रकृति का बंध होता है, उसी प्रवृत्ति से दर्शनावरणीय कर्म का भी बंध होता है ।

दर्शनावरणीय कर्म के बंध की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त प्रमाण है और उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम प्रमाण है ।

20. नीच गोत्र कर्म गोत्र कर्म की दो प्रकृतियों में नीच गोत्र कर्म पाप प्रकृति है । इस कर्म के उदय से जीव नीच कुल, हल्की जाति आदि में पैदा होता है ।

जाति, कुल, तप, बल, विद्या, रूप, वैभव, लाभ, ऐश्वर्य आदि का अभिमान करने से आत्मा नीच गोत्र कर्म का बंध करती है ।

जिनागमों में अरूचि रखने से, बहुश्रुत की सेवा नहीं करने से, अध्ययन रूचिवाले मुनियों की निंदा करने से, दूसरों के गुणों को छिपाकर उनमें रहे दोषों को प्रगट करने से तथा झूठी साक्षी देने से नीच गोत्र कर्म का बंध होता है ।

21. अशाता वेदनीय :–

जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को शारीरिक व मानसिक दुःखों का अनुभव होता है, उसे अशाता वेदनीय कर्म कहते हैं ।

इस कर्म के उदय से जीव को आधि, व्याधि और उपाधि की प्राप्ति होती है ।

◆ गुरू की आशातना, निंदा, हीलना, तिरस्कार करने से अशाता वेदनीय का बंध होता है ।

◆ दूसरे जीवों की हिंसा करने से, क्रोध आदि कषायों का सेवन करने से, ग्रहण किए व्रतों का भंग करने से अशाता वेदनीय का बंध होता है ।

22. मिथ्यात्व मोहनीय :– जिस कर्म के उदय से जीव को तत्त्व के प्रति यथार्थ रूचि पैदा नहीं होती है, उसे मिथ्यात्व मोहनीय कहते हैं । इस कर्म का उदय होने पर आत्मा को जिनप्ररूपित तत्त्वों पर लेश भी श्रद्धा नहीं होती है और उस आत्मा की प्रवृत्ति भी उससे विपरीत ही होती है । मिथ्यात्व मोहनीय के पुद्‌गल सर्वघाती रस वाले होते हैं ।

23 से 32 तक स्थावर दशक

23. स्थावर नामकर्म :– पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय स्थावर कहलाते हैं । जिस कर्म के उदय से जीव को स्थावरपने की प्राप्ति होती है, उसे स्थावर नामकर्म कहते हैं ।

24. सूक्ष्म नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव को सूक्ष्म शरीर की प्राप्ति हो, (जो स्वयं न किसी को रोके और न ही स्वयं किसी से रूके) उसे सूक्ष्म नामकर्म कहते हैं । चौदह राजलोक में सूक्ष्म एकेन्द्रिय जीव ठूसठूस कर भरे हुए हैं, ये जीव न तो किसी को बाधा पहुँचाते हैं और न ही वे किसी से बाधा प्राप्त करते हैं । इन जीवों का शस्त्र से छेदन आदि संभव नहीं है ।

25. अपर्याप्त नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव स्वयोग्य पर्याप्तियों को पूर्ण करने में समर्थ नहीं बन सकता है, उसे अपर्याप्त नामकर्म कहते हैं ।

26. साधारण नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव को स्वतंत्र शरीर की प्राप्ति नहीं होती है बल्कि एक ही शरीर में अनंत जीवों के साथ रहना पड़ता है, उसे साधारण नामकर्म कहते है ।

27. अस्थिर नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीभ आदि अवयव अस्थिर होते हैं, उसे अस्थिर नामकर्म कहते हैं ।

28. अशुभ नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीवात्मा की नाभि के नीचे के अवयव अशुभ हों उसे अशुभ नामकर्म कहते हैं ।

29. दुर्भग नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से दूसरों पर उपकार करने पर भी जीव अप्रिय लगता हो, दूसरे जीव वैर भाव आदि रखते हों उसे दुर्भग नामकर्म कहते हैं ।

30. दुःस्वर नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव का स्वर कर्कश और श्रोताओं को अप्रिय लगे, वैसा हो, उसे दुःस्वर नामकर्म कहते है ।

31. अनादेय नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से जीव का युक्ति-युक्त वचन भी अप्रिय बनता हो, उसे अनादेय नामकर्म कहते हैं ।

32. अपयश नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से अच्छा काम करने पर भी सर्वत्र अपयश मिलता हो, उसे अपयश नामकर्म कहते हैं ।

33-35. नरक त्रिक :– नरक गति, नरकानुपूर्वी और नरक आयुष्य को नरक त्रिक कहते हैं ।

33. नरक गति :– जिस कर्म के उदय से जीव को नरक गति में जन्म लेना पड़ता है उसे नरक गति नाम कर्म कहते हैं ।

34. नरकानुपूर्वी :– मनुष्य व तिर्यंचगति में से नरक में जानेवाले जीव को विग्रह गति में नरकानुपूर्वी नामकर्म का उदय होता है ।

35. नरक आयुष्य :– मनुष्य-देव व तिर्यंच के जीव जीना चाहते हैं, जबकि नरक का जीव सतत मृत्यु की इच्छा करता रहता है, परंतु नरक गति के आयुष्य में लेश भी न्यूनता नहीं होती है, पूर्वभव में जितना आयुष्य बांधा हो, उतना आयुष्य भुगतना ही पड़ता है ।

रौद्रध्यान व क्रूर परिणामों से नरक गति, नरक आयुष्य का बंध होता है ।

महा आरंभ, महापरिग्रह, पंचेन्द्रिय प्राणि-वध, मांसभक्षण आदि से नरक आयुष्य का बंध होता है ।

चारित्र मोहनीय के 25 भेद

36 से 60 :– सोलह कषाय और नौ नोकषाय ।

सोलह कषाय

कष अर्थात् संसार, आय अर्थात् वृद्धि ।

जिसके द्वारा आत्मा के संसार-परिभ्रमण की वृद्धि होती हो उसे कषाय कहते हैं ।

36. अनंतानुबंधी क्रोध :– जो क्रोध आत्मा के सम्यक्त्व गुण का घात कर आत्मा को अनंत काल तक संसार में भटकाता हो, उसे अनंतानुबंधी क्रोध कहते हैं । अनंतानुबंधी क्रोध जीवन पर्यंत रहता है और जन्म-जन्मातंर में भी विद्यमान रहता है । अनंतानुबंधी कर्म के अस्तित्व काल में आत्मा नरक गति के योग्य कर्मों का बंध करती है ।

पर्वत के फटने से आई दरार जिस प्रकार कभी जुड़ती नहीं है, उसी प्रकार यह क्रोध किसी प्रकार से शांत नहीं होता है ।

37. अप्रत्याख्यानीय क्रोध :– जो क्रोध आत्मा के देश-विरति चारित्र गुण का घात करता है, उसे अप्रत्याख्यानीय क्रोध कहते हैं । इस क्रोध के उदय में आत्मा को श्रावक धर्म की प्राप्ति नहीं होती है । इस कषाय की कालमर्यादा एक वर्ष है । इसके उदय में आत्मा तिर्यंच गति प्रायोग्य कर्मों का बंध करती है ।

इस क्रोध को सूखे तालाब में पड़ी दरार की उपमा दी गई है । सूखी मिट्टी में आई दरार जैसे पानी के संयोग से दूर हो जाती है, उसी प्रकार कुछ प्रयत्न द्वारा यह क्रोध शांत हो जाता है ।

38. प्रत्याख्यानीय क्रोध :– जिस क्रोध कषाय के उदय से आत्मा सर्व-विरति चारित्र को प्राप्त नहीं कर सकती है, इस कषाय की काल मर्यादा चार मास की है । इस कषाय के उदय में जीव मनुष्यगति योग्य कर्मों का बंध करता है ।

धूल में खींची गई रेखा हवा के द्वारा कुछ समय में नष्ट हो जाती है, उसी प्रकार जो क्रोध कुछ प्रयत्न द्वारा शांत हो जाता है, उसे प्रत्याख्यानीय क्रोध कहते हैं ।

39. संज्वलन क्रोध :– जिस क्रोध के उदय में आत्मा यथाख्यात चारित्र प्राप्त नहीं कर सकती है । इस कषाय के अस्तित्व में सर्वविरति चारित्र तो आत्मा प्राप्त कर सकती है किंतु यह कषाय यथाख्यात चारित्र में अवश्य बाधा पहुँचाता है । इस कषाय की स्थिति में देव गति योग्य कर्मों का बंध होता है ।

यह क्रोध जल में खींची गई रेखा के समान अल्प समय में ही शांत हो जाता है ।

40-41-42. अनंतानुबंधी मान-माया-लोभ :– अनंतानुबंधी मान आदि भी आत्मा के अनंत संसार का अनुबंध कराने वाले हैं । इनकी काल मर्यादा भी जीवन पर्यंत और जन्मांतर में भी चलने वाली हैं ।

जिस प्रकार कठोर परिश्रम से भी पत्थर के खंभे को झुकाना संभव नहीं है, उसी प्रकार इस मान को भी दूर करना अत्यंत कठिन है ।

अनंतानुबंधी माया बाँस की जड़ में रही हुई वक्रता के समान है, जिसे सीधा करना संभव नहीं है ।

अनंतानुबंधी लोभ-किरमिची रंग की भाँति है, जो अत्यंत श्रम करने पर भी नहीं हटता है ।

43-44-45. अप्रत्याख्यानीय मान, माया और लोभ :– अप्रत्याख्या-नीय क्रोध की तरह अप्रत्याख्यानीय मान, माया और लोभ भी एक वर्ष की काल मर्यादा वाले हैं और देशविरति चारित्र में बाधक है ।

अप्रत्याख्यानीय मान को हड्डी की उपमा दी गई है । जिस प्रकार हड्डी को अत्यंत कठिन उपायों के बाद ही थोड़ा झुकाया जा सकता है, उसी प्रकार इस कषाय को भी दूर हटाना अत्यंत कठिन है ।

अप्रत्याख्यानीय माया भेड़ के सींगों में रही वक्रता के समान है, जिसे अति परिश्रम के द्वारा ही दूर किया जा सकता है ।

अप्रत्याख्यानीय लोभ गाड़ी के पहिये में ड़ाले जाने वाले काले तैल के समान है, जिसे अत्यंत प्रयत्न के बाद ही हटाया जा सकता है ।

46-47-48. प्रत्याख्यानीय मान-माया-लोभ :– प्रत्याख्यानीय मान आदि प्रत्याख्यानीय क्रोध की तरह सर्व विरति में बाधक होते हैं । इनकी काल मर्यादा भी चार मास की है ।

प्रत्याख्यानीय मान सूखे काष्ठ की तरह है, जिसे तैल आदि में डुबोकर अत्यंत प्रयत्न द्वारा नमाया जा सकता है, उसी प्रकार यह मान प्रयत्न द्वारा दूर किया जा सकता है ।

प्रत्याख्यानीय माया चलते हुए मूत्र करने वाले बैल की मूत्र-रेखा के समान है । इसी प्रकार यह माया कठिनाई से दूर होती है ।

प्रत्याख्यानीय लोभ काजल के रंग के समान है, जिसे प्रयत्न करने पर दूर किया जा सकता है ।

49-50-51. संज्वलन मान-माया-लोभ :– संज्वलन मान आदि भी संज्वलन क्रोध की तरह यथाख्यात चारित्र में बाधक है । इनकी काल मर्यादा 15 दिन की है ।

संज्वलन मान बेंत के समान है, जिसे अल्प प्रयास से नमाया जा सकता है । संज्वलन माया बाँस के छिलकों में रही वक्रता के समान है, जिन्हें आसानी से सीधा किया जा सकता है ।

संज्वलन लोभ-हल्दी के रंग के समान है, जो आसानी से दूर हो जाता है ।

नौ नो-कषाय

कषाय के सहचारी और कषाय के उद्दीपक को नो-कषाय कहते हैं । यद्यपि कषायों की अपेक्षा इनका बल कम होता है, परंतु कषायों के अनुसार संसार की वृद्धि में मदद करते हैं । नोकषाय का बल कषायों के बल पर अवलंबित है । कषायों का बल घटता है तो नोकषाय का बल भी घट जाता है और कषायों का बल बढ़े तो नोकषाय का बल भी बढ़ जाता है । संज्वलन कषाय के क्षय व उपशम के साथ इन नोकषायों का भी क्षय व उपशम हो जाता है ।

नोकषाय के 9 भेद हैं-

52. हास्य :– जिस कर्म के उदय से भांड़ आदि की चेष्टा देखकर अथवा निष्कारण ही हँसी आ जाती है उसे हास्य मोहनीय कर्म कहते हैं । दर्शन, भाषण, श्रवण व स्मरण से हँसी आ सकती है । दर्शन, भाषण, श्रवण हास्य के बाह्य कारण हैं और स्मरण अभ्यंतर कारण है ।

53. रति :– जिस कर्म के उदय से इष्ट वस्तु की प्राप्ति में राग पैदा होता है, उसे रति मोहनीय कर्म कहते हैं ।

54. अरति :– जिस कर्म के उदय से प्रतिकूल पदार्थों में द्वेष पैदा होता हो, उसे अरति मोहनीय कहते हैं ।

55. भय :– जिस कर्म के उदय से सकारण या निष्कारण भय उत्पन्न होता है, उसे भय मोहनीय कहते हैं ।

56. शोक :– जिस कर्म के उदय से इष्ट वस्तु आदि के वियोग में शोक पैदा होता हो, उसे शोक मोहनीय कर्म कहते हैं ।

57. दुगुंछा :– जिस कर्म के उदय से सकारण या निष्कारण बीभत्स पदार्थों के प्रति घृणा पैदा होती हो, उसे दुगुंछा मोहनीय कर्म कहते हैं ।

58. स्त्री वेद :– जिस कर्म के उदय से स्त्री को पुरूष के साथ भोग की इच्छा पैदा होती हो, उसे स्त्री वेद कहते हैं । स्त्री वेद का उदय करीषाग्नि के समान होता है । करीषाग्नि अर्थात् सूखा गोबर-छान, आदि ।

59. पुरूष वेद :– जिस कर्म के उदय से पुरूष को स्त्री के साथ रमण करने की इच्छा होती हो उसे पुरूष वेद कहते हैं । इस वेद को तृणाग्नि की उपमा दी गई है । तृण की अग्नि जल्दी सुलगती है और जल्दी शांत हो जाती है, उसी प्रकार पुरूष की मैथुन की अभिलाषा शीघ्र उत्तेजित होकर शांत हो जाती है ।

60. नपुंसक वेद :– जिस वेदोदय से स्त्री व पुरूष दोनों के साथ रमण करने की इच्छा हो उसे नपुंसक वेद कहते हैं । इस वेद को नगर दाह की उपमा दी गई है । नगर में लगी आग कई दिनों तक नगर को जलाती है, उसी प्रकार जो वेदोदय लंबे समय तक भी निवृत्त नहीं होता है, उसे नपुंसक वेद कहते है ।

61-62. तिर्यंच द्विक :– तिर्यंचगति और तिर्यंचानुपूर्वी को तिर्यंच द्विक कहते हैं ।

तिर्यंच का आयुष्य पाप प्रकृतिरूप नहीं है, क्योंकि तिर्यंच को भी जीना पसंद है, मरना पसंद नहीं है । तिर्यंचगति नामकर्म के कारण आत्मा को तिर्यंच के रूप में पैदा होना पड़ता है । तिर्यंचानुपूर्वी जीवात्मा को तिर्यंच योनि में उत्पन्न होने के स्थान में ले जाता है ।

तिर्यंचगति आत्मा के पतन की निम्न अवस्था रूप है, उस रूप में जन्म लेना यह पाप के उदय का ही फल है ।

जातिनाम कर्म

एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय तक के जीवों में विविध प्रकार के समान परिणाम रूप सामान्य को जाति कहते हैं तथा उस जाति को प्राप्त कराने वाले कर्म को जातिनाम कर्म कहते हैं । इसके मुख्य 5 भेद हैं, उसमें चार पाप रूप हैं ।

63. एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को एक ही इन्द्रिय की प्राप्ति होती है-जैसे-पृथ्वीकाय, अप्काय के जीव ।

64. द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को दो इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । जैसे-कृमि आदि ।

65. त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को तीन इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । उदाहरण-मकोड़ा आदि ।

66. चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म :– जिस कर्म के उदय से जीवात्मा को चार इन्द्रियों की प्राप्ति होती है । उदाहरण-बिच्छू आदि ।

67. अशुभविहायोगति :– इस पाप कर्म के उदय के कारण जीवात्मा की चाल अशुभ अर्थात् खराब होती है । बैल, हाथी की चाल शुभ मानी जाती है, जबकि ऊँट आदि की चाल बेढ़ंगी-बेड़ोल होती है । यह अशुभ विहायोगति नाम के पाप के उदय का ही फल है ।

68. उपघात नाम कर्म :– इस पापकर्म के उदय के कारण जीव को कुछ ऐसे अंग-उपांग आदि पैदा होते हैं, जिसके कारण जीव स्वयं कष्ट पाता है ।

जैसे-पड़जीभ प्रतिजिह्वा, चौरदांत-ओठ से बाहर निकले दांत, लंबिका अर्थात् छठी अंगुली, आदि ।

69 से 72. अशुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श :– पाप कर्म के उदय के कारण जीवात्मा को अशुभ वर्ण, गंध, रस और स्पर्श आदि की प्राप्ति होती है ।

देखनेवाले को बिल्कुल पसंद न पड़े ऐसा रूप मिलता है । शरीर में से प्रतिक्षण अशुचि या दुर्गंध बहती हो, ऐसा शरीर मिलता है । जिसका स्वाद अरूचिकर हो । जिसका स्पर्श भी, स्पर्श करनेवाले को खेद पैदा करता हो । नाम कर्म की अन्य सब प्रकृतियाँ या तो पुण्य रूप होगी या पाप रूप होगी, परंतु वर्ण, गंध, रस और स्पर्श पुण्य और पाप उभय स्वरूप हैं ।

जो वर्ण, गंध, रस और स्पर्श शुभ हो, उसे पुण्यरूप माना गया है और जो वर्ण, गंध, रस और स्पर्श अशुभ हो, उसे पाप-प्रकृतिरूप माना गया है ।

जिस पापकर्म के उदय से जीव के शरीर में दुर्गन्ध आती हो, उसे अशुभ गंध नाम कर्म कहते हैं । जीव को नील और कृष्ण वर्ण प्राप्त हो, उसे अशुभवर्ण नाम कर्म कहते हैं ।

जिस पाप कर्म के कारण जीव के शरीर में तीखा और कड़वा रस उत्पन्न होता हो, उसे अशुभ रस नाम कर्म कहते हैं । जिस पाप कर्म के कारण जीव के शरीर में गुरू, कर्कश, शीत और रूक्ष स्पर्श उत्पन्न होता हो, उसे अशुभ स्पर्श नाम कर्म कहते हैं ।

पाँच संघयण

संघयण अर्थात् शरीर में रही हड्डियों की रचना ! संघयण के कुल छह भेद हैं, इनमें से पहला संघयण पुण्य-प्रकृति रूप है । अर्थात् पुण्य के उदय से उस संघयण की प्राप्ति होती है, जबकि शेष पांच संघयण पाप रूप हैं । उनकी प्राप्ति पापोदय से होती है । संघयण नाम कर्म का उदय औदारिक शरीर में ही होता है ।

73. ऋषभनाराच संघयण :– जिस रचना विशेष में दोनों ओर हड्डियों की मर्कट बंध हो, तीसरी हड्डी का पट्ट भी हो, लेकिन तीनों को भेदने वाली हड्डी की कीली न हो । जिस कर्म के उदय से हड्डियों की इस प्रकार की रचना हो उसे ऋषभ नाराच संघयण नामकर्म कहते हैं ।

74. नाराच संघयण नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में दोनों ओर मर्कटबंध हो लेकिन पट्ट और कील न हो उसे नाराच संघयण नामकर्म कहते है ।

75. अर्धनाराच संघयण नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में एक ओर मर्कटबंध और दूसरी ओर कील हो उसे अर्धनाराच संघयण नामकर्म कहते है ।

76. कीलिका संघयण नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में मर्कट बंध और पट्ट न हों किंतु कील से हड्डियाँ जुड़ी हों उसे कीलिका संघयण नामकर्म कहते है ।

77. सेवार्त संघयण नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से हड्डियों की रचना में मर्कटबंध वेष्टन और कील न होकर यों ही हड्डियाँ आपस में जुड़ी हो उसे **सेवार्त संघयण नामकर्म** कहते हैं ।

पाँच संस्थान

संस्थान अर्थात् शरीर की बाह्य रचना । संस्थान के कुल छह भेद हैं । इनमें पहला संस्थान पुण्यप्रकृति रूप है, जबकि शेष पाँच संस्थान पाप प्रकृतिरूप हैं ।

78. न्यग्रोध परिमंड़ल संस्थान नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से शरीर की आकृति न्यग्रोध वृक्ष के समान हो अर्थात् शरीर में नाभि से ऊपर के अवयव पूर्ण व व्यवस्थित हो तथा नाभि से नीचे के अवयव हीन हो, उसे न्यग्रोध परिमंड़ल नामकर्म संस्थान कहते है ।

79. सादि संस्थान नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से नाभि से ऊपर के अवयव हीन हो और नाभि से नीचे के अवयव पूर्ण व्यवस्थित हो, उसे सादि संस्थान नामकर्म कहते हैं ।

80. कुब्ज संस्थान नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से कुब्ज संस्थान प्राप्त हो, उसे कुब्ज संस्थान नामकर्म कहते हैं ।

81. वामन संस्थान नामकर्म :– जिस कर्म के उदय से वामन (बौना) शरीर प्राप्त हो उसे वामन संस्थान नामकर्म कहते है ।

82. हुण्ड़क संस्थान :– जिस कर्म के उदय से शरीर के सभी अवयव बेड़ौल हो-उसे हुंड़क संस्थान नामकर्म कहते है ।

पुण्य-पाप को जानने का उद्देश्य

जैन शासन में एक भूमिका तक पुण्य को उपादेय और ऊपर की भूमिका में पुण्य को हेय कहा गया है ।

उस पुण्य के भी दो भेद हैं-पुण्यानुबंधी और पापानुबंधी ।

पापानुबंधी पुण्य तो सर्वथा हेय है, क्योंकि उसके परिणाम स्वरूप आत्मा संसार में ही भटकती है ।

पुण्य-पाप के यथार्थ स्वरूप को अच्छी तरह से जानने से पाप में हेय बुद्धि और पुण्य में उपादेय बुद्धि पैदा होती है ।

पाप के कटु विपाकों को जानने से पाप के प्रति तिरस्कार भाव पैदा होता है और पुण्य के शुभ फलों को जानने पर पुण्य का बंध करानेवाली प्रवृत्तियों को करने का मन होता है ।

पुण्य के 42 भेद

1	वेदनीय कर्म	1 भेद
2	आयुष्य कर्म	3 भेद
3	गोत्र कर्म	1 भेद
4	नाम कर्म	37 भेद
	कुल	42 भेद

पाप के 82 भेद

चार घाती कर्म

1	ज्ञानावरणीय	5 भेद
2	दर्शनावरणीय	9 भेद
3	मोहनीय	26 भेद
4	अंतराय	5 भेद
		45 भेद

अघाती कर्म

1	वेदनीय कर्म	1 भेद
2	आयुष्य कर्म	1 भेद
3	गोत्र कर्म	1 भेद
4	नाम कर्म	34 भेद
	(स्थावर+प्रत्येक+ पिंडप्रकृति) 10+1+23	
		37 भेद

45 भेद + 37 भेद = 82 भेद

5

आस्रव तत्त्व

इंदिअ कसाय अव्वय-जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा ।
किरियाओ पणवीसं, इमा उ ताओ अणुक्कमसो ।।21।।

शब्दार्थ : इंदिअ=इन्द्रियाँ **कसाय=**कषाय **अव्वय=**अव्रत **जोगा=**योग **चउ=**चार **पाँच=**पांच **तिन्नि=**तीन **कमा=**क्रमशः **किरियाओ=**क्रियाएँ **पण-वीसं=**पच्चीस **इमा=**ये **य=**और **ताओ=**वे **अणुक्कमसो=**अनुक्रम से ।

भावार्थ : पाँच इन्द्रियाँ, चार कषाय, पाँच अव्रत, तीन योग और पच्चीस क्रियाएँ ये आस्रव तत्त्व के 42 भेद हैं ।

विवेचन :–

आस्रवद्वारों से आत्मा में कर्म का आगमन :– इस विस्तृत चौदह राजलोक संसार में सर्वत्र कार्मण वर्गणाएँ उपलब्ध हैं । ये कार्मण वर्गणाएँ पुद्‌गल स्वरूप हैं । जब आत्मा, राग और द्वेष के अधीन होकर कर्म-पुद्‌गलों को आमंत्रण देती है, तब ये कर्म-वर्गणाएँ आत्मा के पास पहुँच जाती हैं और क्षीर-नीर की भाँति आत्मा के साथ घुल-मिल जाती हैं और आत्मा कर्म के अधीन बन जाती है ।

आत्मा में कर्म के आगमन के द्वारों को आस्रव कहते है ।

इसे अनेक रूपकों के द्वारा समझ सकते हैं ।

1) एक विशाल तालाब है । उसकी चारों दिशाओं में जल के आगमन के मार्ग बने हुए हैं और सभी द्वार खुले हैं । अचानक जोरों से वर्षा होती है और पानी अपने स्वभाव के अनुसार निम्न भाग की ओर बहता है, अतः थोड़े ही समय में चारों ओर से उस तालाब में पानी आने लगता है और कुछ ही घंटों में वह तालाब भर जाता है । बस, इसी प्रकार जीवात्मा भी एक तालाब है । इसमें कर्म-परमाणुओं के आगमन के लिए आस्रव के द्वार बने हुए हैं, अतः जब जीवात्मा राग-द्वेष के अधीन बनती है, तब चारों ओर से आत्मा में कर्म-परमाणुओं का आगमन प्रारंभ हो जाता है और आत्मा कर्म से युक्त हो जाती है ।

2) यह संसार सागर तुल्य है, इसमें जीवात्मा रूपी नाव है । जब नाव में छिद्र पड़ जाते हैं तब चारों ओर से पानी आने लगता है, इसी प्रकार जब जीवात्मा राग-द्वेष के परिणाम द्वारा आस्रव के द्वार खोल देता है तब उसमें चारों ओर से कर्म-परमाणुओं का आगमन प्रारंभ हो जाता है ।

राग-द्वेष के परिणाम द्वारा जब जीवात्मा अपने शत्रुभूत कर्मों को स्वगृह में प्रवेश करा देता है, तब उसके फलस्वरूप उसे नाना प्रकार की यातनाएं सहन करनी पड़ती हैं ।

आत्मा के संसार-परिभ्रमण का मूल कर्म है और कर्म का मूल आस्रव-द्वार हैं ।

आस्रव के कुल 42 भेद हैं । इनमें से किसी एक भी प्रवृत्ति का आश्रय करते ही जीवात्मा में कर्मों का आगमन प्रारंभ हो जाता है । फिर ज्योंही ये कर्म उदय में आते हैं तब आत्मा आकुल-व्याकुल बन जाती है और इस कर्म के उदय के फलस्वरूप ही आत्मा को जन्म की पीड़ाएँ, मृत्यु की पीड़ाएँ, रोग-शोक-भय आदि के दुःख भोगने पड़ते हैं ।

आस्रवों के निरोध में कठिनाई-

अपनी आत्मा प्रति-समय आठों कर्मों की कुछ अंश में निर्जरा करती है । अज्ञान आदि के द्वारा उदयावलिका में आए हुए ज्ञानावरणीय कर्मों का क्षय करती है । अंधत्व आदि के द्वारा दर्शनावरणीय कर्म का आंशिक क्षय करती है । सुख-दुःख द्वारा शाता-अशाता वेदनीय कर्म का क्षय करती है । इस प्रकार आत्मा प्रति-समय कर्मों का क्षय करती है । इसके साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने योग्य है कि आत्मा अपनी शुभाशुभ प्रवृत्ति के द्वारा प्रति समय सात या आठ कर्मों का बंध भी करती रहती है ।

प्रति-समय कर्म का क्षय अति अल्प होता है, जबकि कर्म के आगमन और उसके बंध का परिमाण अत्यधिक है ।

एक मकान में से आप कचरा साफ करना चाहते हैं और बाहर अत्यंत तेजी से हवा चल रही है । आपने दरवाजे-खिड़कियाँ आदि खुली ही रखी हैं, तो क्या आप मकान को साफ कर सकोगे ? नहीं । कदापि नहीं । आप थोड़ा सा कचरा साफ करोगे, तब तक तो ढ़ेर सारा कचरा अन्दर आ जाएगा ।

शत्रुओं का आगमन अधिक संख्या में हो और उनमें से बहुत थोड़े ही परास्त हो रहे हों, तो स्थिति भयजनक हो जाती है ।

आस्रवद्वारों के खुले होने से सतत कर्मों का आगमन चालू रहता है और उनका प्रबल प्रतिकार नहीं हो पाता है । अतः समस्या है कि आस्रवों के निरोध बिना इस भीषण संसार से आत्मा की मुक्ति कैसे होगी ?

आस्रव के 42 भेद

5 इन्द्रियों की असत् प्रवृत्ति
5 अव्रत
4 कषाय
3 योग
25 असत् क्रियाएं ।

पाँच इन्द्रियों की असत् प्रवृत्ति-

पाँचों इन्द्रियों को प्राप्त कर मोहाधीन आत्मा पाँचों इन्द्रियों के अनुकूल विषय को पाने के लिए दौड़-धूप करती है, अनुकूल विषय मिलने पर राग करती है और प्रतिकुल विषय मिलने पर द्वेष करती है । वह कानों से रेड़ियो के गीत आदि का श्रवण करती है । आँखों से रूपवती स्त्रियों के रूप को देखती है । इस प्रकार पाँचों इन्द्रियों को वह भौतिक शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श में जोड़ती है और इसके फलस्वरूप उस आत्मा में आस्रव का द्वार खुला ही रहता है और अनन्त कार्मण-वर्गणाएँ आकर उस आत्मा पर चिपक जाती है ।

पाँचों इन्द्रियों के कुल 23 विषय हैं । उन विषयों की प्राप्ति-अप्राप्ति में राग-द्वेष करने से आत्मा में कर्म का आस्रव होता है ।

पांच अव्रत

1. हिंसा के त्याग की प्रतिज्ञा न होना तथा मन, वचन और काया से हिंसा में प्रवृत्त होना **'प्राणातिपात'** नामक अव्रत है ।

2. झूठ के त्याग की प्रतिज्ञा न होना तथा मन, वचन और काया से झूठ में प्रवृत्त होना **'मृषावाद'** नामक अव्रत है ।

3. चोरी के त्याग की प्रतिज्ञा न होना तथा मन, वचन और काया से चोरी में प्रवृत्त होना **'अदत्तादान'** नामक अव्रत है ।

4. मैथुन के त्याग की प्रतिज्ञा न होना तथा मन, वचन और काया से मैथुन की प्रवृत्ति में संलग्न होना **'अब्रह्म'** नामक अव्रत है ।

5. परिग्रह के त्याग की प्रतिज्ञा न होना तथा मन, वचन और काया से परिग्रह में प्रवृत्त होना **'परिग्रह'** नामक अव्रत है ।

इन अव्रतों के सेवन से भी आत्मा में आस्रव के द्वार खुले रहते हैं और आत्मा कर्म का बंध करती है ।

चार कषाय

1. क्रोध-क्रोध अर्थात् गुस्सा करना, आवेश में आ जाना । किसी गलत बात को सहन न कर बुरा-भला कहना ।

2. मान-प्राप्त अथवा अप्राप्त वस्तु का अभिमान करना, गर्व करना, झूठी बड़ाई हाँकना, किसी को नीचा दिखाना, इत्यादि ।

3. माया-धन आदि के लोभ में आकर किसी के साथ माया-कपट-प्रपंच आदि करना, मूल बात को छिपाकर अन्य बात कहना, इत्यादि ।

4. लोभ-प्राप्त सामग्री में असन्तोष । अधिकाधिक पाने की लालसा और उसके लिए तीव्र प्रयास ।

इन चारों कषायों के आसेवन से आत्मा नवीन कर्मों का उपार्जन करती है ।

तीन योग

1. मन योग :– मन में अशुभ चिन्तन करना । किसी के विनाश आदि का विचार करना । मन में अशुभ विचार करने से अशुभ-कर्मों का आस्रव होता है और मन को मैत्री आदि भावों से भावित करने पर शुभ कर्मों का आस्रव होता है ।

2. वचन योग :– वाणी से किसी को बुरा-भला कहना, किसी को अपशब्द कहना । वचन की शुभाशुभ प्रवृत्ति से शुभाशुभ कर्मों का आस्रव होता है ।

3. काय योग :– काया से किसी को कष्ट देना । काया से किसी का अहित करने से अशुभ कर्मों का आस्रव होता है ।

पच्चीस क्रियाएँ

काइय अहिगरणीया, पाउसिया पारितावणी किरिया ।
पाणाइवायरंभिय, परिगहिया मायवत्ती अ ।।22।।
मिच्छा-दंसण-वत्ती, अपच्चक्खाणा य दिट्ठि पुट्ठि अ ।
पाडुच्चिअ सामंतो, वणीअ नेसत्थि साहत्थी ।।23।।
आणवणि विआरणिया, अणभोगा अणवकंखपच्चइया ।
अन्ना पओग समुदाण, पिज्ज दोसेरियावहिया ।।24।।

शब्दार्थ :– काइय=कायिकी क्रिया **अहिगरणीया=**अधिकरण की क्रिया **पाउसिया=**प्राद्वेषिकी क्रिया **पारितावणी=**पारितापनिकी **किरिया=**क्रिया **पाणाइ-**

वाय=प्राणातिपातिकी **आरंभिय=**आरंभिकी **परिगहिया=**पारिग्रहिकी **मायवत्ती=**माया-प्रत्ययिकी **अ=**और ।

मिच्छादंसणवत्ती=मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी **अपच्चक्खाणा=**अप्रत्याख्या-निकी **दिट्ठी=**दृष्टिकी क्रिया **पुट्ठि=**स्पृष्टिकी क्रिया **पाडुच्चिअ=**प्रातित्यकी क्रिया **सामंतोवणीअ=**सामंतोपनिपातिकी **नेसत्थि=**नैसृष्टिकी **साहत्थी=**स्वाहस्तिकी **य=**और ।

आणवणि=आज्ञापनिकी क्रिया **विआरणिया=**वैदारणिकी क्रिया **अणा-भोग=**अनाभोगिकी क्रिया **अणवकंखपच्चइया=**अनवकांक्ष प्रत्ययिकी क्रिया **अन्ना=**दूसरी **पओग=**प्रायोगिकी क्रिया **समुदाण=**सामुदानिकी क्रिया **पिज्ज=** प्रैमिकी क्रिया **दोस=**द्वैषिकी क्रिया **इरियावहिया=**ईर्यापथिकी क्रिया ।

भावार्थ :– कायिकी क्रिया, अधिकरणिकी क्रिया, प्राद्वेषिकी क्रिया, पारितापनिकी क्रिया, प्राणातिपातिकी क्रिया, आरंभिकी क्रिया, पारिग्रहिकी क्रिया और माया प्रत्ययिकी ।

मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी क्रिया, दृष्टिकी क्रिया, स्पृष्टिकी क्रिया, प्रातित्यकी क्रिया, सामन्तोपनिपातनिकी क्रिया, नैसृष्टिकी क्रिया तथा स्वाहस्तिकी क्रिया ।

आज्ञापनिकी क्रिया, वैदारणिकी क्रिया, अनाभोगिकी क्रिया, अनवकां-क्षप्रत्ययिकी क्रिया, तथा दूसरी प्रायोगिकी क्रिया, सामुदानिकी क्रिया, प्रैमिकी क्रिया, द्वैषिकी क्रिया और ईर्यापथिकी क्रिया ये पच्चीस क्रियाएँ हैं ।

विवेचन :– जिस प्रवृत्ति के द्वारा आत्मा शुभ-अशुभ कर्म का बंध करती है, उसे क्रिया कहते हैं । ये क्रियाएँ पच्चीस प्रकार की हैं ।

1) कायिकी क्रिया अयतनापूर्वक शरीर की क्रिया करने से जो क्रिया होती है, उसे कायिकी क्रिया कहते हैं । इसके दो भेद हैं–

क) अनुपरत कायिकी क्रिया :– जिन्होंने हिंसा आदि पापों का त्याग नहीं किया हो ऐसे व्यक्तियोंकी क्रिया को अनुपरत कायिकी क्रिया कहते हैं ।

ख) अनुपयुक्त कायिकी क्रिया :– विरतिधर प्रमत्त साधु की अनुपयोगपूर्वक काया की प्रवृत्ति से जो क्रिया होती है, उसे अनुपयुक्त कायिकी क्रिया कहते हैं ।

2. अधिकरणिकी क्रिया :– हिंसा के साधनभूत तलवार, बंदूक आदि को तैयार करना, करवाना अथवा उपयोग करना, इत्यादि क्रिया ।

3. प्राद्वेषिकी :– क्रोधादि से उत्पन्न द्वेष-पूर्वक की गई क्रिया अथवा जिस क्रिया में क्रोध की बहुलता हो, वह प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है ।

4. पारितापनिकी क्रिया :– ताड़ना-तर्जना आदि द्वारा किसी को हैरान-परेशान करने की क्रिया को पारितापनिकी क्रिया कहते हैं ।

5. प्राणातिपातिकी क्रिया :– किसी भी जीव के प्राणों का नाश करने वाली क्रिया को प्राणातिपातिकी क्रिया कहते हैं ।

6. आरम्भिकी क्रिया :– छह काय के जीवों के वधस्वरूप आरंभ-समारम्भ की क्रिया को आरम्भिकी क्रिया कहते हैं ।

7. पारिग्रहिकी क्रिया :– धन, धान्य आदि का परिग्रह करना, उन पर मूर्च्छा करना, इत्यादि पारिग्रहिकी क्रिया है ।

8. माया-प्रत्ययिकी क्रिया :– छल-कपट आदि द्वारा किसी को ठगने की प्रवृत्ति को माया-प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।

9. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया :– मिथ्यादर्शन द्वारा प्ररूपित प्रवृत्ति करना । सर्वज्ञकथित हेय पदार्थ को उपादेय व उपादेय को हेय मानना-इत्यादि क्रिया को मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया कहते हैं ।

10. अप्रत्याख्यानिकी क्रिया :– अविरति के तीव्र उदय से किसी प्रकार के पाप-त्याग की प्रतिज्ञा न करना, अप्रत्याख्यानिकी क्रिया है ।

11. दृष्टिकी क्रिया :– जीव-अजीव पदार्थ के किसी पर्याय-विशेष को राग दृष्टि से देखना, दृष्टिकी क्रिया है ।

12. स्पृष्टिकी क्रिया :– रागपूर्वक स्त्री, पुत्र आदि के शरीर का अथवा अजीव पदार्थों का स्पर्श करना, स्पृष्टिकी क्रिया कहलाती है ।

13. प्रातित्यकी क्रिया :– जीव-अजीव के निमित्त से जो राग-द्वेष के परिणाम पैदा होते हैं, उसे प्रातित्यकी क्रिया कहते हैं ।

14. सामंतोपनिपातिकी क्रिया :– चारों ओर से आने वाले लोगों को राग-द्वेष उत्पन्न करनेवाली वस्तु बताकर स्वयं को राग-द्वेष होना । जैसे-बाजार में बेचने के लिए सजीव-गाय आदि अथवा निर्जीव-मोटर आदि लाकर रखना, जिसे देख कोई प्रशंसादि से रागादि करे और कोई क्षति निकाल कर द्वेष करे और उन लोगों के राग-द्वेष से स्वयं को राग-द्वेष हो, उसे सामंतोप-निपातिकी क्रिया कहते हैं ।

15. नैसृष्टिकी क्रिया :– निसर्जन करना-फेंकना । कुँए में से जल निकालना, धनुष में से बाण निकालना इत्यादि नैसृष्टिकी क्रिया कहलाती है ।

16. स्वहस्तिकी क्रिया :– अपने हाथों से जीवों का घात करना, स्व-हस्तिकी क्रिया है ।

17. आज्ञापनिकी क्रिया :– जीवों को (प्रभु आज्ञा विरूद्ध) हुक्म करने को आज्ञापनिकी क्रिया कहते हैं ।

18. विदारणिकी क्रिया :– जीवों का विदारण करना, विदारणिकी क्रिया कहलाती है ।

19. अनाभोगिकी क्रिया :– चित्त के उपयोग रहित वस्तु को लेने-रखने से अनाभोगिकी क्रिया होती है ।

20. अनवकांक्षीप्रत्ययिकी क्रिया :– स्व-पर हित की आकांक्षा से रहित क्रिया करना । जैसे-पर स्त्री गमन, इत्यादि परलोकविरूद्ध आचरण करना ।

21. प्रायोगिकी क्रिया :– मन, वचन और काया के योगों से अशुभ व्यापार करना, उसे प्रायोगिकी क्रिया कहते हैं ।

22. सामुदानिकी क्रिया :– जिस क्रिया से समुदाय रूप में आठों कर्मों का बंध हो, अथवा समुदाय में जिस कर्म का बंध हो, उसे सामुदानिकी क्रिया कहते हैं ।

23. प्रेमिकी क्रिया :– जीव-अजीव पदार्थों में प्रेम करने से तथा अन्य जीवों को प्रेम पैदा हो, ऐसे वचन बोलने को प्रैमिकी क्रिया कहते हैं ।

24. द्वैषिकी क्रिया :– द्वेष को पैदा करने वाली क्रिया को द्वैषिकी क्रिया कहते हैं ।

25. ईर्यापथिकी क्रिया :– गमनागमन करने से होने वाली क्रिया ईर्यापथिकी क्रिया कहलाती है ।

इस प्रकार आस्रव के ये कुल 42 भेद हैं ।

6 संवर तत्त्व

समिई गुत्ती परिसह, जइधम्मो भावणा चरित्ताणि ।
पण ति दुवीस दस बार, पंच भेएहिं सगवन्ना ।।25।।

शब्दार्थ :– समिई=समिति **गुत्ती**=गुप्ति **परिसह=**परीषह **जइधम्मो=**यति-धर्म **भावणा=**भावनाएँ **चरित्ताणि=**चारित्र **पण=**पाँच **ति=**तीन **दुवीस=**बाईस **दस=**दश **बार=**बारह **पंच=**पाँच **भेएहिं=**भेदों से **सगवन्ना=**सत्तावन ।

भावार्थ – पांच समिति, तीन गुप्ति, बाईस परीषह, दशयति धर्म, बारह भावनाएँ और पांच चारित्र-ये संवर के सत्तावन भेद है ।

पांच समिति-तीन गुप्ति

इरिया भासे-सणा-दाणे, उच्चारे समिईसु अ ।
मणगुत्ती वयगुत्ती कायगुत्ती तहेव य ।।26।।

शब्दार्थ :– इरिया=ईर्यासमिति **भास=**भाषा समिति **एसणा=**एषणा समिति **अदाणे=**आदान समिति **उच्चारे=**उच्चार-उत्सर्ग समिति **मणगुत्ती=**मनोगुप्ति **वयगुत्ती=**वचनगुप्ति **कायगुत्ती=**कायगुप्ति **तहेव=**तथा **य=**और ।

भावार्थ :– ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान भंड़-मत्तनिक्षेपणा समिति, पारिष्ठापनिका समिति ये पांच समितियाँ हैं तथा मन-गुप्ति, वचन गुप्ति और काय गुप्ति ये तीन गुप्तियाँ है ।

विवेचन :– संवर का स्वरूप वाचकवर्य पूज्य **उमास्वातिजी म.** ने **'तत्त्वार्थ सूत्र'** में कहा है-**'आस्रव-निरोधः संवरः'** आस्रव का निरोध करना संवर कहलाता है । आस्त्रव अर्थात् आत्मा में कर्म के आगमन के द्वार । उन द्वारों को जिससे रोका जाता है, उन्हें संवर कहते हैं ।

नाव में छिद्र पड़ गये हों और उनसे नाव में जल प्रवेश करता हो तो नाव को बचाने के लिए सर्वप्रथम छिद्रों को बंद करना अनिवार्य है । इसी प्रकार जीवात्मा में भी जिन-जिन मार्गों से कर्मों का आगमन होता हो, उन मार्गों को रोकना अत्यंत अनिवार्य है ।

संवर तत्त्व के 57 भेद बताये गए हैं । उनके स्वरूप को भी समझ लेना अनिवार्य है-

(1) 5 समिति (2) 3 गुप्ति (3) 10 यतिधर्म (4) 12 भावना (5) 22 परिषह और 5 चारित्र ।

(1) पाँच समिति :– समिति अर्थात् उपयोगपूर्वक सम्यग् प्रवृत्ति । इसके 5 भेद हैं–

1. ईर्या समिति :– साढ़े तीन हाथ भूमि पर दृष्टि ड़ालते हुए यतना-पूर्वक चलना और किसी प्रकार के जीव की हिंसा न हो जाय, इसकी सावधानी रखना, इसे ईर्या समिति कहते हैं ।

2. भाषा समिति :– हित, मित, सत्य, प्रिय वचन उपयोग (साव-धानी) पूर्वक बोलने को भाषा समिति कहते हैं ।

3. ऐषणा समिति :– शास्त्र में निर्दिष्ट विधि के अनुसार गोचरी के 42 दोषों के त्यागपूर्वक आहार ग्रहण करने को ऐषणा समिति कहते हैं ।

4. आदानभंड़मत्तनिक्षेपणा समिति किसी भी वस्तु को उठाते या रखते समय उपयोग रखना, ताकि किसी जीव की हिंसा न हो जाए, उसे आदा-नभंड़मत्तनिक्षेपणा समिति कहते हैं ।

5. पारिष्ठापनिका समिति मल-मूत्र आदि के निर्जीव भूमि में उपयोग-पूर्वक विसर्जन करने को पारिष्ठापनिका समिति कहते हैं ।

(2) तीन गुप्तियाँ

1. मनोगुप्ति :– मन की अशुभ प्रवृत्ति का निरोध करना और शुभ में प्रवृत्ति करना मनोगुप्ति है । समिति में सम्यग् आचरण की मुख्यता है और गुप्ति में अप्रशस्त के निरोध की मुख्यता है ।

मनोगुप्ति के तीन प्रकार हैं-

(अ) अकुशल निवृत्ति :– आर्त्त और रौद्रध्यान के विचारों का त्याग करना `अकुशल निवृत्ति' मनोगुप्ति है ।

(ब) कुशल प्रवृत्ति :– धर्मध्यान और शुक्लध्यान में मन का प्रवर्तन करना कुशल प्रवृत्ति मनोगुप्ति है ।

(स) योगनिरोध :– मन की कुशल-अकुशल सर्व प्रवृत्ति का निरोध करना योगनिरोध मनोगुप्ति है, जो चौदहवें गुणस्थानक में होती है ।

2. वचन गुप्ति :– सावद्य वचन का त्याग कर, अनिवार्य परिस्थिति में ही हितकारी व निरवद्य वचन बोलना इसे वचनगुप्ति कहते हैं ।

इसके भी दो प्रकार हैं-

(अ) मौनावलंबिनी वचनगुप्ति :– शिरकम्पन, हस्तचालन तथा संकेत आदि का त्याग करना मौनावलंबिनी वचनगुप्ति है ।

(स) वाग्नियमिनी वचनगुप्ति :– वाचना आदि के विशेष प्रसंग पर यतनापूर्वक बोलना वाग्नियमिनी वचनगुप्ति है ।

3. कायगुप्ति :– काया द्वारा अशुभ प्रवृत्ति का त्याग और शुभ में प्रवृत्ति कायगुप्ति है ।

इसके दो भेद हैं-

(अ) चेष्टा निवृत्ति रूप कायगुप्ति :– उपसर्ग आदि के प्रसंग में भी काया को चलित न करना, चेष्टा निवृत्ति रूप कायगुप्ति कहलाती है ।

(ब) सूत्र चेष्टा नियमिनी कायगुप्ति :– शास्त्र में विहित मार्गानुसार गमनागमन आदि की प्रवृत्ति करना ।

बाइस परीषह

खुहा पिवासा सी-उण्हं, दंसा-चेला-रईत्थिओ ।
चरिया निसीहिया सिज्जा, अक्कोस वह जायणा ।।27।।
अलाभ रोग तणफासा, मल सक्कार परिसहा ।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं, इअ बावीस परिसहा ।।28।।

शब्दार्थ :– खुहा=क्षुधा **पिवासा**=प्यास **सी**=ठंड़ी **उण्हं**=उष्ण **दंस**=दंश **अचेल**=नग्न **अरइ**=अरति **इत्थिओ**=स्त्री **चरिया**=चर्या **निसीहिया**=नैषेधिकी **सिज्जा**=शय्या **अक्कोस**=आक्रोश **वह**=वध **जायणा**=याचना **अलाभ**=अलाभ **रोग**=रोग **तणफासा**=तृण स्पर्श **मल**=मैल परिषह **सक्कार**=सत्कार **परिसहा**=परीषह **पन्ना**=प्रज्ञा **अन्नाण**=अज्ञान **सम्मत्तं**=सम्यक्त्व **इअ**=ये **बावीस**=बाईस ।

भावार्थ :– 1) क्षुधा परीषह 2) तृषा परीषह 3) शीत परीषह 4) उष्ण परीषह 5) दंश परीषह 6) अचेलक परीषह 7) अरति परीषह 5) स्त्री परीषह 9) चर्या परीषह 10) नैषेधिकी परीषह 11) शय्या परीषह 12) आक्रोश परीषह 13) वध परीषह 14) याचना परीषह 15) अलाभ परीषह 16) रोग परीषह 17) तृणस्पर्श परीषह 18) मल परीषह 19) सत्कार परीषह 20) प्रज्ञा परीषह 21) अज्ञान परीषह 22) सम्यक्त्व परीषह, इस प्रकार बाईस परीषह समझने चाहिए ।

(3) बाईस परीषह

1. क्षुधा परीषह :– बयालीस दोष से रहित भिक्षा न मिलने पर भूख को सहन करना ।

2. पिपासा परीषह :– तीव्र प्यास लगने पर भी सचित्त जलपान की इच्छा नहीं करना ।

3. शीत परीषह :– अत्यधिक सर्दी पड़ने पर भी उसे इच्छापूर्वक सहन करना, किंतु अग्नि आदि की इच्छा न करना ।

4. उष्ण परीषह :– भयंकर गर्मी पड़ने पर भी उसे सहन करना, किंतु उससे बचने के लिए दोषित शीतोपचार का सेवन नहीं करना ।

5. दंश परीषह:– मच्छर, मक्खी आदि के दंश को इच्छापूर्वक सहन करना ।

6. अचेलक परीषह :– जीर्ण-शीर्ण वस्त्र होने पर भी अच्छे वस्त्रों की इच्छा न करना और हल्के और फटे-पुराने वस्त्रों में दीनता न करना ।

7. अरति परीषह :– संयम मार्ग में विचरण करते हुए प्रतिकूल संयोग मिलने पर भी किसी प्रकार की अरति-अरूचि नहीं रखना ।

8. स्त्री परीषह :– विषयसेवन की प्रार्थना करने पर भी किसी स्त्री के अधीन नहीं बनना ।

9. चर्या परीषह :– रागादि से आसक्त बनकर किसी एक स्थान पर नहीं रहना और निरंतर विहार आदि के कष्टों को सहन करना ।

10. नैषेधिकी परीषह :– श्मशान आदि एकान्त स्थान में स्थिर आसनपूर्वक कायोत्सर्ग में रहना ।

11. शय्या परीषह :– सोने की शय्या प्रतिकूल हो, ऊँची-नीची हो, फिर भी मन में किसी प्रकार का रोष न करना और कष्ट को सहन करना ।

12. आक्रोश परीषह :– कोई गुस्सा करे तो भी गुस्सा न करना और उसे सहन करना ।

13. वध परीषह :– कोई मारपीट करे तो भी उसे सहन करना ।

14. याचना परीषह :– भिक्षा के लिए गृहस्थ के घर याचना करते समय मन में किसी प्रकार का संकोच नहीं होना ।

15. अलाभ परीषह :– गोचरी आदि के लिए भ्रमण करते हुए भी यदि इष्ट वस्तु न मिले तो भी उसे सहन करना । किंतु गृहस्थ पर रोष नहीं करना ।

16. रोग परीषह :– संयमग्रहण के बाद शरीर में किसी प्रकार की बीमारी आ जाए तो भी किसी प्रकार का हाय-हाय किये बिना उसे समतापूर्वक सहन करना ।

17. तृणस्पर्श परीषह :– शय्या अथवा आसन पर घास आदि के तिनके हों तो उनसे होने वाली वेदना को सहन करना ।

18. मल परीषह :– शरीर पर मैल बढ़ गया हो, फिर भी स्नान की इच्छा न कर उसे सहन करना ।

19. सत्कार परीषह :– नगरजनों की ओर से भव्य स्वागत किया जाय, फिर भी उसमें राग न करना ।

20. प्रज्ञा परीषह :– असाधारण बुद्धि की प्राप्ति होने पर भी उसका अभिमान न करना, ज्ञान का अजीर्ण-अभिमान न होने देना ।

21. अज्ञान परीषह :– ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से ज्ञान न चढ़े तो भी खेद नहीं करना और ज्ञान-प्राप्ति के लिए यथाशक्य प्रयत्न करना ।

22. सम्यक्त्व परीषह :– सम्यक्त्व से चलित करने के लिए कोई कितना ही उपसर्ग करे, फिर भी सम्यक्त्व से चलित नहीं होना ।

परीषह यंत्र

क्रमांक	परीषह	किस कर्म के उदय से	किस गुणस्थानक में
1.	क्षुधा	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
2.	पिपासा	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
3.	शीत	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
4.	उष्ण	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
5.	दंश	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
6.	अचेल	चारित्रमोहनीय	1 से 9 गुणस्थानक
7.	अरति	चारित्रमोहनीय	1 से 9 गुणस्थानक
8.	स्त्री	चारित्रमोहतीय	1 से 9 गुणस्थानक
9.	चर्या	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
10.	निषद्या	चारित्र मोहानीय	1 से 9 गुणस्थानक
11.	शय्या	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
12.	आक्रोश	चारित्र मोहनीय	1 से 9 गुणस्थानक
13.	वध	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
14.	याचना	चारित्र मोहनीय	1 से 13 गुणस्थानक
15.	अलाभ	लाभांतराय	1 से 12 गुणस्थानक
16.	रोग	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
17.	तृणस्पर्श	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
18.	मल	वेदनीय	1 से 13 गुणस्थानक
19.	सत्कार	चारित्र मोहनीय	1 से 9 गुणस्थानक
20.	प्रज्ञा	ज्ञानावरण क्षयोपशम	1 से 12 गुणस्थानक
21.	अज्ञान	ज्ञानावरण	1 से 12 गुणस्थानक
22.	सम्यक्त्व	दर्शन मोहनीय	1 से 7 गुणस्थानक

दस यतिधर्म

खंती मद्दव अज्जव, मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे ।
सच्चं सोअं आकिंचणं च, बंभं च जइ धम्मो ।।29।।

शब्दार्थ :– खंती=क्षमा **मद्दव=**मार्दव **अज्जव=**सरलता **मुत्ती=**निर्लोभता **तव=**तप **संजमे=**संयम **अ=**तथा **बोधव्वे=**जानना चाहिए **सच्चं=**सत्य **सोअं=**शौच-पवित्रता **आकिंचणं=**अपरिग्रह **बंभं=**ब्रह्मचर्य **च=**और **जइधम्मो=**यतिधर्म

भावार्थ :– क्षमा, मृदुता, सरलता, निर्लोभता, तप, संयम, पवित्रता, अपरिग्रह तथा ब्रह्मचर्य ये दश प्रकार के यतिधर्म हैं ।

1. क्षमा :– क्रोध के प्रसंग में भी क्रोध नहीं करना, चित्त को शान्त और स्थिर रखना । इस क्षमा के 5 भेद हैं-

(क) उपकार क्षमा :– किसी ने अपने ऊपर उपकार किया हो और वह व्यक्ति अपने पर गुस्सा करे । हम यह सोचकर कि `यदि मैं गुस्सा करूंगा तो यह व्यक्ति मुझ पर उपकार नहीं करेगा' उसके गुस्से को सहन करना, **'उपकार क्षमा'** कहलाती है ।

(ख) अपकार क्षमा :– किसी ने अपने ऊपर गुस्सा किया हो और यह सोचकर उस गुस्से को सहन कर ले कि `यदि मैं गुस्सा करूंगा तो मुझे मारपीट आदि सहन करनी पड़ेगी अतः मौन रहना उचित है' **'अपकार क्षमा'** है ।

(ग) विपाक क्षमा :– `यदि मैं गुस्सा करूंगा तो इससे मुझे कर्मबंध हो जाएगा...मुझे बुरे परिणाम भोगने पड़ेंगे' ऐसा सोचकर दूसरे के गुस्से को सहन करना **'विपाक क्षमा'** कहलाती है ।

(घ) वचन क्षमा :– `परमात्मा ने गुस्सा करने का निषेध किया है' इस प्रकार भगवद् वचन को याद कर क्षमा धारण करना **'वचन क्षमा'** है ।

(ङ) धर्म क्षमा :– क्षमा तो मेरी आत्मा का धर्म है, इस प्रकार क्षमा को आत्मस्वभाव मानकर दूसरे के गुस्से को सहन करना **'धर्म क्षमा'** है ।

इन पाँच प्रकार की क्षमा में चौथी क्षमा श्रेष्ठ तथा पाँचवीं सर्वश्रेष्ठ है ।

2. आर्जव :– मन में किसी प्रकार की माया नहीं करना और सरलता रखना ।

3. मार्दव :– किसी प्रकार का अभिमान नहीं करना और नम्र बनने का प्रयत्न करना । पुण्य के उदय से सुकुल-उत्तम जाति आदि की प्राप्ति हुई हो, फिर भी लेश भी अहंकार नहीं करना ।

4. मुक्ति :– मुक्ति अर्थात् लोभजय । प्राप्त वस्तुओं में सन्तोष धारण करना । अनुकूल व अप्राप्त पदार्थों को पाने की लालसा नहीं रखना ।

5. तप :– तप अर्थात् इच्छाओं का निरोध करना । आहार की लालसा, इन्द्रियों के भोग तथा कषाय-जय के लिए यथाशक्य बाह्य व अभ्यंतर तप का आचरण करना ।

6. संयम :– आत्म-गुणों के विकास के लिए चारित्र धर्म की आराधना करना संयम कहलाता है । इसके सत्रह भेद हैं-

पाँच महाव्रतों का पालन

1) सर्वथा प्राणातिपात विरमण महाव्रत :– मन, वचन, काया से हिंसा करनी नहीं, दूसरों से हिंसा करवानी नहीं और हिंसा करते हुए की अनुमोदना करनी नहीं ।

2) सर्वथा मृषावाद विरमण महाव्रत :– मन, वचन और काया से झूठ बोलना नहीं, दूसरे से बुलवाना नहीं और झूठ बोलने वाले की अनुमोदना करनी नहीं ।

3) सर्वथा अदत्तादान विरमण महाव्रत :– मन, वचन और काया से चोरी करना नहीं, दूसरे से करवाना नहीं और चोरी करने वाले की अनुमोदना नहीं करनी ।

4) सर्वथा मैथुन विरमण महाव्रत :– मन, वचन और काया से मैथुन का सेवन करना नहीं, दूसरे से करवाना नहीं और करते हुए की अनुमोदना भी नहीं करना ।

5) सर्वथा परिग्रह विरमण महाव्रत :– मन, वचन और काया से परिग्रह धारण करना नहीं, करवाना नहीं और परिग्रह धारण करने वाले की अनुमोदना भी नहीं करना ।

पाँच इन्द्रिय निग्रह

6) श्रोत्रेन्द्रिय निग्रह :– कान से निन्दा, अश्लील गीत आदि के श्रवण का त्याग करना ।

7) चक्षुरिन्द्रिय निग्रह :– आँख से स्त्री के अंगोपांग दर्शन, सिनेमा, नाटक आदि देखने का त्याग करना ।

8) घ्राणेन्द्रिय निग्रह :– सुगन्धित पदार्थ, बगीचे में भ्रमण आदि का त्याग करना ।

9) रसनेन्द्रिय निग्रह :– स्वादिष्ट भोजन आदि की आसक्ति का त्याग करना ।

10) स्पर्शनेन्द्रिय निग्रह :– मुलायम व कोमल गद्दे तथा स्त्री के स्पर्श आदि का त्याग करना ।

चार कषाय-जय

11) क्रोधजय :– क्रोध के प्रसंग में क्रोध न करना ।

12) मानजय :– किसी वस्तु का अभिमान नहीं करना ।

13) मायाजय :– किसी के साथ मायाचार नहीं करना ।

14) लोभजय :– प्राप्त वस्तु में सन्तोष धारण करना ।

तीन योग

15) मनोयोग :– मन से अशुभ चिंतन का त्याग करना और शुभ चिंतन करना ।

16) वचनयोग :– वाणी से असत्य, अप्रिय तथा अहितकर वचन-प्रवृत्ति का त्याग करना और प्रिय व पथ्य वचन बोलना ।

17) काययोग :– काया की अशुभ चेष्टाओं का त्याग करना और शुभ में प्रवृत्ति करना ।

7. सत्य :– प्रिय, पथ्य, सत्य और हितकर वचन बोलना ।

8. शौच-धर्म :– मन को पवित्र व शुद्ध रखना । मानसिक अध्यवसायों की परिणति को शुभ व शुद्ध रखना ।

9. अकिंचन :– किसी प्रकार का परिग्रह नहीं रखना ।

10. ब्रह्मचर्य :– मैथुन का त्याग कर आत्मभाव में रमण करना ब्रह्मचर्य धर्म है ।

बारह भावनाएँ

पढम-मणिच्च-मसरणं, संसारो एगया य अन्नत्तं ।
असुइत्तं आसव, संवरो य तह निज्जरा नवमी ।।30।।
लोगसहावो बोही, दुलहा धम्मस्स साहगा अरिहा ।
एआओ भावणाओ, भावेअव्वा पयत्तेणं ।।31।।

शब्दार्थ :– पढमं=पहली **अणिच्चं=**अनित्य **असरणं=**अशरण **संसारो=**संसार **एगया=**एकत्व **य=**और **अन्नत्तं=**अन्यत्व **असुइत्तं=**अशुचि **आसव=**आस्त्रव **संवरो=**संवर **तह=**तथा **नवमी=**नौवी **निज्जरा=**निर्जरा **लोगसहावो=**लोकस्वभाव **बोहीदुलहा=**बोधिदुर्लभ **धम्मस्स=**धर्म के **साहगा=**साधक **अरिहा=**अरिहंत **एआओ=**ये **भावणाओ=**भावनाएँ **भावेअव्वा=**करनी चाहिए **पयत्तेणं=**प्रयत्नपूर्वक ।

भावार्थ :– पहली अनित्य भावना, दूसरी अशरण भावना, तीसरी संसार भावना, चौथी एकत्वभावना, पांचवी अन्यत्व भावना, छट्ठी अशुचि भावना, सातवीं आस्त्रव भावना, आठवीं संवर भावना और नौवीं निर्जरा भावना है ।।30।।

दसवीं लोक-स्वभाव भावना, ग्यारहवीं बोधिदुर्लभ भावना और बारहवीं धर्म साधक अरिहंत दुर्लभ हैं, ये बारह भावनाएँ-प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए ।

विवेचन :– दुःखमय संसार के प्रति तो जीव मात्र को वैराग्य होता है, परंतु सुखमय संसार सभी जीवों को पसंद पड़ता है, जबकि सुखमय संसार का राग और दुःखमय संसार का द्वेष ही आत्मा को संसार में भटकाता है । अनादिकाल से आत्मा में संसार के क्षणिक सुखों के प्रति तीव्र राग भाव रहा होने के कारण उस सुखमय संसार के प्रति वैराग्य भाव पैदा करना बहुत कठिन है ।

सुखमय संसार के रागभाव को तोड़ने के लिए ही तारक परमात्मा ने अनित्य आदि भावनाएँ बतलाई हैं । उन अनित्य आदि भावनाओं से अपनी आत्मा को भावित करने से संसार के सुख का राग स्वतः घटता जाता है ।

संवर के 57 भेदों में निर्दिष्ट इन बारह भावनाओं को प्रयत्नपूर्वक भाना चाहिए ।

1. अनित्य भावना

अपना शरीर, धन, यौवन तथा कुटुंब परिवार आदि सब अनित्य है । नाशवंत है, क्षणभंगुर है, इस प्रकार का चिंतन करना, उसे अनित्य भावना कहते हैं ।

संसारी जीव धन-पुत्र-परिवार आदि के नाश को देख विषादग्रस्त बनता है, शोकातुर बनता है, जबकि धर्मी आत्मा उन पदार्थों का विनाश देखकर आर्तध्यान नहीं करती है ।

पानी में पैदा होनेवाले जलतरंग की भाँति यह लक्ष्मी अत्यंत ही चपल अर्थात् चंचल है । सदैव स्थिर रहना, यह धन का स्वभाव ही नहीं है तो ऐसे धन को पाकर क्या गर्व करना अथवा ऐसे धन के वियोग में क्या शोक करना ?

संसार के सारे संबंध स्वप्न तुल्य हैं । स्वप्न में सारे संबंध दिखते हैं, परंतु आँख खुलते ही सब अदृश्य हो जाते हैं । बस इसी प्रकार संसार के संबंध भी स्वप्न तुल्य होने से उन संबंधों के संयोग में राजी होने जैसा कुछ भी नहीं है और उन संबंधों के वियोग में शोक-ग्रस्त होने जैसा भी कुछ नहीं है ।

यह यौवन-धन भी वायु की तरह अस्थिर है । अतः ऐसे यौवन को प्राप्तकर बिल्कुल गर्व करने जैसा नहीं है ।

इस प्रकार अनित्य भावना से अपनी आत्मा को भावित करने से धन आदि का राग घटता है ।

2. अशरण भावना

इस संसार में आत्मा के लिए अरिहंत आदि को छोड़ कोई शरणभूत नहीं है । करोड़ों रूपयों की धन-संपत्ति हो या विशाल साम्राज्य हो, फिर भी आत्मा को मौत से बचानेवाला कोई नहीं है । माता-पिता की हाजरी में भी यह यमराज पुत्र को उठा ले जाता है ।

इन्द्र जैसे इन्द्र भी मौत के मुख में जाने से बच नहीं पाते हैं अर्थात् इन्द्र को भी एक दिन अवश्य मरना पड़ता हैं ।

करोड़ों विमानों के अधिपति ऐसे इन्द्र को भी मरकर गर्भावास में आ जाना पड़ता है और उसे भी गर्भ की पीड़ा सहन करनी पड़ती है ।

3. संसार भावना

संसार की दुःखमयता आदि का विचार करना संसार भावना है । इस संसार में आत्मा चार गति और चौरासी लाख योनि में भटकती रहती है । देव मरकर मनुष्य बनता है, मनुष्य मरकर नरक व तिर्यंचगति में जाता है । माता मरकर पुत्री बनती है और पुत्र मरकर पिता बनता है । संसार की यही विचित्रता है-यहाँ आत्मा एक स्थिति में नहीं रहती है । यह संसार दुःखों की खान है, जहाँ आत्मा जन्म, जरा, मृत्यु, आधि, व्याधि और उपाधि के भयंकर कष्ट सहन करती रहती है ।

अँगूठे को चूसने से जिस प्रकार बालक को दूध की प्राप्ति नहीं होती है, उसी प्रकार संसार में जीव को कहीं भी सुख की प्राप्ति नहीं होती है ।

4. एकत्व भावना

संसार में जीव अकेला आया है और अकेला ही जानेवाला है । अपने किए हुए कर्मों का फल आत्मा अकेली ही भुगतती है । इस संसार में आत्मा स्वयं ही कर्म का बंध करती है और उन कर्मों की सजा भी आत्मा ही भुगतती है । माता-पिता, पुत्र-परिवार, धन-दौलत कभी आत्मा के अपने नहीं बनते हैं ।

ज्ञान-दर्शन गुण से युक्त मेरी आत्मा शाश्वत है, जबकि शेष सभी बाह्य-भाव हैं । अन्य सभी संयोग कर्म के कारण पैदा हुए हैं ।

5. अन्यत्व भावना

देह और आत्मा की भिन्नता का चिंतन करना अन्यत्व भावना है । आत्मा के गुणधर्म अलग हैं और देह के गुण-धर्म अलग हैं ।

पानी का स्वभाव अलग है और घी का स्वभाव अलग है । पानी में घी ड़ालने पर वह घी पानी में Mix नहीं होता है, बल्कि ऊपर ऊपर ही तैरता है ।

दूध और पानी का मिश्रण हो सकता है, क्योंकि कुछ अंशों में दूध व पानी के गुणधर्म एक समान हैं, परंतु पानी और घी का मिश्रण नहीं होता है, उसी प्रकार देह और आत्मा के गुण-धर्म भिन्न-भिन्न हैं । देह नाशवंत है, जबकि आत्मा शाश्वत है ।

देह के नाश में मेरा नाश नहीं है और देह के पोषण में मेरा पोषण नहीं है । इस प्रकार देह और आत्मा की भिन्नता का विचार करना अन्यत्व भावना है ।

6. अशुचि भावना

शरीर के प्रति रहे ममत्व भाव को दूर करने के लिए आत्मा को अशुचि भावना से भावित करना चाहिए ! `मेरा देह अशुचि से भरा हुआ है' इस प्रकार का चिंतन करने से देह पर रहा राग भाव टिक नहीं पाता है ।

जिस प्रकार कपूर के बीच रहने पर भी लहसुन की दुर्गंध दूर नहीं होती है, उसी प्रकार इस शरीर को चाहे जितनी बार नहलाएँ, फिर भी यह अपने अशुचि स्वभाव को छोड़नेवाला नहीं है ।

जिस प्रकार कचरेपट्टी में सुगंध की कल्पना करना बेकार है, उसी प्रकार इस देह में सुगंध की कल्पना करना बेकार ही है ।

7. आस्त्रव भावना

आत्मा में कर्म के आगमन के 42 हेतुओं के संदर्भ में चिंतन करना, उसे आस्त्रव भावना कहते हैं ।

जिस प्रकार एक तालाब में चारों ओर से जल का आगमन होने पर वह तालाब जल से लबालब भर जाता है, उसी प्रकार मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग के सेवन से आत्मा में चारों ओर से कर्म का आगमन चालू हो जाता है ।

मिथ्यात्व के कारण आत्मा तीव्र कर्म का बंध करती है अतः हे आत्मन् ! तू मिथ्यात्व के हेतुओं का त्याग कर !

पाप के त्याग की प्रतिज्ञा के अभाव के कारण आत्मा भयंकर पापकर्म का बंध करती है । अविरति के कारण पाप न करने पर भी आत्मा पापकर्म का बंध करती है ।

`नदी के जल के प्रवाह समान समय का प्रवाह सतत बह रहा है । प्राप्त समय को सफल व सार्थक बनाने के लिए प्रमाद का त्याग जरूरी है । तू प्रमाद का त्याग कर और प्राप्त प्रतिक्षण का आत्महित में प्रयोग कर ! अन्यथा यह प्रमाद तेरे आत्मधन को खा जाएगा ।'

`हे आत्मन् ! क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषाय तेरी आत्म-समृद्धि को लूटनेवाले लुटेरे हैं । ये चार कषाय संसारवृक्ष का सिंचन करनेवाले हैं अतः इनका त्याग जरूरी है ।

8. संवर भावना

आस्रव के विरूद्ध संवर तत्त्व है । आत्मा में आनेवाले कर्म को रोकना उसे संवर कहते हैं । संवर तत्त्व के चिंतन को संवर भावना कहते हैं ।

हे आत्मन् ! तू समिति-गुप्ति के पालन में सतत उद्यमशील बन, क्योंकि समिति-गुप्ति का भंग पापबंध का हेतु है । हे आत्मन् ! क्षुधा आदि बाईस परिषहों को तू उत्साहपूर्वक सहन कर !

हे आत्मन् ! दश प्रकार के यति धर्म के पालन में लेश भी प्रमाद मत कर !

हे आत्मन् ! तू वैराग्य का पोषण करनेवाली बारह भावनाओं का सतत चिंतन कर !

हे आत्मन् ! सामायिक आदि पाँच प्रकार के चारित्र आत्मा के विकास की सीढ़ियाँ हैं । उनके पालन में तू उद्यमशील बन ।

9. निर्जरा भावना

जिस आराधना-साधना के द्वारा पूर्व में संचित कर्मों का क्षय होता है, उसे निर्जरा कहते हैं । निर्जरा तत्त्व का चिंतन करना, उसे निर्जरा भावना कहते हैं ।

हे चेतन ! तूने पशु-पंखी के भवों में पराधीन अवस्था में बहुत कुछ कष्ट सहन किए हैं, अतः इस भव में तू उत्साह पूर्वक कष्ट सहन करेगा तो तेरा जल्दी उद्धार होगा ।

नरक-निगोद के भयंकर कष्टों के आगे तप-साधना के कष्ट तो नगण्य हैं ।

हे चेतन ! बाह्य तप की आराधना-साधना के साथ तू प्रायश्चित्त आदि अभ्यंतर तप की साधना के लिए भी प्रयत्नशील बन, जिसके फलस्वरूप तू अल्प भवों में ही भवबंधन से मुक्त हो सकेगा ।

10. लोकस्वरूप भावना

चौदह राजलोक रूप संसार के स्वरूप का चिंतन करना, उसे लोक-स्वरूप भावना कहते हैं । यह संसार धर्मास्तिकाय आदि षट् द्रव्यात्मक है ।

यह चौदह राजलोक पुरूष की आकृति जैसा है । कमर पर दोनों हाथ लगाकर अपने दोनों पाँवों को चौड़ा करने से जो आकृति बनती है, उस आकार वाला यह लोक है । अधोलोक 7 राजलोक प्रमाण है और ऊर्ध्वलोक भी 7 राजलोक प्रमाण है, जबकि मध्यलोक 1800 योजन प्रमाण है । नीचे 7 राजलोक में 7 नरकावास हैं, जबकि ऊर्ध्वलोक में ज्योतिष और वैमानिक देवताओं के विमान हैं । कर्म के अधीन बनी आत्मा इस चौदह राजलोक रूप संसार में जहाँ-तहाँ भटकती रहती है ।

11. बोधिदुर्लभ भावना

इस संसार में परिभ्रमण कर रही आत्मा को बोधि अर्थात् सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अत्यंत ही दुर्लभ है । मानव भव, धर्मश्रवण, धर्मश्रद्धा और धर्म का आचरण क्रमशः अत्यंत ही दुर्लभ है ।

सम्यग्दर्शन के अभाव में आत्मा इस संसार में एक योनि से दूसरी योनि में, एक गति से दूसरी गति में भटकती रहती है । आत्मा के संसार-परिभ्रमण का अंत लाना हो तो बोधि की प्राप्ति अत्यंत ही जरूरी है । एक बार भी आत्मा को सम्यग्दर्शन के परिणाम का स्पर्श हो जाता है, वह आत्मा अर्ध पुद्गल परावर्त काल के भीतर अवश्य ही मोक्षपद प्राप्त करती है ।

12. धर्मसाधक अरिहंत दुर्लभ भावना

जगत् में परिभ्रमण कर रहे जीवों को धर्म का मार्ग बतलाने वाले श्री अरिहंत परमात्मा ही हैं, ऐसे भवोदधि तारक श्री अरिहंत परमात्मा की प्राप्ति भी जीव को सुलभ नहीं है । महान् पुण्योदय बिना तीर्थंकर देव की प्राप्ति नहीं होती है ।

पाँच चारित्र

सामाइअत्थ पढ़मं, छेओवट्ठावणं भवे बीअं ।
परिहार-विसुद्धीअं, सुहुमं तह संपरायं च ।।32।।
तत्तो अ अहक्खायं, खायं सव्वम्मि जीवलोगम्मि ।
जं चरिऊण सुविहिया, वच्चंति अयरामरं ठाणं ।।33।।

शब्दार्थ :– सामाइअ=सामायिक **अत्थ=**यहाँ **पढ़मं=**पहला **छेओवट्ठावणं=**छेदोपस्थापनीय **भवे=**है **बीअं=**दूसरा चारित्र **परिहार विसुद्धीअं=**परिहार विशुद्धि **सुहुमं=**सूक्ष्म **तह=**तथा **संपराय=**संपराय **च=**और ।

तत्तो=उसके बाद **अ=**तथा **अहक्खायं=**यथाख्यात **खायं=**प्रख्यात **सव्वम्मि=**सभी **जीवलोगम्मि=**जीवलोक में **जं=**जिसे **चरिऊण=**आचरण करके **सुविहिया=**सुविहितजन **वच्चंति=**जाते हैं **अयरामरं=**अजरामर **ठाणं=**स्थान ।

भावार्थ :– पहला चारित्र सामायिक, दूसरा छेदोपस्थापनिक, तीसरा परिहारविशुद्धि, चौथा सूक्ष्म संपराय, उसके बाद पाँचवाँ यथाख्यात चारित्र है, जो समस्त जीवलोक में प्रसिद्ध चारित्र है । इस यथाख्यात चारित्र का पालनकर सुविहित जीव अजरामर मोक्षपद प्राप्त करता है ।

विवेचन :– चारित्रमोहनीय कर्म के क्षय, क्षयोपशम एवं उपशम से आत्मा में चारित्र के परिणाम पैदा होते हैं । आत्मा में संचित हुए कर्मों को रिक्त करने का काम यह चारित्र करता है । इस चारित्र के मुख्य 5 भेद हैं-

1. सामायिक :– जिस आराधना-साधना के फलस्वरूप आत्मा में समभाव की प्राप्ति होती है, उसे सामायिक कहते हैं ।

हिंसा आदि सावद्य पापप्रवृत्तियों के त्याग से आत्मा में सामायिक के परिणाम पैदा होते हैं ।

इस सामायिक चारित्र के दो भेद हैं-

(अ) इत्वरकथिक चारित्र :– भरत व ऐरावत क्षेत्र में पहले व अंतिम तीर्थंकर के शासन में दीक्षा लेते समय सर्व प्रथम इत्वरकथिक चारित्र ग्रहण किया जाता है, क्योंकि यह चारित्र अल्पकाल के लिए होता है ।

श्रावक-श्राविका सामायिक, प्रतिक्रमण व पौषध की जो क्रिया करते हैं, उसमें भी इत्वरकथिक चारित्र होता है ।

(ब) यावत्कथिक चारित्र :– मध्य के बाईस तीर्थंकरों के शासन में तथा

महाविदेह क्षेत्र में दीक्षा लेते समय ही महाव्रत प्रदान कर दिए जाते हैं, अतः उनकी पुनः बड़ी दीक्षा विधि नहीं होती है, अतः उनका चारित्र यावत्कथिक कहलाता है ।

2. छेदोपस्थापनीय :– पहले स्वीकार किए सामायिक चारित्र के सदोष या निर्दोष पर्याय का छेद कर जो पुनः महाव्रतों को स्वीकार किया जाता है, उसमें पूर्व पर्याय का छेद होने से छेदोपस्थापनीय चारित्र कहते हैं । किसी मुनि ने महाव्रतों का भंग किया हो तो भी उसके पूर्व पर्याय का छेदकर पुनः महाव्रत उच्चराए जाते हैं । वर्तमानकाल में नूतन दीक्षित साधु को दशवैकालिक सूत्र के चौथे षड् जीवनिकाय अध्ययन के योगोद्वहन पूरे होने के बाद महाव्रतों के आरोपण रूप बड़ी दीक्षा दी जाती है, उसे भी छेदोपस्थापनीय कहते हैं ।

वर्तमान काल में दीक्षापर्याय की गणना अर्थात् छोटे-बड़े का व्यवहार छेदोपस्थापनीय चारित्र के अनुसार ही किया जाता है ।

मध्य के बाईस तीर्थंकरों के शासन में और महाविदेह क्षेत्र में यह चारित्र नहीं होता है, यह चारित्र भरत व ऐरावत क्षेत्र के पहले व अंतिम तीर्थंकरों के शासन में ही होता है ।

3. परिहारविशुद्धि :– गच्छ में से बाहर निकलकर विशिष्ट विधि के पालनपूर्वक जिस चारित्र का पालन किया जाता है, उसे परिहार विशुद्धि चारित्र कहते हैं ।

विधि :–

गुरू की आज्ञापूर्वक स्थविरकल्पी 9 साधु गच्छ में से बाहर निकलकर तीर्थंकर भगवंत, गणधर भगवंत अथवा जिन्होंने पहले परिहारविशुद्धि को स्वीकार किया हो, उनके पास जाकर परिहारकल्प को स्वीकार करते हैं ।

इसमें पहले चार मुनि छह मास तक तप करते हैं, दूसरे चार मुनि उनकी सेवा करते हैं और एक वाचनाचार्य बनता है । छह मास पूर्ण होने के बाद वैयावच्च करनेवाले चार मुनि तप करते हैं और तप करनेवाले मुनि वैयावच्च करते हैं । फिर छह मास पूर्ण होने पर वाचनाचार्य तप करते हैं और एक अथवा 7 मुनि उनकी सेवा करते हैं ।

इस प्रकार 18 मास में यह कल्प पूरा होता है । परिहारकल्पी मुनि ग्रीष्मऋतु में जघन्य से चतुर्थ भक्त (एक उपवास), मध्यम षष्ठ भक्त व उत्कृष्ट से अट्ठम तप करते हैं । शीत ऋतु में जघन्य से छट्ठ, मध्यम अट्ठम

व उत्कृष्ट से दशभक्त करते हैं । जबकि वर्षाऋतु में जघन्य से तीन उपवास, मध्यम चार उपवास, व उत्कृष्ट से पाँच उपवास करते हैं ।

इस तप के पारणे में आयंबिल होता है । वैयावच्च करनेवाले और वाचनाचार्य हमेशा आयंबिल करते हैं ।

इस कल्प की पूर्णाहुति के बाद कुछ साधु पुनः परिहारविशुद्धिकल्प को स्वीकार करते हैं । तो कुछ जिनकल्प का स्वीकार करते हैं तो कुछ पुनः गच्छ में प्रवेश करते हैं ।

यह चारित्र पहले व अंतिम तीर्थंकर के शासन में होता है । अन्य बाईस तीर्थंकरों के शासन में नहीं होता है ।

4. सूक्ष्म संपराय चारित्र :– चारित्र मोहनीय की 28 प्रकृतियों में से 27 प्रकृतियों का क्षय हो गया हो और मात्र संज्वलन लोभ ही सत्ता में पड़ा हो, तब 10वें गुणस्थानक में रही आत्मा के चारित्र को सूक्ष्म संपराय चारित्र कहते हैं । संपराय का अर्थ कषाय होता है । मात्र लोभ का सूक्ष्म अंश बाकी रह जाने से इसे सूक्ष्म संपराय कहते हैं ।

5. यथाख्यात चारित्र :– तारक तीर्थंकर परमात्मा ने चारित्र का जो शुद्ध स्वरूप बतलाया है, उस चारित्र को यथाख्यात चारित्र कहते हैं । इस चारित्र में कषाय का सर्वथा उपशम और क्षय होता है । इसके मुख्य चार भेद हैं–

(1) उपशांत यथाख्यात :– ग्यारहवें गुणस्थान में रही आत्मा के मोह का सर्वथा उपशम होने से उसे उपशांत यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

(2) क्षायिक यथाख्यात :– बारहवें, तेरहवें और चौदहवें गुणस्थानक में रही आत्मा के मोह का सर्वथा क्षय हो जाने से उनके उस चारित्र को क्षायिक यथाख्यात कहते हैं ।

(3) छाद्मस्थिक यथाख्यात :– ग्यारहवें व बारहवें गुणस्थान में रही आत्मा अभी तक छद्मस्थ होने से उनके इस चारित्र को छाद्मस्थिक यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

(4) कैवलिक यथाख्यात :– तेरहवें-चौदहवें गुणस्थानक में रही आत्मा केवली होने से उनके चारित्र को कैवलिक यथाख्यात चारित्र कहते हैं ।

इस चारित्र की महिमा का कोई पार नहीं है । इस यथाख्यात चारित्र की आराधना करके ही आत्मा शाश्वत अजरामर मोक्षपद प्राप्त करती है ।

7 निर्जरा तत्त्व

अणसण-मूणोअरिया, वित्ती-संखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया य, बज्झो तवो होइ ।।34।।

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ ।
झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ।।35।।

शब्दार्थ :– **अणसणं**=अनशन **ऊणोअरिया**=ऊनोदरिका **वित्ती संखेवणं**=वृत्ति संक्षेप **रसच्चाओ**=रसत्याग **कायकिलेसो**=कायक्लेश **संलीणया**=संलीनता **य**=तथा **बज्झो**=बाह्य **तवो**=तप **होइ**=होता है ।

पायच्छित्तं=प्रायश्चित्त **विणओ**=विनय **वेयावच्चं**=वैयावच्च **तहेव**=तथा **सज्झाओ**=स्वाध्याय **झाणं**=ध्यान **उस्सग्गो**=कायोत्सर्ग **वि**=भी **अ**=तथा **अब्भिंतरओ**=अभ्यंतर **तवो**=तप **होइ**=होता है ।

भावार्थ : अनशन, ऊनोदरी, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और संलीनता ये छह बाह्यतप हैं ।

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग ये छह अभ्यंतर तप हैं ।

विवेचन :– **'निर्जरा'** अर्थात् आत्मा पर लगी हुई कर्म रूपी धूल का झड़ना ।

अनादिकाल से अपनी आत्मा कर्म के सम्बन्ध में है । अपनी आत्मा निरन्तर सात या आठ कर्मों का बंध कर रही है । इसके साथ प्रतिसमय आठों कर्म उदय में भी हैं ।

प्रतिसमय कर्मोदय से क्षीण होने वाले कर्म अल्प संख्या में हैं और बंध अधिक संख्या में हो रहा है । इस कारण अपनी आत्मा पर कर्म का मैल अत्यधिक चढ़ा हुआ है ।

कोई तालाब पानी से भरा हुआ हो, उसमें नवीन पानी के आगमन के द्वार बन्द कर दिए हों तो उस तालाब का पानी वैशाख और ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी से भाप बनकर उड़ने लगता है और धीरे-धीरे एक दिन वह तालाब सूख जाता है ।

बस, इसी प्रकार अपनी आत्मा में भी आस्त्रव-मार्गों के द्वारा कर्मों का आगमन होता है । संवर द्वारा आस्त्रवों के उन द्वारों को बन्द कर दिया जाता है और निर्जरा द्वारा सत्तागत कर्मदलिकों को जलाकर खत्म कर दिया जाता है ।

इस संसार-सागर में अपनी आत्मा नाव समान है । आस्त्रव-द्वार नाव के छिद्र हैं, जिनसे कर्म रूपी पानी आत्मा में प्रवेश करता है, जिससे आत्मा रूपी नाव संकट में आ जाती है । उस समय संवर के द्वारा कर्मों के आगमन के द्वारों को बन्द किया जाता है और निर्जरा के द्वारा आत्मनाव में आए कर्म रूपी पानी को बाहर फेंका जाता है ।

आत्मा पर से कर्म का क्षय दो प्रकार से होता है-

1) उदय से और 2) निर्जरा से ।

कर्म के उदय से भी आंशिक कर्मों का क्षय होता है, परन्तु इसके द्वारा आत्मा कर्म से मुक्त नहीं बन सकती है क्योंकि उदय के साथ ही कर्म का बंध भी तो प्रतिसमय चालू है । अतः सम्पूर्ण कर्मों का क्षय तो एकमात्र निर्जरा से ही सम्भव है ।

निर्जरा के मुख्य दो भेद हैं-

1) अकामनिर्जरा :– कर्म के उदय से जन्य दुःख, पीड़ा आदि को अनिच्छा से सहन करना । इसमें निर्जरा अति अल्प होती है ।

2) सकामनिर्जरा :– कर्म के उदय से आए हुए दुःख को इच्छापूर्वक सहन करने से सकामनिर्जरा होती है तथा इच्छापूर्वक नये-नये कष्टों को खड़ा कर, उन्हें सहन करने से भी सकाम-निर्जरा होती है । इसमें थोड़ा कष्ट हो तो भी निर्जरा अधिक होती है ।

इच्छापूर्वक कष्ट सहन करने में अत्यधिक निर्जरा होती है ।

नरक का जीव अनिच्छा से सौ वर्षों तक भयंकर कष्टों को सहन कर जितने कर्मों की निर्जरा करता है, उतने कर्मों की निर्जरा इच्छापूर्वक किए गए एक नवकारसी के तप से हो जाती है ।

दृढ़प्रहारी, चिलातीपुत्र, अर्जुनमाली, रोहिणेय चोर आदि महापापियों का भी तप और संयम से अल्पकालीन कष्ट सहन करने से उद्धार हो गया और हमारा उद्धार नहीं हो पाया, इसका कारण क्या है ?

क्या हमने मरणान्त कष्टों को सहन नहीं किया है ?

क्या हमारे शरीर की चमड़ी उतारी नहीं गई है ?

क्या हमने जीते जी आग की पीड़ा को सहन नहीं किया है ?

कष्ट, उपसर्ग और पीड़ाएँ तो बहुत सहन कीं, फिर भी हम मुक्त न हो पाए । इसका एकमात्र कारण है-वे सब दुःख हमने अनिच्छा से सहन किये हैं, परन्तु उस दुःख से घृणा ही की है-उस दुःख में रोए हैं । इसीलिए हम मुक्त न बन पाये ।

जैन दर्शन में निर्जरा तत्त्व के बारह भेद बतलाए गये हैं, क्योंकि तप के बारह प्रकार हैं । तप और निर्जरा का अभेद सम्बन्ध है । जहाँ तप है वहाँ निर्जरा होगी ही । तप के द्वारा उदयावलिका में अप्रविष्ट कर्मों को उदय में लाकर क्षय किया जाता है ।

`आत्मा पर से कर्म का झड़ जाना यही वस्तुतः निर्जरा का स्वरूप है और इसका प्रकार भी एक ही है, फिर भी हेतु के भेद से जैसे कार्य में भेद किया जाता है, उसी प्रकार निर्जरा के हेतुओं के भेद से निर्जरा के भी बारह भेद किए गए है ।

निकाचित कर्मों को भी नष्ट करने की ताकत है `सम्यग् तप' में । जिनाज्ञा के पालनपूर्वक जो सम्यग् तप किया जाता है, उसमें प्रचण्ड़ ताकत पैदा हो जाती है । जिस प्रकार इन्द्र के वज्र में पर्वत को भेद ड़ालने की, उसे चूर-चूर कर देने की ताकत रही हुई है, उसी प्रकार तप में भी सर्व शक्तिमान निकाचित कर्मों को भी जलाकर भस्मीभूत करने की ताकत रही हुई है ।

इस तप का आचरण निर्मल भाव से करना चाहिए । यही आगम का परम रहस्य है । निदानरहित छोटे से तप में भी मोक्ष प्रदान करने का सामर्थ्य रहा हुआ है ।

जहाँ माया, मिथ्यात्व और निदान शल्य रहा हुआ है, वह तप जिन-शासन में मान्य नहीं है । वह तप तो भव-वृद्धि का ही कारण बनता है ।

बाह्य तप के छह भेद :–

बाह्य तप :– इस तप में बाह्य पदार्थों का त्याग किया जाता है । इस तप में देह को कष्ट पड़ता है, जो अन्य व्यक्तियों के द्वारा प्रत्यक्ष देखा जा सकता है । आहार आदि बाह्य पदार्थों का त्याग होने से, अन्य व्यक्तियों द्वारा प्रत्यक्ष होने से तथा जैनेतर व्यक्तियों द्वारा भी आचरित होने से इसे बाह्य तप कहते हैं । इसके छह भेद हैं-

1) अनशन :– जिस तप में चारों प्रकार के आहार का सर्वथा अथवा आंशिक त्याग किया जाता है, उसे अनशन तप कहते हैं ।

अ) अशन :– जिस पदार्थ के खाने से क्षुधा की तृप्ति हो, उसे अशन कहते हैं । जैसे-रोटी, शाक, मिष्टान्न आदि ।

आ) पान :– अर्थात् पानी, पेय पदार्थ ।

इ) खादिम :– जिन वस्तुओं के भक्षण से क्षुधा की पूर्ण तृप्ति न हो किन्तु आंशिक तृप्ति होती हो । उदा.-सेके हुए धान्य, चना, खजूर, नारियल, अंगूर आदि ।

ई) स्वादिम :– जिन वस्तुओं को खाने से क्षुधातृप्ति न हो, किन्तु कुछ स्वाद मिलता हो, जैसे-सूंठ, जीरा आदि ।

अनशन में चारों प्रकार के आहार का त्याग होता है । काल की अपेक्षा इसके दो भेद हैं-

(1) इत्वर अनशन :– जिसमें मर्यादित समय के लिए चारों आहारों का त्याग किया जाता है । जैसे-उपवास, आयम्बिल, एकासना इत्यादि ।

(2) यावज्जीविक अनशन :– जिसमें चारों प्रकार के आहार का जीवनपर्यंत सर्वथा त्याग किया जाता है, उसे यावज्जीविक अनशन कहते हैं ।

2) ऊणोदरी :– भूख से कुछ (कवल) कम भोजन करना ऊणोदरी तप कहलाता है । सामान्यतः पुरूष का भोजन बत्तीस कवल तथा स्त्री का भोजन अट्ठाईस कवल का होता है । इस प्रकार क्षुधा से कम भोजन करने को ऊणोदरी कहते हैं ।

3) वृत्तिसंक्षेप :– भोजन के पदार्थों की संख्या कम करना, वृत्तिसंक्षेप तप कहलाता है । जैसे-भोजन के आठ पदार्थ हों, उसमें से पाँच पदार्थ ही खाना ।

4) रसत्याग :– रस अर्थात् विगई । इसके छह प्रकार हैं-1) दूध 2) दही 3) घी 4) तैल 5) गुड़ तथा 6) पक्वान्न । इन छह में से एक, दो या तीन आदि का त्याग करना ।

5) कायक्लेश :– जिस तप में इच्छापूर्वक काया को कष्ट दिया जाता है, उसे कायक्लेश कहते हैं । जैसे-केशलुंचन, पादविहार, इत्यादि ।

6) संलीनता :– जिस तप में अंग-उपांग का संकोच किया जाता है, उसे संलीनता तप कहते हैं । जैसे-एक आसन पर बैठकर जाप आदि करना श्मशान भूमि में कायोत्सर्ग करना इत्यादि ।

इस प्रकार बाह्य तप के छह भेद हैं । इन तपों का आचरण करने से आत्मा, मन व देह की शुद्धि होती है । अभ्यन्तर तप के छह भेद हैं–

(1) प्रायश्चित्त :– मुलगुण अथवा उत्तरगुण में, महाव्रत अथवा अणुव्रत के पालन में कोई जानबूझकर अथवा अनजाने में भूल हो जाय तो उसे गुरु के समक्ष प्रगट कर उस पाप की शुद्धि करने को प्रायश्चित्त कहते हैं ।

प्रायश्चित्त अर्थात् जिससे बहुलतया चित्त की शुद्धि होती है । इस प्रायश्चित्त के दस प्रकार हैं-

1. आलोचना :– भूल से हुए पापों को गुरू के समक्ष प्रकट करना, आलोचना कहलाता है ।

2. प्रतिक्रमण :– भूल से हुए पापों को पुनः नहीं करने के उद्देश्य से **'मिच्छामि दुक्कड़ं'** देना प्रतिक्रमण कहलाता है ।

3. मिश्र :– गुरू के समक्ष पाप को प्रगट करना और उसके लिए- 'मिच्छामि दुक्कड़ं' देना मिश्र प्रायश्चित्त कहलाता है ।

4. विवेक :– अशुद्ध अन्न-पानी का त्याग करना विवेक प्रायश्चित्त कहलाता है ।

5. कायोत्सर्ग :– काया के व्यापार का त्याग करना कायोत्सर्ग कहलाता है ।

6. तप :– भूल व पाप के अनुसार गुरू-प्रदत्त दण्ड़ (उपवासादि) तप प्रायश्चित्त कहलाता है ।

7. छेद–महाव्रतों का घात होने से दीक्षा-पर्याय का छेद करना, छेद प्रायश्चित्त है ।

8. मूल :– महा अपराध होने पर मूल से पुनः दीक्षा देना, मूल प्रायश्चित्त है ।

9. अनवस्थाप्य :– जब तक अपराध का प्रायश्चित्त न करे तब तक महाव्रत प्रदान नहीं करना ।

10. पारांचित–शासन के महाघातक महापाप करने पर उसके दण्ड के लिए बारह वर्ष तक गच्छ बाहर रहकर महाशासन प्रभावना करने के बाद पुनः दीक्षा प्रदान करना पारांचित प्रायश्चित्त है ।

(2) विनय :– विनय अर्थात् गुणवान व्यक्ति का बहुमान-आदि करना । इसके निम्न प्रकार हैं-

1) ज्ञान विनय :– ज्ञान तथा ज्ञानी की बाह्य सेवा करना, अन्तर से प्रीति व बहुमान रखना । इसके 5 भेद हैं । 1) भक्ति 2) बहुमान 3) भावना 4) विधिग्रहण और 5) अभ्यास ।

2) शुश्रूषा विनय :– देव-गुरु का सत्कार, सम्मान, अभ्युत्थान, आसन-परिग्रहण, आसनदान, कृतिकर्म, अंजलिग्रहण, सन्मुखागमन, पश्चाद् गमन तथा पर्युपासना आदि करना ।

3) अनाशातना विनय :– तीर्थंकर, धर्म, आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, कुल, गण, सांभोगिक, साधर्मिक, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान इत्यादि की आशातना नहीं करना तथा उनकी भक्ति और बहुमान करना ।

4) चारित्र विनय :– चारित्र की श्रद्धा करना, उसकी स्पर्शना करना, उसके प्रति आदर रखना, पालन करना तथा चारित्र की प्ररूपणा करना इत्यादि ।

5-6-7) योग विनय :– मन, वचन और काया को आचार्य आदि की भक्ति में प्रवृत्त करना ।

8) उपचार विनय :– गुरू आदि के पास रहना, उनकी इच्छा का अनुसरण करना । गुरू के लिए आहार लाना, उन्हें आहार प्रदान करना, उनकी औषधि आदि से परिचर्या करना, तथा गुरू के कार्य में तत्पर रहना, इत्यादि ।

(3) वैयावच्च अर्थात् सेवा शुश्रूषादि । 1. आचार्य. 2. उपाध्याय 3. तपस्वी 4. स्थविर. 5. ग्लान 6. नूतन दीक्षित 7. साधर्मिक 8. कुल 9. गण और 10. संघ की सेवा-भक्ति करना ।

(4) स्वाध्याय-इसके 5 भेद हैं–

1) वाचना :– किसी साधु आदि को पढ़ाना या स्वयं पढ़ना ।

2) पृच्छना :– अध्ययन में जो शंकास्पद स्थान हों, उनका गुरू से निराकरण करना ।

3) परावर्तना :– याद किए पाठ का पुनरावर्तन करना ।

4) अनुप्रेक्षा :– धारण किए अर्थ का चिन्तन करना ।

5) धर्मकथा :– धर्म का उपदेश देना ।

(5) ध्यान :– ध्यान अर्थात् मन को एकाग्र करना । ध्यान के चार प्रकार हैं । इनमें दो शुभ हैं और दो अशुभ हैं ।

1. दो अशुभ ध्यान

अ) रौद्रध्यान :– अत्यन्त द्वेष से इस ध्यान की उत्पत्ति होती है और चित्त तीव्र आकुल व्याकुल बन जाता है । इसके चार भेद हैं-

1) हिंसानुबन्धी :– प्राणियों की हिंसा का क्रूरतम विचार करना । हिंसा के अध्यवसाय में लीन रहना ।

2) मृषानुबन्धी :– झूठ बोलना तथा दूसरे को ठगने का निरन्तर विचार करना ।

3) स्तेयानुबन्धी :– चोरी के विचारों का ही निरन्तर ध्यान करना ।

4) संरक्षणानुबन्धी :– धन आदि की रक्षा के लिए निरन्तर चिन्तन करना ।

(आ) आर्त्तध्यान :– स्व-पीड़ाजन्य ध्यान आर्त्तध्यान कहलाता है । इसके चार भेद हैं-

1) इष्ट वियोग :– प्रिय स्त्री, पुत्र आदि के वियोग से शोक-ग्लानि आदि करना ।

2) अनिष्ट संयोग :– प्रतिकूल व अनिष्ट वस्तुओं का सम्पर्क होने पर मन में शोक करना ।

3) रोग चिन्ता :– शरीर में रोग आदि होने पर उसके निवारण की सतत चिन्ता करना ।

4) निदान :– धर्म के फलस्वरूप संसार के सुख आदि पाने का संकल्प करना ।

उपर्युक्त आर्त्त और रौद्रध्यान अशुभ हैं । इनके ध्यान से आत्मा की दुर्गति होती है ।

2. दो शुभ ध्यान :–

इ) धर्मध्यान–इसके चार प्रकार हैं-

1) आज्ञाविचय :– परमात्मा की आज्ञा तथा उसके माहात्म्य का चिन्तन करना ।

2) अपायविचय :– राग-द्वेष से होने वाले अनिष्टों का चिन्तन करना ।

3) विपाकविचय :– कर्म के शुभ-अशुभ फल का चिन्तन करना ।

4) संस्थानविचय :– चौदह राजलोक स्वरुप जगत के स्वरूप का चिन्तन करना ।

ई) शुक्लध्यान :– इसके भी चार भेद हैं-

1) पृथक्त्व वितर्क सविचार :– श्रुतज्ञान के आलम्बन से जड़ तथा चेतन के विभिन्न पर्यायों का चिन्तन करना ।

2) एकत्व वितर्क निर्विचार :– श्रुतज्ञान के आलम्बन द्वारा आत्मादि द्रव्य के एक ही पर्याय का चिन्तन करना, इस ध्यान की पूर्णाहुति के साथ ही आत्मा घातिकर्मों का क्षय कर केवलज्ञान प्राप्त करती है ।

3) सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाती :– मन, वचन तथा काया की सर्वप्रवृत्तियों का निरोध करना ।

4) व्युपरतक्रिया अनिवृत्ति :– आत्मप्रदेशों के सर्वथा निष्कम्प होने पर यह ध्यान होता है, इस ध्यान का काल मात्र 5 ह्रस्वाक्षर (अ, इ, उ, ऋ और ऌ) के उच्चारण जितना है ।

(6) कायोत्सर्ग :– कायोत्सर्ग अर्थात् काया के व्यापार का त्याग करना । अनादिकाल से स्वकाया पर रही मूर्च्छा के त्याग का अभ्यास कायोत्सर्ग के द्वारा किया जाता है । कायोत्सर्ग में 'नमस्कार-महामंत्र' आदि का ध्यान भी किया जाता है ।

कर्म बंध के चार प्रकार

बारसविह तवो निज्जरा य बंधो चउविगप्पो अ ।
पयइ ट्ठिइ अणुभाग-पएस-भेएहिं नायव्वो ।।36।।

शब्दार्थ :– बारह प्रकार, **तवो=**तप, **निज्जरा=**निर्जरा, **य=**और, **बंधो=**बंध, **चउविगप्पो=**चार विकल्पवाला, **पयइ=**प्रकृति, **ट्ठिइ=**स्थिति, **अणुभाग=**रस, **पएस=**प्रदेश, **भेएहिं=**भेदों द्वारा, **नायव्वो=**जानना चाहिये ।

भावार्थ : बारह प्रकार का तप निर्जरा कहलाता है । बंध के चार विकल्प है । यह बंध प्रकृति स्थिति रस और प्रदेश के भेद से समझना चाहिये ।

8

बंध तत्त्व

पयइ सहावो वुत्तो, ठिई कालावहारणं ।
अणुभागो रसो णेओ, पएसो दलसंचओ ।।37।।

शब्दार्थ : पयइ=प्रकृति **सहावो=**स्वभाव **बुत्तो**=कहा है **ठिई=**स्थिति **कालावहारणं=**काल का निश्चय **अणुभागो**=अनुभाग **रसो=**रस **णेओ**=जानना चाहिए **पएसो=**प्रदेश **दलसंचओ=**दलों का समूह ।

भावार्थ : प्रकृति का अर्थ स्वभाव है, स्थिति का अर्थ काल द्वारा निश्चित स्थिति है, अनुभाग का अर्थ रस है और प्रदेश का अर्थ कर्मदलिकों का संचय है ।।37।।

विवेचन :– मिथ्यात्व, अविरति, राग-द्वेष के अध्यवसायों द्वारा आत्मा जिन कार्मण वर्गणाओं को ग्रहण करती है, उन कार्मण वर्गणाओं के आत्मा के साथ एकमेक हो जाने की प्रक्रिया को ही 'बंध' कहते हैं ।

जिस प्रकार लोहे के गोले को तपाने से वह गोला लाल बन जाता है, अग्नि के परमाणु लोहे के गोले के साथ एकस्वरूप बन जाते हैं, उसी प्रकार बंध की प्रक्रिया द्वारा आत्मा और कर्म परमाणु एकाकार बन जाते हैं ।

कर्मबंध के फलस्वरूप ही आत्मा इस चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करती है और उन कर्मों के उदय से नाना प्रकार के कष्ट व यातनाएँ सहन करती है ।

कर्मबंध के चार प्रकार–

मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग ये कर्मबंध के मुख्य चार हेतु हैं । इन चारों के माध्यम से आत्मा में कार्मण वर्गणा का प्रवेश होता है । आत्मा के साथ एकमेक बनी उसी कार्मण वर्गणा को हम कर्म कहते हैं ।

कर्मबंध के साथ ही निम्न चार प्रक्रियाएँ हो जाती हैं–

1. प्रकृति बंध The Nature of the Karma :
2. स्थिति बंध Period of the Karma :
3. रस बंध Power of the Karma :
4. प्रदेश बंध Quantity of the Karma :

सूंठ की गोली (छोटा लड्डू) के दृष्टांत से उपर्युक्त चार बातों का स्पष्टीकरण हो सकता है ।

1. सूंठ के लड्डू में वायु के नाश का स्वभाव रहा हुआ है ।

2. वह लड्डू 15-20 दिन तक अच्छी हालत में रह सकता है ।

3. उस लड्डू में घी-शक्कर की तरतमता के अनुसार मधुर, तिक्त आदि रस रहा हुआ है ।

4. वह लड्डू 20-50 ग्राम के प्रमाण वाला है ।

उपर्युक्त दृष्टांत के अनुसार ही आत्मा जब मिथ्यात्व आदि के कारण कर्म का बंध करती है तो उसके साथ ही उसके स्वभाव आदि का भी निश्चय हो जाता है, उसी को प्रकृति आदि बंध कहते हैं । यद्यपि कर्म का बंध तो एक ही है, परंतु उनमें होने वाली प्रक्रियाओं के अनुसार ये औपचारिक भेद किए गए हैं-

1. प्रकृति बंध :– मन, वचन और काया के शुभ अशुभ योग और अध्यवसाय के अनुसार बँधे हुए कर्म की प्रकृति का तत्क्षण निश्चय होता है ।

जिस प्रकार सभी प्रकार का खुराक तो मुँह से लेते हैं, परंतु वही खुराक उदर में जाने के बाद उसमें से रक्त, चर्बी, हड्डी, मज्जा, मल-मूत्र, पसीना आदि बनता है । उसी प्रकार आत्मा जिस समय कर्म का बंध करती है, उसके साथ ही उस कर्म में फल देने का स्वभाव भी निर्धारित हो जाता है ।

• जैसे-किसी व्यक्ति ने ज्ञानी गुरूदेव का अपमान किया...तो उस समय बंधा हुआ कर्म मुख्यतया ज्ञानावरणीय होगा, जिसके फलस्वरूप आत्मा के ज्ञान गुण पर आवरण पैदा होगा ।

• एक व्यक्ति ने किसी निरपराध व्यक्ति को निष्कारण मार ड़ाला । उस समय जिस कर्म का बंध होगा वह अशाता वेदनीय कहलाएगा ।

यदि किसी ने गुस्सा किया, अभिमान किया तो उसे मोहनीय कर्म का बंध होगा । उसी प्रकार दान देने से, परमात्मा की पूजा-भक्ति करने से, दीन-दुःखी को मदद करने से, शील पालन आदि करने से पुण्य कर्म का बंध होगा, इस कर्म के उदय से आत्मा को बाह्य सुख-शांति और समृद्धि की प्राप्ति होगी ।

2. स्थिति बंध :– कर्म का बंध होने के साथ ही वह कर्म आत्मा के साथ कितने काल तक लगा रहेगा, इसका भी निश्चय हो जाता है, उसे स्थिति बंध कहते हैं । कर्म की स्थिति भी दो प्रकार की होती है–

1. जघन्य स्थिति और 2. उत्कृष्ट स्थिति ।

कर्मों की जघन्य स्थिति दो समय की है और उत्कृष्ट स्थिति 70 कोटा कोटि सागरोपम की है । अर्थात् उतने समय तक वह बंधा हुआ कर्म आत्मा के साथ लगा रहेगा, उसके बाद वह कर्म आत्मा से अलग हो जाएगा ।

तीव्र शुभ-अशुभ परिणाम से लंबी स्थिति वाले कर्म का बंध होता है और मंद परिणाम से अल्प स्थिति वाले कर्म का बंध होता है ।

संक्लेशपूर्ण अध्यवसायों से कर्म की लंबी स्थिति का बंध होता है और संक्लेश की मंदता होने पर अल्प स्थिति का बंध होता है ।

कषाय से होने वाले अशुभ अध्यवसाय को संक्लेश कहते हैं ।

कर्मों की स्थिति बंध और रस बंध की आधारशिला ये अध्यवसाय ही हैं ।

जिस प्रकार खेत में बीज बोने के साथ ही फल की उत्पत्ति नहीं हो जाती है, कुछ समय लगता है, उसी प्रकार कर्मबंध के साथ ही वह कर्म उदय में नहीं आ जाता है, बल्कि उसके आबाधाकाल के बीतने के बाद ही वह कर्म शुभ अथवा अशुभ फल प्रदान करता है ।

जैसे-मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट 70 कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति का बंध किया हो तो भी वह कर्म 7000 वर्ष के आबाधाकाल के बीतने के बाद ही अपना फल प्रदान करेगा ।

कर्म के बंध की जितनी उत्कृष्ट स्थिति होगी, उतना ही उस कर्म के उदय का अबाधाकाल अधिक होगा । अबाधाकाल व्यतीत हुए बिना कोई भी कर्म उदय में नहीं आता है ।

3. रस बंध :– जीव द्वारा ग्रहण किए कर्म पुद्गलों में अनुग्रह व उपघात करने की शक्ति रसबंध के द्वारा ही होती है । कषायों की तीव्रता होने पर पाप प्रकृति में तीव्र रस पड़ता है और पुण्य प्रकृति का मंद रस पड़ता है । अध्यवसायों के अनुसार ज्ञान-दर्शन आदि आत्मगुणों को हीन-अधिक प्रमाण में दबाने की कर्म परमाणुओं में उत्पन्न होने वाली शक्ति को रस बंध कहते हैं ।

इस रसबंध के मुख्यतया चार भेद बतलाए हैं-

1. मंद 2. तीव्र 3. तीव्रतर और 4. तीव्रतम ।

इन्हें शास्त्रीय परिभाषा के अनुसार–

1. एक स्थानिक रस 2. द्वि स्थानिक रस. 3. त्रि स्थानिक रस और 4. चतुः स्थानिक रस भी कहते हैं ।

स्थिति बंध और रस बंध का आधार कषायों की परिणति होने से अशुभ प्रकृति का चतुःस्थानिक रस का बंध होता है और शुभ-प्रकृति का इससे विपरीत बंध होता है ।

4. प्रदेश बंध :– प्रति समय जीवात्मा के द्वारा कार्मण वर्गणा के जितने दलिकों (परमाणुओं) को ग्रहण किया जाता है, उस दलिक संख्या के नियत प्रमाण को प्रदेश बंध कहते हैं । प्रति समय आत्मा कार्मण वर्गणा के दलिकों को न्यूनाधिक संख्या में ग्रहण करती है । प्रदेशबंध का मुख्य आधार योग की प्रवृत्ति है ।

अन्य अपेक्षा से कर्मबंध के चार प्रकार–

1. स्पृष्ट बंध :– आत्मा जब कषाय से युक्त होती है, तब कर्म पुद्गलों का आत्म प्रदेशों के निकट एक स्थान पर इकट्ठा होना, कर्म की स्पृष्ट अवस्था है । जैसे चुंबक से लोहे की सुइयों का चिपकना । इन चिपकी हुई लोहे की सूइयों को अलग करने के लिए कोई विशेष पुरुषार्थ करना नहीं पडता है । कोई भी व्यक्ति आसानी से इन्हे दूर कर सकता है । वैसे ही स्पृष्ट बंध कर्म पुद्गलों को **मिच्छा मि दुक्कडम्** आदि पश्चात्ताप से दूर किया जा सकता है । जैसे-प्रसन्नचन्द्र राजर्षि ।

2. बद्ध बंध :– कषाय युक्त आत्मा के साथ में कुछ दृढता से लगे हुए कर्म पुद्गलों का बंध होना, बद्ध बंध है । जैसे एक धागे में सूइयों को पिरोकर रखना । धागे के कारण ये सूइयाँ इधर-उधर बिखरती नहीं है । इन्हे अलग करने के लिए धागा तोडना पडता है । वैसे ही बद्ध बंध कर्म पुद्गलों को आलोचन, प्रतिक्रमण आदि प्रायश्चित्त से दूर किया जा सकता है । जैसे अइमुत्ता मुनि ।

3. निधत्त बंध :– तीव्र कषाय युक्त आत्मा के साथ गाढ रुप से लगे हुए कर्म पुद्गलों का बंध होना, निधत्त बंध है । जैसे सूइयों को गर्म कर परस्पर चिपका देना । इन सूइयों को अलग करना बहुत कठिन है । फिर भी प्रयत्न करने पर इन्हें अलग कर सकते है । वैसे ही निधत्त बंध कर्म पुद्गलों को दूर करना खुब कठिन है । फिर भी तप-साधना के माध्यम से इन्हे भी दूर किया जा सकता है । जैसे-अर्जुनमाली ।

4. निकाचित बंध :– अति तीव्र कषाय युक्त आत्मा के साथ में प्रगाढ रुप से लगे हुए कर्म पुद्गलों का बंध होना, निकाचित बंध है । जैसे सूइयों को एकत्रित करके भट्ठी में तपाकर, उसे हथोडे से कूट-कूट कर एक गोला

बना देना । इनमें रही सूइयों को अलग करना असंभव है । वैसे ही निकाचित कर्मों का फल अवश्य भुगतना पडता है । जैसे-उत्सूत्र प्ररुपणा से मरीचि की संसार वृद्धि, तीर्थंकर की आशातना से गोशाला का अनंत संसार परिभ्रमण, श्रेणिक महाराजा का नरक आयुष्य ।

उपरोक्त चार प्रकार के कर्म बंधनों में से स्पष्ट, बद्ध, निधत्त बंधों का उद्‌वर्तन, अपवर्तन, संक्रमण आदि हो सकता है । परंतु निकाचित कर्म बंध का उद्‌वर्तन, अपवर्तन और संक्रमण नहीं हो सकता है ।

कर्मो का स्वभाव

पड पडिहार सि मज्ज, हड-चित्त-कुलाल भंडगारीणं ।
जह एएसिं भावा, कम्माण वि जाण तह भावा ।।38।।

शब्दार्थ :– पड=वस्त्र **पडिहार=**द्वारपाल **असि=**तलवार **मज्ज=**मद्य-पान **चित्त=**चित्रकार **कुलाल=**कुंभार **भंडगारीणं=**भंड़ारी **जह=**जिस प्रकार **एएसिं=**इनका **भावा=**स्वभाव है **कम्माण=**कर्मोंका **वि=**भी **जाण=**जानो **तह=**उसी प्रकार **भावा=**स्वभाव ।

भावार्थ :– कपड़े की पट्टी, द्वारपाल, तलवार, शराब, बेड़ी, चित्र-कार, कुंभकार व भंड़ारी का जो स्वभाव है, वैसा ही स्वभाव इन कर्मों का क्रमशः समझना चाहिए ।

आत्मा के साथ लगे हुए कर्मों में मुख्यतया आठ प्रकार के स्वभाव पैदा होते हैं, इसी कारण कर्म की मुख्य प्रकृतियाँ आठ कहलाती हैं ।

1. ज्ञानावरणीय कर्म :– इस कर्म का स्वभाव आँख पर लगी पट्टी के समान है, जिस प्रकार आँख पर मोटे कपड़े की पट्टी बंधी हुई हो तो बिल्कुल दिखाई नहीं देता है, परन्तु उसी पट्टी में छेद हो जाय अथवा महीन कपड़े की पट्टी हो तो जैसे कुछ-कुछ दिखाई पड़ता है, उसी प्रकार यह कर्म आत्मा के ज्ञान गुण पर आवरण लाता है ।

जिस प्रकार सूर्य के ऊपर बादल आ जाने से सूर्य का प्रकाश छिप जाता है, परन्तु नष्ट तो नहीं होता है, बादल हटते ही सूर्य का तेज पुनः प्रगट हो जाता है, उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म के उदय से आत्मा के ज्ञान गुण पर आवरण आ जाता है, ज्ञानावरणीय कर्म में आत्मा के ज्ञान गुण को

आच्छादित करने की ताकत रही हुई है, परन्तु ज्ञान गुण को नष्ट करने की ताकत नहीं है ।

2. दर्शनावरणीय कर्म :– इस कर्म का स्वभाव द्वारपाल के समान है । कोई व्यक्ति राजा से मिलना चाहता हो परन्तु द्वारपाल यदि उसे रोक ले तो वह राजा से मिल नहीं पाता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव, पदार्थ में रहे सामान्य धर्म को जान नहीं पाता है ।

3. वेदनीय कर्म :– इस कर्म का स्वभाव मधु से लिप्त तलवार की भाँति है । मधुलिप्त तलवार को चाटने से मधुर रस के स्वाद का अनुभव होता है, परन्तु तलवार से जीभ कट जाय तो पीड़ा का पार नहीं रहता है, उसी प्रकार जिस कर्म के उदय से जीव को बाह्य सुख-दुःख का अनुभव होता है, वह वेदनीय कर्म है । आत्मा में अव्याबाध सुख का गुण रहा हुआ है, इस कर्म के उदय से आत्मा के उस गुण पर आवरण आ जाता है और आत्मा बाह्य सुख-दुःख का अनुभव करती है ।

4. मोहनीय कर्म :– इस कर्म का स्वभाव मदिरा के समान है, जिस प्रकार मदिरापान से व्यक्ति अपने हित-अहित, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य आदि को जानने में असमर्थ हो जाता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव सत्य-असत्य, हित-अहित को समझने में असमर्थ बन जाता है । इस कर्म के उदय से आत्मा में रहे क्षायिक सम्यग्दर्शन और वीतरागता गुण पर आवरण आ जाता है और आत्मा मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष के चंगुल में फँस जाती है ।

5. आयुष्य कर्म :– इस कर्म का स्वभाव बेड़ी के समान है । जिस प्रकार चोरी आदि के अपराध के अनुसार न्यायाधीश कानून के अनुसार अलग-अलग सजा करता है और उस सजा के अनुसार कोई कैदी एक वर्ष के लिए, कोई कैदी छह मास के लिए कैद में रहता है, उसी प्रकार इस कर्म के उदय से जीव को मनुष्य, देव आदि के देह में अमुक काल के लिए कैदी की तरह रहना पड़ता है ।

आत्मा में अक्षय स्थिति नाम का गुण रहा हुआ है, आयुष्य कर्म आत्मा के इस गुण का घात करता है, परिणामस्वरूप आत्मा को नए-नए जन्म, नए-नए देह धारण करने पड़ते हैं ।

6. नाम कर्म : इस कर्म का स्वभाव चित्रकार की तरह है, जिस प्रकार चित्रकार अपने पास रहे विविध रंगों व ब्रश से विविध चित्र तैयार करता है,

उसी प्रकार यह नाम कर्म, संसारी जीवों को विविध रूप, आकार, शरीर आदि प्रदान करता है ।

आत्मा का जो अरूपी गुण है, उस गुण पर आवरण लाने का काम यह नामकर्म करता है । आत्मा का मूलभूत स्वभाव अरूपी होने पर भी इस कर्म के उदय के कारण आत्मा विविध रूप धारण करती है ।

7. गोत्र कर्म :– इस कर्म का स्वभाव कुंभकार की तरह है । कुंभकार मिट्टी के विविध प्रकार के घड़े बनाता है, उनमें से कुछ घड़े पूजादि मांगलिक कार्य में काम लगते हैं तो कुछ घड़ों में शराब आदि भी भरी जाती है । उसी प्रकार यह कर्म आत्मा को ऊँचा व नीचा स्थान प्रदान करता है ।

आत्मा का मूलभूत स्वभाव अगुरूलघु है, परन्तु इस कर्म के उदय के कारण आत्मा ऊँची-नीची स्थिति प्राप्त करती है ।

8. अंतराय कर्म :– इस कर्म का स्वभाव खजांची की तरह है । जिस प्रकार राजा उदार हो परंतु खजांची प्रतिकूल हो तो राजा द्वारा ईनाम की घोषणा हो जाने पर भी व्यक्ति ईनाम प्राप्त नहीं कर पाता है । इसी प्रकार यह अंतराय कर्म धनादि की प्राप्ति में अंतराय-विघ्न पैदा करता है ।

आत्मा में अनंत शक्ति रही हुई है, परन्तु यह कर्म उस शक्ति पर आवरण ला देता है ।

कर्मों की उत्तर प्रकृतियाँ

इह नाण-दंसणावरण, वेय-मोहाउ-नाम-गोआणि ।
विग्घं च पण नव दु, अट्ठवीस चउतिसय दु-पणविहं ।।39।।

शब्दार्थ :– इह=यहाँ **नाणदंसणावरण=**ज्ञानावरण, दर्शनावरण, **वेय=**वेदनीय **मोहाउ=**मोहनीय, आयु **नाम=**नाम **गोआणि=**गोत्र कर्म **विग्घं=**अंतराय **च=**और **पण=**पाँच **नव=**नौ **दु=**दो **अट्ठवीस=**अट्ठाइस **चउ=**चार **तिसय=**एकसौ तीन **दु=**दो **पणविहं=**पाँच प्रकार ।

भावार्थ :– ज्ञानावरणीय कर्म के पाँच, दर्शनावरणीय कर्म के नौ, वेदनीय के दो, मोहनीय के अट्ठाईस, आयु के चार, नाम के एकसौ तीन, गोत्र के दो और अंतराय कर्म के पाँच भेद हैं ।

विवेचन :– बंध की अपेक्षा आठ कर्मों की 120 उत्तर प्रकृतियाँ हैं, उदय

की अपेक्षा आठ कर्मों की 122 उत्तर प्रकृतियाँ हैं, जबकि सत्ता की अपेक्षा आठ कर्मों की 158 उत्तर प्रकृतियाँ हैं ।

प्रस्तुत गाथा में आठ कर्मों की 158 उत्तर प्रकृतियों की संख्या का निर्देश किया गया है । वे 158 प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं–

1) ज्ञानावरणीय कर्म के 5 उत्तर भेद–

1) मतिज्ञानावरणीय कर्म 2) श्रुतज्ञानावरणीय कर्म
3) अवधिज्ञानावरणीय कर्म 4) मनःपर्यवज्ञानावरणीय कर्म
5) केवलज्ञानावरणीय कर्म

2) दर्शनावरणीय की 9 उत्तर प्रकृतियाँ–

1. चक्षु दर्शनावरण 2. अचक्षुदर्शनावरण 3. अवधिदर्शनावरण 4 केवल-दर्शनावरण 5. निद्रा 6. निद्रा निद्रा 7. प्रचला 8. प्रचला प्रचला 9. थीणद्धि ।

3) वेदनीय की 2 उत्तर प्रकृतियाँ–

1. शाता वेदनीय 2. अशातावेदनीय ।

4) मोहनीय की 28 उत्तर प्रकृतियाँ–

1. समकित मोहनीय, 2. मिश्र मोहनीय, 3. मिथ्यात्व मोहनीय ।

4. अनंतानुबंधी क्रोध, 5. अप्रत्याख्यानीयक्रोध, 6. प्रत्याख्यानीय क्रोध, 7. संज्वलन क्रोध ।

8. अनंतानुबंधी मान, 9. अप्रत्याख्यानीय मान, 10. प्रत्याख्यानीय मान, 11. संज्वलन मान ।

12. अनंतानुबंधी माया, 13. अप्रत्याख्यानीय माया, 14. प्रत्याख्यानीय माया, 15. संज्वलन माया ।

16. अनंतानुबंधी लोभ, 17. अप्रत्याख्यानीय लोभ, 18. प्रत्याख्यानीय लोभ, 19. संज्वलन लोभ ।

20. हास्य, 21. रति, 22. अरति, 23. भय, 24. शोक, 25. दुगुंछा, 26. स्त्रीवेद, 27. पुरूषवेद, 28. नपुंसक वेद ।

5) आयुष्य की 4 उत्तर प्रकृतियाँ–

1. देव आयुष्य, 2. मनुष्य आयुष्य, 3. तिर्यंच आयुष्य, 4. नरक आयुष्य ।

6) नाम कर्म की 103 उत्तर प्रकृतियाँ–

1 से 4, 1. देवगतिनामकर्म, 2. मनुष्यगति नामकर्म, 3. तिर्यंचगति नाम कर्म, 4. नरक गति नाम कर्म ।

5 से 9 (जातिनाम कर्म) 5. एकेन्द्रिय जाति नाम कर्म, 6. द्वीन्द्रिय जाति नाम कर्म, 7. त्रीन्द्रिय जाति नाम कर्म, 8. चतुरिन्द्रिय जाति नाम कर्म, 9. पंचेन्द्रिय जाति नाम कर्म ।

10 से 14 (शरीर नाम कर्म) 10. औदारिक शरीर नामकर्म, 11. वैक्रिय शरीर नामकर्म, 12. आहारक शरीर नामकर्म, 13. तैजस शरीर नामकर्म, 14. कार्मण शरीर नामकर्म ।

15 से 17 (अंगोपांग नाम कर्म) 15. औदारिक अंगोपांग नाम कर्म, 16. वैक्रिय अंगोपांग नामकर्म, 17. आहारक अंगोपांग नाम कर्म ।

18 से 32 (बंधन नाम कर्म)

18) औदारिक औदारिक बंधन नाम कर्म, 19) औदारिक-तैजस बंधन नाम कर्म, 20) औदारिक कार्मण बंधन नाम कर्म, 21) औदारिक तैजस कार्मण बंधन नाम कर्म, 22) वैक्रिय वैक्रिय बंधन नाम कर्म, 23) वैक्रिय तैजस बंधन नाम कर्म, 24) वैक्रिय कार्मण बंधन नाम कर्म, 25) वैक्रिय तैजस कार्मण बंधन नाम कर्म, 26) आहारक आहारक बंधन नाम कर्म, 27) आहारक तैजस बंधन नाम कर्म, 28) आहारक कार्मण बंधन नाम कर्म, 29) आहारक तैजस कार्मण बंधन नाम कर्म, 30) तैजस तैजस बंधन नाम कर्म, 31) तैजस कार्मण बंधन नाम कर्म, 32) कार्मण कार्मण बंधन नाम कर्म ।

33 से 37 संघातन नाम कर्म 33) औदारिक संघातन नाम कर्म, 34) वैक्रिय संघातन नाम कर्म, 35) आहारक संघातन नाम कर्म, 36) तैजस संघातन नाम कर्म, 37) कार्मण संघातन नाम कर्म ।

38) संघयण नाम कर्म 38) वज्रऋषभनाराच संघयण नाम कर्म, 39) ऋषभनाराच-संघयण नाम कर्म, 40) नाराच संघयण नाम कर्म, 41) अर्ध नाराच संघयण नाम कर्म, 42) कीलिका संघयण नाम कर्म, 43) सेवार्त संघयण नाम कर्म ।

44 से 49) संस्थान नाम कर्म 44) समचतुरस्त्र संस्थान नाम कर्म, 45) न्यग्रोध परिमंड़ल संस्थान नाम कर्म, 46) सादि संस्थान नाम कर्म, 47) कुब्ज संस्थान नाम कर्म, 48) वामन संस्थान नाम कर्म, 49) हुंड़क संस्थान नाम कर्म ।

50 से 54) से वर्णनाम कर्म 50) कृष्णवर्ण नामकर्म, 51) नीलवर्ण नामकर्म, 52) रक्तवर्ण नामकर्म, 53) पीतवर्ण नामकर्म, 54) श्वेतवर्ण नामकर्म ।

55 से 56) गंध नाम कर्म 55) सुरभि गंध नाम कर्म, 56) दुरभि गंध नाम कर्म ।

57 से 61) रसनाम कर्म 57) तिक्तरस नाम कर्म, 58) कटुरस नाम कर्म, 59) कषाय नाम कर्म, 60) अम्ल नाम कर्म, 61) मधुर नाम कर्म ।

62 से 69) स्पर्शनाम कर्म 62) गुरू स्पर्श नाम कर्म, 63) लघु स्पर्श नाम कर्म, 64) मृदु स्पर्श नाम कर्म, 65) कर्कश स्पर्श नाम कर्म, 66) शीत स्पर्श नाम कर्म, 67) उष्ण स्पर्श नाम कर्म, 68) स्निग्ध स्पर्श नाम कर्म, 69) रूक्ष स्पर्श नाम कर्म ।

70 से 73) आनुपूर्वी नाम कर्म 70) देवानुपूर्वी नाम कर्म, 71) मनुष्यानुपूर्वी नाम कर्म, 72) तिर्यंचानुपूर्वी नाम-कर्म, 73) नरकानुपूर्वी नाम कर्म, 74) शुभ विहायोगति, 75) अशुभ विहायोगति, 76) अगुरूलघु नाम कर्म, 77) उपघात नाम कर्म, 78) पराघात नाम कर्म, 79) आतप नाम कर्म, 80) उद्योत नाम कर्म, 81) श्वासोच्छ्वास नाम कर्म, 82) निर्माण नाम कर्म, 83) तीर्थंकर नाम कर्म, 84 से 93 त्रसदशक, 84) त्रस नाम कर्म, 85) बादर नाम कर्म, 86) पर्याप्त नाम कर्म, 87) प्रत्येक नाम कर्म, 88) स्थिर नाम कर्म, 89) शुभ नाम कर्म, 90) सुभग नाम कर्म, 91) सुस्वर नाम कर्म, 92) आदेय नाम कर्म, 93) यश नाम कर्म ।

94 से 103) स्थावर दशक 94) स्थावर नाम कर्म, 95) सूक्ष्म नाम कर्म, 96) अपर्याप्त नाम कर्म, 97) साधारण नाम कर्म, 98) अस्थिर नाम कर्म, 99) अशुभ नाम कर्म, 100) दुर्भग नाम कर्म, 101) दुःस्वर नाम कर्म, 102) अनादेय नाम कर्म, 103) अपयश नाम कर्म ।

गोत्र कर्म की 2 प्रकृतियाँ–

1. उच्चगोत्र 2. नीच गोत्र

अंतराय कर्म की 5 प्रकृतियाँ

1. दानांतराय, 2. लाभांतराय, 3. भोगांतराय, 4. उपभोगांतराय, 5. वीर्यान्तराय ।

कर्मों की स्थिति

नाणे अ दंसणावरणे, वेअणिए चेव अंतराए अ ।
तीसं कोड़ाकोड़ी, अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ।।40।।

सत्तरि कोड़ाकोड़ी, मोहणिए वीस नाम गोएसु ।
तित्तीसं अयराइं, आउट्ठिइ बंध उक्कोसा ।।41।।

बारस मुहुत्तं जहन्ना, वेयणिए अट्ठ नाम गोएसु ।
सेसाणंतमुहुत्तं, एयं बंधट्ठिई माणं ।।42।।

शब्दार्थ :– नाणे=ज्ञानावरणीय **अ**=और **दंसणावरणे**=दर्शनावरणीय **वेयणिए**=वेदनीय **चेव**=अवश्य ही **अंतराए**=अंतराय **अ**=और **तीसं**=तीस **कोड़ाकोड़ी**=कोटाकोटि **अयराणं**=सागरोपम **ठिई**=स्थिति **उक्कोसा**=उत्कृष्ट ।

सत्तरि=सित्तर **कोड़ाकोड़ी**=कोटाकोटि **मोहणिए**=मोहनीय **वीस**=बीस कोटा-कोटि **नाम**=नाम कर्म की **गोएसु**=गोत्र कर्म की **तित्तीसं**=तैंतीस **अयराइं**=सागरोपम **आउ**=आयुष्य की **ट्ठिइ**=स्थिति **बंध**=बंध **उक्कोसा**=उत्कृष्ट ।

बारस=बारह **मुहुत्त**=मुहूर्त **जहन्ना**=जघन्य **वेयणिए**=वेदनीय **अट्ठ**=आठ

स्थिति बंध की समय तालिका

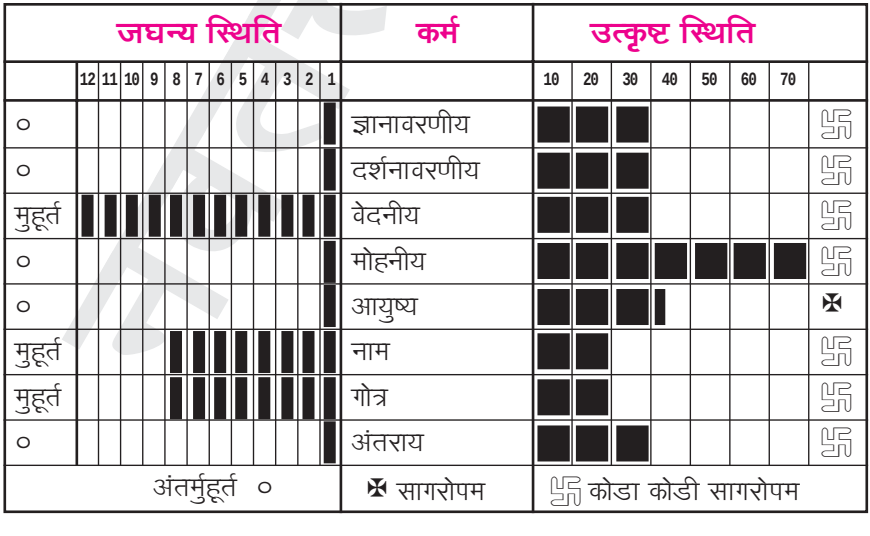

नाम=नाम कर्म **गोएसु=**गोत्र कर्म की **सेसा=**शेष कर्मों की **अंतमुहूतं=**अन्तर्मुहूर्त **एयं=**इस प्रकार **बंध=**बंध का **ट्ठिइमाणं=**स्थिति प्रमाण है ।

भावार्थ : ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अंतराय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है ।

विवेचन :– मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति सित्तर कोटाकोटि तथा नाम व गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम है तथा आयुष्य कर्म की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है ।

वेदनीय कर्म का जघन्य स्थिति बंध 12 मुहूर्त, नाम व गोत्र का 8 मुहूर्त और शेष पाँच प्रकृतियों का अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जघन्य स्थिति बंध है ।

कर्मों का स्थिति बंध

कर्म	उत्कृष्ट स्थिति	जघन्य स्थिति
1. ज्ञानावरणीय	30 कोटाकोटि सागरोपम	1 अन्तर्मुहूर्त
2. दर्शनावरणीय	30 कोटाकोटि सागरोपम	1 अन्तर्मुहूर्त
3. वेदनीय	30 कोटाकोटि सागरोपम	12 मुहूर्त
4. मोहनीय	70 कोटाकोटि सागरोपम	1 अन्तर्मुहूर्त
5. आयुष्य	33 सागरोपम	1 अन्तर्मुहूर्त
6. नाम	20 कोटाकोटि सागरोपम	8 मुहूर्त
7. गोत्र	20 कोटाकोटि सागरोपम	8 मुहूर्त
8. अंतराय	30 कोटाकोटि सागरोपम	1 अन्तर्मुहूर्त

कर्म का उत्कृष्ट स्थितिबंध 70 कोटाकोटि सागरोपम है अर्थात् इतनी स्थिति से अधिक कोई भी कर्म आत्मा के साथ लगा हुआ नहीं रहता है । प्रवाह की अपेक्षा से आत्मा के साथ कर्म बंध अनादि होने पर भी व्यक्ति की अपेक्षा से प्रत्येक कर्मबंध की आदि है और उसका अंत भी है ।

आबाधाकाल :– कोई भी कर्म अपने बंध के साथ ही उदय में नही आ जाता है, बल्कि उसका आबाधाकाल पूर्ण होने पर ही वह कर्म उदय में आता है। उदाहरण-ज्ञानावरणीय कर्म का उत्कृष्ट बंध 30 कोड़ाकोड़ी सागरोपम का किया हो तो वह कर्म 3000 वर्ष के आबाधा काल के पूर्ण होने पर ही उदय में आता है।

आबाधाकाल

कर्म	उत्कृष्ट आबाधाकाल	जघन्य आबाधा काल
ज्ञानावरणीय	3000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
दर्शनावरणीय	3000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
वेदनीय	3000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
मोहनीय	7000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
आयुष्य	साधिक पूर्व करोड़ वर्ष का तीसरा भाग	अन्तर्मुहूर्त
नाम	2000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
गोत्र	2000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त
अंतराय	3000 वर्ष	अन्तर्मुहूर्त

9 मोक्ष तत्त्व

संतपय परुवणया, दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य ।
कालो अ अंतरं भाग, भावे अप्पाबहुं चेव ।।43।।

शब्दार्थ :–संतपय परूवणया=सत् पद प्ररूपणा, **दव्वपमाणं=**द्रव्य प्रमाण **खित्तफुसणा=**क्षेत्र स्पर्शना, **कालो=**काल **अ=**तथा **अंतरं=**अंतर **भाग=**भाग द्वार **भावे=**भाव द्वार **अप्पाबहुं=**अल्प बहुत्व **चेव=**अवश्यमेव ।

भावार्थ :– 1. सत्पद प्ररूपणा द्वार, 2. द्रव्य प्रमाणद्वार, 3. क्षेत्र द्वार, 4. स्पर्शना द्वार, 5. काल द्वार, 6. अंतरद्वार, 7. भाग द्वार, 8. भाव द्वार, 9. अल्प बहुत्व द्वार; ये निश्चय ही नौ अनुयोग द्वार हैं ।

विवेचन :–

कर्म के बंधन से जकड़ी हुई आत्मा संसार में भटकती है और विविध जन्मों में अनेक प्रकार की यातनाएँ सहन करती है । परन्तु रत्नत्रयी की आराधना के फलस्वरूप आत्मा जब घाती-अघाती समस्त कर्म-बंधनों से मुक्त होती है, त्योंही आत्मा का मोक्ष हो जाता है । वह आत्मा सदा के लिए अजरामर बन जाती है । जन्म-मरण के बंधन से सदा काल के लिए मुक्त हो जाती है ।

कर्मबंधन से मुक्त होने के साथ ही आत्मा सर्वार्थसिद्ध विमान की ध्वजा से 12 योजन ऊपर जो सिद्धशिला आई हुई है, उस सिद्ध शिला के ऊपर पहुंच जाती हैं ।

यह सिद्धशिला मनुष्यलोक के समान पिस्तालीस लाख योजन लंबी-चौड़ी गोलाकार रूप में रही हुई है । यह सिद्धशिला मध्य में आठ योजन मोटी और किनारे पर मक्खी की पांख के समान पतली है । यह सिद्धशिला निर्मल स्फटिक की बनी हुई है । सिद्धशिला और लोकाग्र के बीच एक योजन का अंतर है ।

कर्मबंधन से सर्वथा मुक्त बनी आत्मा सिद्धशिला को पारकर लोक के अग्रभाग में जाकर स्थित हो जाती है ।

मनुष्यलोक से लोकाग्र के बीच 7 राजलोक का अंतर होने पर भी इस दूरी को पार करने में मुक्तात्मा को एक समय ही लगता है ।

9 द्वार

(1) सत् पद प्ररूपणा द्वार-सत् अर्थात् विद्यमान । विद्यमान पदार्थ की प्ररूपणा सत् पद प्ररूपणा है ।

संतं सुद्धपयत्ता, विज्जंतं खकुसुमं व न असंतं ।
मुक्ख त्ति पयं तस्स उ, परूवणा मग्गणाइहिं ।।44।।

शब्दार्थ :– संतं=सत् (विद्यमान) **सुद्ध=**शुद्ध **पयत्ता=**पदरूप होने से **विज्जंतं=**विद्यमान है **ख=**आकाश **कुसुम=**पुष्प **व=**समान **न=**नहीं **असंतं=**अविद्यमान **मुक्ख=**मोक्ष **त्ति=**यह **पयं=**पद है **तस्स=**उसकी **उ=**तथा **परूवणा=**प्ररूपणा **मग्गणाईहि=**मार्गणा द्वारा ।

भावार्थ :– मोक्ष सत् अर्थात् विद्यमान है । 'मोक्ष' शुद्ध पद होने से आकाशकुसुम की तरह अविद्यमान (असत्) नहीं है । 'मोक्ष' यह पद है और मार्गणा आदि द्वारा उस पर विचार कर सकते हैं ।

विवेचन :– किसी भी वस्तु को सिद्ध करना हो तो न्याय शास्त्र के अनुसार प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय और निगमनरूप पाँच अवयववाले वाक्य का प्रयोग किया जाता है ।

1) प्रतिज्ञा वाक्य :– जहाँ जिस वस्तु को सिद्ध करना हो, उस कथन को प्रतिज्ञा कहते हैं ।

2) हेतु: सिद्ध करने में जो 'कारण' दिया जाता है, उसे **'हेतु'** कहते हैं ।

3) उदाहरण:– कार्य सिद्धि के लिए जो दृष्टांत दिया जाता है, उसे **उदाहरण** कहते हैं ।

4) उपनय :– उदाहरण के अनुसार जो घटाते हैं, उसे उपनय कहते हैं ।

5) निगमन :– प्रतिज्ञा के अनुसार प्रमाण को घोषित करना, उसे निगमन कहते हैं ।

मोक्ष की सिद्धि के लिए ये पांच अवयव–

1. प्रतिज्ञा वाक्य:– मोक्ष विद्यमान (सत्) है ।

2. हेतु :– एक पद के अर्थ रूप होने से ।

3. उदाहरण :– आकाशपुष्प की तरह अविद्यमान नहीं है ।

जो शुद्ध एक पद होता हैं, वह वस्तु अवश्य विद्यमान होती है ।

जैसे सोना, चांदी, रत्न, आकाश, पुष्प आदि ये सब एक पदवाले हैं और जगत् में विद्यमान हैं । जो संयुक्त पद होते हैं, वे पदार्थ जगत् में विद्यमान होते भी हैं और नहीं भी होते हैं ।

जैसे **1) सुवर्णाभूषण,** इसमें दो पद हैं-सुवर्ण और आभूषण !

2) रत्नप्रभा, रत्न और प्रभा, दो पदवाली यह वस्तु भी जगत् में विद्यमान है ।

3) वंध्यापुत्र, वंध्या का पुत्र, दो पदवाली यह वस्तु जगत् में विद्यमान नहीं है ।

4) आकाशपुष्प, आकाश और पुष्प स्वतंत्ररूप से भिन्न-भिन्न पदार्थ के रूप में जगत् में विद्यमान होने पर भी `आकाश का पुष्प' इस रूप में कोई वस्तु जगत् में विद्यमान नहीं है ।

4. उपनय :– मोक्ष शुद्ध पद है, अतः जगत् में विद्यमान है ।

5. निगमन :– मोक्षपद का जो अर्थ होता है, वह पदार्थ जगत् में है ।

प्रश्न :– ड़ित्थ, डवित्थ आदि एक पदवाले शब्द होने पर भी वैसा कोई पदार्थ जगत् में दिखता तो नहीं है ?

उत्तर :– जिस शब्द का अर्थ या व्युत्पत्ति हो सकती हो, उसी को पद कहते हैं । अर्थशून्य शब्द को पद नहीं कहते हैं ।

मोक्ष शब्द का अर्थ भी है और उस शब्द का व्युत्पत्ति अर्थ भी है । डित्थ आदि शब्द अर्थशून्य है, अतः पद नहीं है, इस कारण उस नाम का कोई पदार्थ भी नहीं है ।

चौदह मार्गणाएँ

गइ इंदिए अ काए, जोए वेए कसाय नाणे अ ।
संजम दंसण लेसा, भव सम्मे सन्नि आहारे ।।45।।

शब्दार्थ :– गइ=गति **इंदिए=**इन्द्रियाँ **काए=**काया **जोए=**योग **वेए=**वेद **कसाय=**कषाय **नाणे=**ज्ञान **संजम=**संयम **दंसण=**दर्शन **लेसा=**लेश्या **भव=**भव्य **सम्मे=**सम्यक्त्व **सन्नि=**संज्ञी **आहारे=**आहार ।

भावार्थ :– गति, इन्द्रिय, काय, योग, वेद, कषाय, ज्ञान, संयम, दर्शन, लेश्या, भव्य, सम्यक्त्व, संज्ञी और आहार-ये चौदह मार्गणाएँ हैं ।

विवेचन :– किसी भी पदार्थ को स्पष्ट रूप से समझना हो तो गति आदि मार्गणाओं के माध्यम से उसे स्पष्ट रूप में समझा जा सकता है ।

प्रस्तुत गाथा में मोक्ष तत्त्व के संदर्भ में बात चल रही है । अतः मोक्ष तत्त्व को स्पष्ट रूप से जानना हो तो गति आदि 14 मार्गणाओं के माध्यम से मोक्ष तत्त्व को स्पष्ट रूप से जाना व समझा जा सकता है ।

चौदह मार्गणा स्थानों में मोक्ष की सिद्धि बतलाई है । चौदह प्रकार के मार्गणा स्थान हैं, उन सब में संसारी जीवों का समावेश हो सकता है, परंतु मुक्तात्माओं का समावेश इनमें नहीं होता है फिर भी मोक्ष में जाने के पूर्व जिन जीवों का इन मार्गणा स्थानों में समावेश होता हो उनका यहाँ निर्देश किया जा रहा है–

1. गति मार्गणा-इसके चार भेद हैं– 1) देवगति, 2) मनुष्यगति, 3) नरक गति और 4) तिर्यंचगति ।

2. इन्द्रिय मार्गणा-इसके पाँच भेद हैं- 1) एकेन्द्रिय, 2) द्वीन्द्रिय, 3) त्रीन्द्रिय, 4) चतुरिन्द्रिय, 5) पंचेन्द्रिय ।

3. काय मार्गणा-इसके छह भेद हैं- 1) पृथ्वीकाय, 2) अपकाय, 3) तेउकाय, 4) वायुकाय, 5) वनस्पति काय 6) त्रसकाय ।

4. योग मार्गणा-इसके 3 भेद हैं- 1) मनयोग, 2) वचनयोग और 3) काययोग ।

5. वेद मार्गणा-इसके तीन भेद हैं- 1) पुरूषवेद, 2) स्त्री वेद, 3) नपुंसक वेद ।

6. कषाय मार्गणा-इसके चार भेद हैं- 1) क्रोध, 2) मान, 3) माया, 4) लोभ ।

7. ज्ञान मार्गणा-इसके आठ प्रकार हैं- 1) मतिज्ञान, 2) श्रुतज्ञान, 3) अवधिज्ञान, 4) मनःपर्यवज्ञान, 5) केवलज्ञान, 6) मति अज्ञान, 7) श्रुत अज्ञान, 8) विभंगज्ञान ।

8. संयम मार्गणा-इसके सात भेद हैं- 1) सामायिक चारित्र, 2) छेदोपस्थापनीय, 3) परिहार विशुद्धि, 4) सूक्ष्मसंपराय, 5) यथाख्यात चारित्र, 6) देश विरति, 7) सर्व विरति ।

9. दर्शन मार्गणा-इसके चार प्रकार हैं- 1) चक्षुदर्शन, 2) अचक्षुदर्शन, 3) अवधिदर्शन, 4) केवलदर्शन ।

10. लेश्या मार्गणा-इसके छह भेद हैं- 1) कृष्ण लेश्या, 2) नील लेश्या, 3) कापोत लेश्या, 4) तेजो लेश्या, 5) पद्म लेश्या, 6) शुक्ल लेश्या ।

11. भव्य मार्गणा-इसके दो भेद हैं- 1) भव्य, 2) अभव्य ।

12. सम्यक्त्व मार्गणा-इसके छह भेद हैं- 1) उपशम सम्यक्त्व, 2) क्षायिक सम्यक्त्व, 3) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व, 4) मिश्र सम्यक्त्व, 5) सास्वादन सम्यक्त्व, 6) मिथ्यात्व ।

13. संज्ञी मार्गणा-इसके दो भेद हैं- 1) संज्ञी (मन वाले), 2) असंज्ञी (मन रहित) ।

14. आहारी मार्गणा-इसके दो भेद हैं- 1) आहारी, 2) अणाहारी ।

इन मुख्य 14 मार्गणाओं के कुल 62 भेद हैं ।

नरगइ पणिंदि तस भव, सन्नि अहक्खाय खइअसम्मत्ते ।
मुक्खोऽणाहार केवल, दंसणनाणे न सेसेसु ।।46।।

शब्दार्थ :– नरगइ=मनुष्य गति **पणिंदि=**पंचेन्द्रिय **तस=**त्रस **भव=**भव्य **सन्नि=**संज्ञी **अहक्खाय=**यथाख्यात **खइअसम्मत्ते=**क्षायिक सम्यक्त्व **मुक्खो=**मोक्ष **अणाहार=**अनाहार **केवलदंसण=**केवलदर्शन **नाणे=**केवलज्ञान **न=**नहीं **सेसेसु=**शेष मार्गणाओं में ।

भावार्थ : मनुष्य गति, पंचेंद्रिय जाति, त्रस काय, भव्य, संज्ञी, यथा-ख्यात चारित्र, क्षायिक सम्यक्त्व, अनाहार, केवलदर्शन और केवलज्ञान, इन मार्गणाओं में ही मोक्ष है ।

विवेचन : 1) मनुष्य गति :– मोक्ष में जाना हो तो मनुष्यगति ही चाहिए। यद्यपि सर्वार्थसिद्धविमान से मोक्ष की दूरी सिर्फ 12 योजन है फिर भी उन देवों को भी मोक्ष में जाना हो तो 7 राजलोक नीचे ही आना पड़ता है। मनुष्य भव को छोड़कर आज तक किसी एक भी जीव का मोक्ष नहीं हुआ है।

2. पंचेन्द्रिय जाति :– मोक्ष में जाना हो तो पंचेन्द्रिय जाति जरूरी है। एकेन्द्रिय से चतुरिन्द्रिय जीवों का कभी मोक्ष नहीं होता है ।

3. त्रस :– मोक्ष में जाने के लिए त्रसपना भी जरूरी है। स्थावर जीवों का कभी मोक्ष नहीं होता है ।

4. भव्य :– मोक्ष में जाने के लिए जीव का भव्यत्व स्वभाव बहुत जरूरी है। जिस जीव में मोक्ष में जाने की योग्यता हो, उसी को भव्य जीव कहते हैं। अभव्य जीव में मोक्ष में जाने की योग्यता नहीं होती है, अतः अभव्य जीव का कभी मोक्ष नहीं होता है ।

5. संज्ञी :– मनःपर्याप्ति और दीर्घकालिकी संज्ञा से युक्त पंचेन्द्रिय जीव को संज्ञी कहा जाता है। संज्ञी जीव ही अपने मन के आलंबन से शुभ व शुद्ध ध्यान कर सकता है ।

6. यथाख्यात चारित्र :– पांच प्रकार के चारित्रों में से जब आत्मा यथाख्यात चारित्र प्राप्त करती है, तभी वीतराग दशा व केवलज्ञान प्राप्त कर सकती है, अतः मोक्षप्राप्ति के लिए यथाख्यात चारित्र भी अनिवार्य है ।

7. क्षायिक सम्यक्त्व :– क्षयोपशम आदि सम्यक्त्व से ऊँचे देवलोक की प्राप्ति हो सकती है, परंतु मोक्ष की प्राप्ति के लिए तो क्षायिक सम्यक्त्व ही चाहिए । क्योंकि क्षायिक सम्यक्त्व के अभाव में आत्मा क्षपक श्रेणी पर भी नहीं चढ़ सकती है, अतः मोक्ष के लिए क्षायिक-सम्यक्त्व भी बहुत जरूरी है ।

8. अनाहारक :– एक से तेरहवें गुणस्थानक तक आत्मा आहारी होती है । 14 वें गुणस्थानक में आत्मा अणाहारी होती है । अणाहारी अवस्था को प्राप्त आत्मा का ही मोक्ष होता है । आहारी अवस्था में आत्मा का मोक्ष नहीं होता है ।

9. केवलज्ञान :– संसारी जीव की अपेक्षा ज्ञान के 8 भेद (5 ज्ञान और 3 अज्ञान) होते हैं, इनमें मात्र केवलज्ञानी आत्मा का ही मोक्ष होता है, अन्य ज्ञानवाली आत्मा सद्‌गति प्राप्त कर सकती है, परंतु मोक्ष नहीं ।

10. केवलदर्शन :– केवलज्ञान और केवलदर्शन इन दोनों की प्राप्ति एक साथ ही होती है । दर्शन के चार भेद हैं, परंतु केवल दर्शन को प्राप्त आत्मा का ही मोक्ष होता है, अन्य आत्मा का नहीं ।

इन 10 मार्गणाओं को छोड़कर अन्य शेष चार, 1) कषाय, 2) वेद, 3) योग और 4) लेश्या में रहे जीव का कभी भी मोक्ष नहीं होता है, क्योंकि मोक्ष में जाना हो तो चारों कषाय, तीनों वेद, तीनों योग व छह लेश्याओं का सर्वथा त्याग ही करना पड़ता है ।

द्रव्य और क्षेत्र द्वार

दव्वपमाणे सिद्धाणं, जीव दव्वाणि हुंतिऽणंताणि ।
लोगस्स असंखिज्जे, भागे इक्को य सव्वेवि ।।47।।

शब्दार्थ :– दव्व पमाणे=द्रव्य प्रमाण में **सिद्धाणं=**सिद्धों के **जीवद-व्वाणि=**जीव द्रव्य **हुंति=**होते हैं **अणंताणि=**अनंत **लोगस्स=**लोक के **असं-खिज्जे=**असंख्यातवें **भागे=**भाग में **इक्को=**एक **सव्वेवि=**सभी ।

भावार्थ :– द्रव्य प्रमाण नाम के अनुयोग द्वार में ऐसा कथन है कि सिद्ध के जीव द्रव्य अनंत हैं । क्षेत्र नाम के अनुयोग द्वार में ऐसा कथन है कि सभी सिद्ध लोक के असंख्यातवें भाग में रहे हुए हैं ।

विवेचन :– (2) द्रव्य प्रमाण द्वार :– संख्या की दृष्टि से सिद्धों के जीव अनंत हैं । जो जीव आठ कर्मों का क्षय कर सिद्ध बने हैं, वे द्रव्य रूप में कायम रहते हैं । द्रव्य प्रमाण में संख्या बताई जाती है । सिद्धों के जीव अनंत हैं । जो जीव सिद्ध बनते हैं, वे द्रव्य के रूप में सदा काल रहते हैं । आज तक अनंत आत्माएँ मोक्ष में गई होने से सिद्धों की संख्या अनंत है ।

जघन्य से एक समय के अंतर से और उत्कृष्ट से छ मास के अंतर में कम-से-कम एक जीव अवश्य मोक्ष में जाता है, आज तक अनंत काल बीत चुका है, अतः सिद्धों की संख्या अनंत है ।

(3) क्षेत्र द्वार :– सिद्ध के जीव लोक के असंख्यातवें भाग में रही सिद्धशिला के ऊपर, लोक के अग्र भाग में रहे हुए हैं ।

अनुयोग द्वार आगम ग्रंथ में कहा है कि एक सिद्ध का जीव भी लोक के असंख्यातवें भाग में रहा हुआ है और सर्व सिद्ध के जीव भी लोक के असंख्यातवें भाग में रहे हुए हैं ।

जघन्य से दो हाथ और अधिकतम 500 धनुष की काया वाले मनुष्य मोक्ष में जा सकते हैं । मनुष्य के भव में शरीर की जितनी ऊँचाई होती है उसके दो तृतीयांश अवगाहना क्षेत्र में सिद्ध भगवंत रहते हैं । इस प्रकार एक सिद्ध भगवंत की उत्कृष्ट अवगाहना 333 1/3 धनुष प्रमाण है और जघन्य अवगाहना एक हाथ और आठ अंगुल प्रमाण है ।

सिद्ध भगवंत लोक के असंख्यातवें भाग क्षेत्र में रहे हुए हैं । जिस प्रकार एक ही कमरे में एक साथ पाँच-दस-सौ दीपकों का प्रकाश एक दूसरे को बाधा पहुँचाए बिना रह सकता है, उसी प्रकार एक ही क्षेत्र में अनंत सिद्ध भगवंत रहे हुए होने पर भी परस्पर किसी को किसी प्रकार की बाधा या पीड़ा नहीं पहुँचती है ।

स्पर्शना काल व अंतर द्वार

फुसणा अहिया कालो, इग सिद्ध-पडुच्च साइओऽणंतो ।
पड़िवाया-भावाओ, सिद्धाणं अंतरं नत्थि ।।48।।

शब्दार्थ :– फुसणा=स्पर्शना **अहिया=**अधिक है **कालो=**काल है । **इग-सिद्ध=**एक सिद्ध **पडुच्च=**अपेक्षा से **साइओऽणंता=**सादि अनंत **पड़िवाय=**पुनः-गिरने के **अभावाओ=**अभाव से **सिद्धाणं=**सिद्धों के **अंतरं=**अंतर **नत्थि=**नहीं है ।

भावार्थ :– स्पर्शना अधिक होती है, एक सिद्ध की अपेक्षा काल सादि-अनंत है । गिरने का अभाव होने से सिद्धों में अंतर नहीं है ।

विवेचन :– (4) स्पर्शना द्वार :– सिद्ध के जीवों का जितना अवगाहन क्षेत्र होता है, उसकी अपेक्षा स्पर्शना क्षेत्र अधिक होता है । कोई भी वस्तु जितने क्षेत्र-प्रदेश में रहती है, वह वस्तु अपने अवगाहना क्षेत्र के प्रदेशों को तथा आस-पास एवं ऊपर-नीचे के प्रदेशों को भी स्पर्श करके रही हुई होती है । स्पर्शन किए प्रदेशों को **क्षेत्र स्पर्शना** कहते हैं ।

एक सिद्ध भगवंत जितने आकाश प्रदेशों को स्पर्श कर रहे हुए होते हैं, उतने ही आकाश प्रदेशों को स्पर्श कर अनंत सिद्ध भगवंत भी रहे हुए हैं । आकाश-प्रदेश असंख्यात हैं जबकि मुक्तात्माएँ अनंत हैं ।

(5) काल द्वार :– जब कोई भी आत्मा मोक्ष में जाती है तब सिद्ध भगवंत के रूप में उसकी आदि होती है, परन्तु मोक्ष में जाने के बाद वह आत्मा अनंत काल तक वहीं रहती है । सिद्ध पद शाश्वत होने से उसका अस्तित्व सादि अनंत है ।

(6) अंतर द्वार :– किसी भी अवस्था का त्याग कर पुनः वह अवस्था प्राप्त न हो, उस बीच के काल को अंतर कहा जाता है । कोई भी आत्मा एक बार मोक्ष में जाने के बाद पुनः संसार में कभी नहीं आती है । संसार परिभ्रमण का मूल कर्म है, मुक्तात्माएँ कर्म से सर्वथा रहित होती हैं । कारण के अभाव में कार्य का सद्भाव नहीं हो सकता । कर्म रूप बीज के नष्ट हो जाने से मुक्तात्मा का पुनः संसार में अवतरण नहीं होता है, इस कारण सिद्धों में यह अंतर द्वार नहीं घटता है ।

सिद्ध भगवंत पास-पास में होने से उनके बीच क्षेत्रगत अंतर भी नहीं है ।

भाग और भाव द्वार

सव्व-जियाण-मणंते, भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणामिए, अ पुण होइ जीवत्तं ।।49।।

शब्दार्थ :– सव्व=सभी **जियाणं=**जीवों के **अणंते भागे=**अनंतवें **भाग ते=**वे **तेसिं=**उनका **दंसणं=**दर्शन **नाणं=**ज्ञान **खइए=**क्षायिक **भावे=**भाव के है **परिणामिए=**पारिणामिक **अ=**और **पुण=**परंतु **होइ=**होता हैं **जीवत्तं=**जीवत्व ।

भावार्थ :– वे सिद्ध जीव सभी जीवों के अनंतवें भाग में हैं । उन सिद्धों का ज्ञान और दर्शन क्षायिक भाव का है और उनका जीवत्व पारिणामिक भाव का है ।

विवेचन :– (7) भाग द्वार :– सभी जीवों की अपेक्षा सिद्धों के जीव अनंतवें भाग प्रमाण हैं । यद्यपि सिद्ध भगवंत की संख्या अनंत है, फिर भी समस्त संसारी जीवों की अपेक्षा सिद्ध भगवंत अनंतवें भाग में ही हैं ।

साधारण वनस्पतिकाय को निगोद कहते हैं । इस संसार में निगोद के असंख्य गोले हैं और प्रत्येक गोले में निगोद के असंख्य शरीर हैं और प्रत्येक शरीर में अनंत-अनंत जीव रहे हुए हैं ।

सिद्ध भगवंत अभव्य की अपेक्षा अनंत गुणे हैं फिर भी निगोद के अनंत जीवों की अपेक्षा तो अनंतवें भाग प्रमाण ही हैं ।

कहा भी है-जब-जब भी जिनेश्वर भगवंतों को पूछा जाएगा कि आज तक कितने जीव मोक्ष में गए हैं ? तो उन जिनेश्वर भगवंतों का एक ही जवाब होगा- एक निगोद का अनंतवाँ भाग ही मोक्ष में गया है ।

(8) भाव द्वार :– सिद्ध भगवंतों का ज्ञान और दर्शन क्षायिक भाववाला होता है, जबकि उनका जीवत्व पारिणामिक भाव में होता है ।

औदयिक, औपशमिक और क्षायोपशमिक भाव कर्मजन्य हैं । सिद्ध भगवंतों में कर्म का सर्वथा अभाव होने से ये तीनों भाव बिल्कुल नहीं होते हैं ।

भावों के 5 प्रकार

1) औपशमिक भाव :– मोहनीय कर्म की उपशांत अवस्था को उपशम कहा जाता है, इस अवस्था में कर्म का बिल्कुल उदय नहीं होता है । इससे उत्पन्न आत्मपरिणाम को औपशमिक भाव कहते हैं । इस भाव में सम्यक्त्व और चारित्र पैदा हो सकता है ।

2) क्षायिक भाव :– कर्म के संपूर्ण क्षय से आत्मा में जो परिणाम पैदा होता है, उसे क्षायिक भाव कहते है । क्षायिक भाव के 9 प्रकार हैं 1) केवलज्ञान 2) केवलदर्शन 3) क्षायिक सम्यक्त्व 4) क्षायिक चारित्र 5) दान लब्धि 6) लाभ लब्धि 7) भोग लब्धि 8) उपभोग लब्धि और 9) वीर्यलब्धि । मूलगुणों की अपेक्षा सिद्ध भगवंतों में क्षायिक भाव का केवलज्ञान और केवलदर्शन कहा गया है । शेष 7 भावों का अपेक्षा विशेष से निषेध भी कहा गया है ।

3) क्षायोपशमिक भाव :– उदय में प्राप्त हुए कर्म का क्षय और उदय में प्राप्त नहीं हुए कर्म का उपशम, इस उभय स्वरूप भाव को क्षयोपशम कहा जाता है । इस भाव से उत्पन्न आत्मपरिणाम को क्षायोपशमिक भाव कहते है ।

4) औदयिक भाव :– कर्म के उदय से जन्य आत्मपरिणाम को औदयिक भाव कहते हैं ।

5) पारिणामिक भाव :– वस्तु के अनादि स्वभाव को पारिणामिक भाव कहते हैं । इस भाव में जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व भाव आता है ।

सिद्ध भगवंतों में जीवत्व होता है परंतु भव्यत्व और अभव्यत्व भाव नहीं होता है ।

मोक्ष में जाने की योग्यता को भव्यत्व और मोक्ष में जाने की अयोग्यता को अभव्यत्व कहते हैं ।

सिद्ध भगवंतों ने मोक्ष प्राप्त कर लिया है, अतः उनमें न तो भव्यत्व भाव घटता है और न ही अभव्यत्व भाव ।

शास्त्र में सिद्धों को **'नो भव्वा नो अभव्वा'** कहा है, इसका यही परमार्थ है ।

सिद्ध भगवंतों में जीवत्व होता है, अतः जीव रूप में वे सदैव रहते हैं- इस कारण इसे पारिणामिक भाव कहते हैं ।

अल्पबहुत्व द्वार

थोवा नपुंससिद्धा, थी नर सिद्धा कमेण संखगुणा ।
इअ मुक्खतत्तमेअं, नवतत्ता लेसओ भणिया ।।50।।

शब्दार्थ :– थोवा=थोड़े **नपुंससिद्धा=**नपुंसक सिद्ध **थी=**स्त्री **नर=**पुरूष रूप में **सिद्धा=**सिद्ध हुए **कमेण=**क्रमशः **संखगुणा=**संख्यात गुणे **इअ=**इस प्रकार **मुक्खतत्तं=**मोक्ष तत्त्व **एअं=**यह **नवतत्ता=**नव तत्त्व **लेसओ=**संक्षेप से **भणिया=**कहे है ।

भावार्थ :– नपुंसक लिंग से सिद्ध बने जीव थोड़े हैं, स्त्रीलिंग और पुरूष लिंग से सिद्ध हुए जीव क्रमशः संख्यात गुणे हैं । इस प्रकार मोक्ष तत्त्व कहा गया है । नवतत्त्व भी संक्षेप से कहे गए ।

विवेचन :–

अल्पबहुत्व द्वार :– यद्यपि मोक्ष में रहे जीवों में लिंग का सर्वथा अभाव होता है, वे न तो पुरूषरूप में रहते हैं, न स्त्री या नपुंसक रूप में । वहाँ तो मात्र आत्मा का अस्तित्व है । फिर भी अंतिम भाव की अपेक्षा उन्हें स्त्री, पुरूष व नपुंसक लिंग में सिद्ध कहा है ।

नपुंसक लिंग से सिद्ध होनेवाले जीव बहुत ही कम हैं, क्योंकि मनुष्यों में नपुंसक कम ही होते हैं और वे एक समय में अधिकतम 10 ही मोक्ष जा सकते हैं । जबकि स्त्रीलिंग में एक समय में अधिकतम 20 मोक्ष जा सकते हैं और पुरुषलिंग में तो एक समय में अधिकतम 108 मोक्ष जा सकते हैं ।

यहाँ नपुंसक को जो मोक्ष कहा है, वह नपुंसक वेद की अपेक्षा नहीं, बल्कि नपुंसक लिंग की अपेक्षा समझना चाहिए ।

इस प्रकार मोक्ष तत्त्व के वर्णन के साथ नौ तत्त्वों का भी संक्षेप से वर्णन पूरा हुआ ।

सम्यक्त्व द्वार

जीवाइ नव पयत्थे, जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं ।
भावेण सद्दहंतो, अयाणमाणेऽवि सम्मत्तं ।।51।।

शब्दार्थ :– जीवाइ=जीव आदि **नव=**नौ **पयत्थे=**पदार्थों को **जो=**जो कोई **जाणइ=**जानता है, **तस्स=**उसको **होइ=**होता है **सम्मत्तं=**सम्यक्त्व **भावेण=**भाव से **सद्दहंतो=**श्रद्धा करनेवाले को **अयाणमाणे वि=**नहीं जानने पर भी ।

भावार्थ :– जो व्यक्ति जीव आदि नौ तत्त्वों को अच्छी तरह से जानता है, उसे सम्यक्त्व होता है । जीव आदि तत्त्वों का बोध न हो, परंतु जो श्रद्धा रखता है, उसे भी सम्यक्त्व होता है ।

विवेचन :– तारक तीर्थंकर परमात्मा केवलज्ञान की प्राप्ति के बाद अपने केवलज्ञान के बल से जगत् के यथार्थ स्वरूप को जानकर जगत् के जीवों के कल्याण के लिए जीव आदि नौ तत्त्वों का यथार्थ स्वरूप समझाते हैं ।

तारक तीर्थंकर परमात्मा पूर्ण ज्ञानी सर्वज्ञ थे और साथ में वीतराग भी थे ! ज्ञानी भी यदि राग-द्वेष से युक्त हो तो वे भी झूठ बोल सकते हैं ।

कई बार व्यक्ति अज्ञानता अर्थात् जानकारी के अभाव में भी झूठ बोलता है तो कई बार व्यक्ति सत्य को जानने पर भी मोह के कारण भी झूठ बोलता है ।

जो वीतराग और सर्वज्ञ हो, उन्हें झूठ बोलने का कोई प्रयोजन ही नहीं रहता है, क्योंकि एक ओर वे पूर्णज्ञानी हैं तो दूसरी ओर उनमें राग-द्वेष का अभाव भी है ।

ऐसे सर्वज्ञ भगवंतों के कथित वचनों को जानने से हमें सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है ।

एक अपेक्षा ज्ञान को सम्यक्त्व और चारित्र दोनों का हेतु कहा है । ज्यों-ज्यों ज्ञान बढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उस विषय की श्रद्धा दृढ़ होती है ।

विज्ञान का विद्यार्थी, ज्यों-ज्यों विज्ञान के विषय में जानकारी प्राप्त करता जाता है, त्यों-त्यों विज्ञान पर की उसकी श्रद्धा दृढ़ होती जाती है ।

'नवतत्त्व' प्रकरण ग्रंथ में ग्रंथकार महर्षि ने 1 से 50 गाथा तक जीव आदि नौ तत्त्वों का स्वरूप समझाया, अब इस गाथा में ज्ञान के फल का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जीव आदि नौ तत्त्वों को अच्छी तरह से बोध प्राप्त करने से आत्मा में सम्यग् दर्शन गुण प्रकट होता है ।

लोक व्यवहार में भी हम देखते हैं कि किसी व्यक्ति की एक बात पर विश्वास बैठने पर हम उसकी दूसरी बात पर भी विश्वास करते हैं । **'पुरुष-विश्वासे वचन-विश्वासः ।'**

बस, इसी प्रकार वीतराग प्रभु के द्वारा कहे गए जीव आदि नौ तत्त्वों का सत्य बोध होने पर, प्रभु के अन्य वचनों पर भी मन में श्रद्धा पैदा होती है ।

सद् आचरण की सफलता भी पदार्थों के सत्यबोध पर ही निर्भर करती है ।

ठीक ही कहा है-

'बिना द्रव्य अनुयोग विचार, नहीं चरण करणनो सार ।'

सम्यग् ज्ञान के अभाव में सम्यक् चारित्र का पालन भी संभव नहीं है ।

अब इसी गाथा में सम्यक्त्व की प्राप्ति के दूसरे हेतु का वर्णन करते हुए कहते हैं कि ज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम के अभाव के कारण यदि जीव आदि नौ पदार्थों का सम्यग्बोध न भी हो परंतु दर्शन मोहनीय के क्षयोपशम के कारण जो जिनेश्वर भगवंत के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा रखता हो, उसे भी सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है ।

पदार्थ-बोध के लिए ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम चाहिए, जबकि जिन-वचन पर श्रद्धा के लिए दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम चाहिए ।

सम्यक्त्व की प्राप्ति का मुख्य आधार दर्शन मोहनीय कर्म का क्षयोपशम है । ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम तीव्र हो, परंतु दर्शन-मोहनीय का बिल्कुल क्षयोपशम न हो तो भी सम्यक्त्व की प्राप्ति नहीं होती है ।

ज्ञानावरणीय कर्म का उदय हो परंतु दर्शन-मोहनीय का क्षयोपशम हो जाय तो भी उस आत्मा को जिनेश्वर भगवंत के वचनों पर पूर्ण श्रद्धा हो सकती

है, जिसके फलस्वरूप वह आत्मा सम्यग्दर्शन अर्थात् सम्यक्त्व को प्राप्त करती है ।

मोहनीय कर्म की उत्कृष्ट स्थिति 70 कोड़ाकोड़ी सागरोपम की है, वह स्थिति घटकर जब अंतःकोटाकोटि सागरोपम की हो जाती है, तभी आत्मा में सम्यक्त्व के परिणाम पैदा हो सकते हैं ।

मोहनीय कर्म की स्थिति-ह्रास के बाद जब आत्मा में अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण के अध्यवसाय पैदा होते हैं, तभी आत्मा सम्यक्त्व प्राप्त कर सकती है ।

यह सम्यक्त्व अनेक प्रकार का है–

सम्यक्त्व के दो भेद

1) व्यवहार सम्यक्त्व :– सुदेव, सुगुरू और सुधर्म पर श्रद्धा रखने को व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं ।

2) निश्चय सम्यक्त्व :– चौथे गुणस्थानक के योग्य विशुद्ध अध्यवसायों की प्राप्ति को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं ।

दूसरी अपेक्षा से सम्यक्त्व के दो भेद :–

1) निसर्ग सम्यक्त्व :– किसी के उपदेश बिना सहजतया आत्मा में सम्यक्त्व के योग्य अध्यवसाय पैदा हों, उसे निसर्ग सम्यक्त्व कहते हैं ।

2) अधिगम सम्यक्त्व :– गुरू के उपदेश से जीव आदि तत्त्वों के बोध से होनेवाले सम्यक्त्व को अधिगम सम्यक्त्व कहते है ।

सम्यक्त्व के तीन भेद :–

1) औपशमिक सम्यक्त्व :– अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय के उपशम से जिस सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, उसे औपशमिक सम्यक्त्व कहते हैं, यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त तक रहता है ।

2. क्षायिक सम्यक्त्व :– अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप चार कषाय तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय के संपूर्ण क्षय से जिस सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है, उसे क्षायिक सम्यक्त्व कहते हैं, यह आने के बाद कभी जाता नहीं है अर्थात् अनंतकाल तक रहता है ।

3) क्षायोपशमिक सम्यक्त्व :– अनंतानुबंधी चार कषाय तथा समकित मोहनीय, मिश्र मोहनीय और मिथ्यात्व मोहनीय इन सात प्रकृतियों में से

उदय में आई प्रकृति का क्षय और सत्ता में रही प्रकृतियों का विपाक से उपशम होने पर जो सम्यक्त्व प्रगट होता है, उसे क्षायोपशमिक सम्यक्त्व कहते है । इस सम्यक्त्व का उत्कृष्ट काल 66 सागरोपम है ।

औपशमिक व क्षायिक सम्यक्त्व निरतिचार होता है जबकि क्षायोपशमिक सम्यक्त्व में अतिचार दोष लगता है ।

सम्यक्त्व के अन्य भेद

1. मिश्र सम्यक्त्व :– उपर्युक्त 7 प्रकृतियों में से सिर्फ मिश्र मोहनीय कर्म का उदय हो और अन्य शेष प्रकृतियों का उदय न हो तो उसे मिश्र सम्यक्त्व कहते हैं । यह सम्यक्त्व अन्तर्मुहूर्त तक रहता है । तीसरे गुणस्थानक में रहे इस सम्यक्त्व में जिनप्रणीत तत्त्वों पर न तो राग होता है और न ही द्वेष ।

2. वेदक सम्यक्त्व :– क्षायिक सम्यक्त्व की प्राप्ति के पूर्व समकित मोहनीय के अंतिम दलिकों का जब वेदन होता है, उसे वेदक सम्यक्त्व कहते हैं ।

3. सास्वादन सम्यक्त्व :– उपशम सम्यक्त्व से च्युत होकर मिथ्यात्व में जाते समय 1 समय से लेकर 6 आवलिका तक जो सम्यक्त्व होता है, उसे सास्वादन सम्यक्त्व कहते हैं ।

सव्वाइं जिणेसर भासियाइं, वयणाइं नन्नहा हुंति ।
इअ बुद्धि जस्स मणे, सम्मत्तं निच्चलं तस्स ।।52।।

शब्दार्थ :– सव्वाइं=सभी **जिणेसर=**जिनेश्वर **भासियाइं=**कहे हुए **वयणाइं=**वचन **न=**नहीं **अन्नहा=**अन्यथा (विपरीत) **हुंति=**होते हैं, **इअ=**इस प्रकार की, **बुद्धी=**बुद्धि **जस्स=**जिसके **मणे=**मन में **सम्मत्तं=**सम्यक्त्व **निच्चलं=**निश्चल, **तस्स=**उसको ।

भावार्थ :– जिनेश्वर भगवंत के द्वारा कहे गए सभी वचन सत्य ही होते हैं, वे कदापि असत्य नहीं होते हैं, ऐसी बुद्धि जिसे होती है, उसे अवश्य ही सम्यक्त्व होता है ।

विवेचन :– तारक तीर्थंकर परमात्मा दीक्षा अंगीकार करने के बाद भी जब तक वे वीतराग और सर्वज्ञ नहीं बनते हैं, तब तक किसी भी प्रकार का धर्मोपदेश नहीं देते हैं । ऐसे तारक परमात्मा को असत्य बोलने का कोई प्रयोजन नहीं होता है । क्योंकि जब तक आत्मा राग-द्वेष से युक्त होती है, तभी तक उस आत्मा के असत्य बोलने की संभावना रहती है । वीतराग बनी आत्मा कभी भी असत्य-उच्चार नहीं करती है ।

ऐसे परमात्मा के सभी वचन पूर्ण सत्य रूप होते हैं, उनमें असत्य का लेश भी अंश नहीं होता है । परमात्मा के सभी वचनों पर जिसके दिल में पूर्ण श्रद्धा होती है, उस आत्मा में सम्यक्त्व पैदा होता है, परंतु जिसे प्रभु के किसी एक वचन पर भी अश्रद्धा होती है, उस आत्मा में सम्यक्त्व नहीं रहता है ।

प्रभु के 99% वचनों पर विश्वास हो, परंतु एक भी वचन पर अविश्वास हो तो भी आत्मा में सम्यक्त्व टिकता नहीं है ।

महावीर प्रभु के शिष्य जमालि के दिल में प्रभु के अन्य सभी वचनों पर श्रद्धा थी, परंतु प्रभु के एक वचन `कड़ेमाणे कड़े' में अश्रद्धा थी । प्रभु के एक वचन में अश्रद्धा भाव जगने से उनका सम्यक्त्व चला गया । वे प्रभु के मार्ग से दूर हट गए ।

आंशिक रूप से भी चारित्र का पालन करे तो भी लाभ ही होता है, परंतु सम्यक्त्व तो पूर्ण ही चाहिए । प्रभु के कुछ वचनों में श्रद्धा करे और कुछ में नहीं, तो यह नहीं चल सकता है ।

ठीक ही कहा है–

'पयमक्खरंपि इक्कं, जो न रोएइ सुत्तनिद्दिट्ठं ।
सेसं रोयंति वि हु, मिच्छादिट्ठी मुणेयव्वो ।'

अर्थ : सूत्र में निर्दिष्ट एक पद या एक अक्षर को भी नहीं मानने वाला, अन्य शेष को मानने पर भी मिथ्यादृष्टि हो जाता है ।

जिनवचन पर श्रद्धा 100% ही चाहिए, उसमें 1% भी अश्रद्धा को अवकाश नहीं है ।

कई बार, हो सकता है कि कई अतीन्द्रिय पदार्थों के रहस्य को समझना, हमारी बुद्धि के बाहर की बात हो । अपनी अल्पबुद्धि या अल्प-क्षयोपशम के कारण जिनेश्वर परमात्मा द्वारा निर्दिष्ट सूक्ष्म पदार्थों के रहस्य को हम न भी समझें, फिर भी हमारे दिल में जिनवचनों में लेश भी शंका को स्थान नहीं होना चाहिए ।

जिनेश्वर प्रभु के वचनों में शंका पैदा होते ही हम सम्यक्त्व से भ्रष्ट हो जाते हैं । हमारा सम्यक्त्व मलिन या दूषित हो जाता है, अतः अत्यंत ही दुर्लभ ऐसे सम्यक्त्व को जीवंत रखना हो तो जिनवचनों के प्रति हमारे दिल में पूर्ण श्रद्धा और आस्था का भाव होना चाहिए ।

अंतोमुहुत्तमित्तं पि, फासियं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं ।
तेसिं अवड्ढपुग्गल, परियट्टो चेव संसारो ।।53।।

शब्दार्थ :– अंतोमुहुत्त=अन्तमुहूर्त **मित्तं=**मात्र **फासियं=**स्पर्श किया हुआ **हुज्ज=**हो **जेहिं=**जिनके द्वारा **सम्मत्तं=**सम्यक्त्व **तेसिं=**उनको **अवड्ढपुग्गलपरियट्टो=**कुछ न्यून आधा पुद्गल परावर्त **चेव=**ही **संसारो=**संसार-परिभ्रमण ।

भावार्थ :– जिन आत्माओं ने एक अन्तमुहूर्त मात्र काल के लिए सम्यक्त्व का स्पर्श किया हो, वे आत्माएँ अधिकतम अर्ध पुद्गल परावर्त तक ही संसार में भटकती हैं, उससे अधिक नहीं ।

विवेचन : पारसमणि का स्पर्श होते ही लोहा सोना बन जाता है, बस, इसी प्रकार सम्यग्दर्शन का स्पर्श होते ही आत्मा के शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति के द्वार खुल जाते है ।

वास्तव में, देखा जाय तो सम्यग्दर्शन यह कोई बाह्य वस्तु नहीं है कि जिसका स्पर्श किया जाय । सम्यग्दर्शन यह तो आत्मा का ही निर्मल परिणाम है । दो समय को जघन्य अन्तमुहूर्त कहते हैं । एक समय से अधिक और दो घड़ी में एक समयन्यून काल को उत्कृष्ट अन्तमुहूर्त कहा जाता है । इतने समय के लिए भी आत्मा में सम्यग्दर्शन के अध्यवसाय पैदा हो जाँय तो वह आत्मा अर्ध पुद्गल परावर्तन काल से अधिक तो संसार में नहीं भटकती है ।

यद्यपि सम्यग्दर्शन का स्पर्श तो आत्मा को उसी भव में भी मोक्ष दिलाने में समर्थ है, कदाचित् वह आत्मा संसार में भटके तो भी 7-8 या 15-20 भवों से अधिक संसार में नहीं भटकती है, परंतु एक बार सम्यग्दर्शन की प्राप्ति के बाद वहाँ से च्युत होकर (गिरकर) भयंकर पाप कर्म का बंध करे, तीर्थंकर परमात्मा या प्रभु द्वारा स्थापित शासन की घोर आशातना करे तो भी वह आत्मा अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल से तो अधिक संसार में नहीं भटकती है ।

अर्थात् एक बार भी सम्यक्त्व के परिणाम को प्राप्त हुई आत्मा कुछ न्युन अर्ध पुदगल परावर्त काल के भीतर ही पुनः सम्यक्त्व प्राप्त कर चारित्र धर्म प्राप्त करती है और उस चारित्र धर्म की निर्मल आराधना कर अवश्य शाश्वत अजरामर मोक्ष पद प्राप्त करती है ।

उस्सप्पिणी अणंता, पुग्गलपरिअट्टओ मुणेअव्वो ।
तेऽणंता-तीअद्धा, अणागयद्धा अणंतगुणा ।।54।।

शब्दार्थ :– उस्सप्पिणी=उत्सर्पिणियाँ **अणंता=**अनंत **पुग्गलपरिअट्टओ=**पुदगल परावर्त **मुणेअव्वो=**जानना चाहिए **अणंता=**अनंत **अतीअ=**अतीत काल में **अद्धा=**काल **अणागय=**भविष्यकाल **अणंतगुणा=**अनंतगुणा ।

भावार्थ :– अनंत उत्सर्पिणी (और अवसर्पिणी) मिलने पर एक पुद्‌गल परावर्तकाल होता है । अनंत पुद्‌गल परावर्त का भूतकाल और अनंत पुद्‌गल परावर्त का भविष्य काल समझना चाहिए ।

विवेचन :– काल के अविभाज्य अंश को समय कहते हैं । असंख्य समय की एक आवलिका होती है ।

1,67,77,216 आवलिका का एक मुहूर्त होता है ।

30 मुहूर्त का 1 दिन होता है ।

30 दिन का 1 मास होता है ।

12 मास का 1 वर्ष होता है ।

84 लाख वर्ष का 1 पूर्वांग होता है ।

84 लाख पूर्वांग का 1 पूर्व होता है ।

असंख्य वर्षों का 1 पल्योपम होता है ।

10 कोटाकोटि पल्योपम का 1 सागरोपम होता है ।

10 कोटाकोटि सागरोपम का 1 उत्सर्पिणी काल होता है ।

10 कोटाकोटि सागरोपम का 1 अवसर्पिणी काल होता है ।

1 अवसर्पिणी और 1 उत्सर्पिणी मिलकर एक कालचक्र होता है ।

महाविदेह क्षेत्र में सदा अवस्थित काल है अर्थात् भरतक्षेत्र में अवसर्पिणी काल के चौथे आरे में जो स्थिति होती है, वह स्थिति वहाँ हमेशा रहती है, जबकि भरत और ऐरवत क्षेत्र में अनिश्चित काल है अर्थात् वहाँ काल में परिवर्तन होता रहता है ।

उत्सर्पिणी काल :– इस काल में जीवों के आयुष्य, ऊँचाई, बल, बुद्धि आदि में वृद्धि होती जाती हैं, उसी प्रकार पुद्‌गलों के रूप, रस, गंध आदि भी श्रेष्ठ बनते जाते हैं ।

अवसर्पिणी काल :– इस काल में जीवों के आयुष्य, बल, बुद्धि आदि में तथा पुद्‌गलों के वर्ण, गंध आदि में हानि होती जाती है ।

उत्सर्पिणी काल पूरा होने पर अवसर्पिणी काल आता है और अवसर्पिणी काल पूरा होने पर उत्सर्पिणी काल आता है ।

एक पुद्‌गल परावर्त काल में अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी बीत जाती हैं ।

पुद्गल परावर्त के 8 भेद :–

1. बादर द्रव्य पुद्गल परावर्तकाल :– चौदह राजलोक में रहे सभी पुद्गल द्रव्यों को औदारिक आदि (आहारक को छोड़कर) किसी भी एक वर्गणा के द्वारा ग्रहण कर उसका त्याग करे, उसमें जितना समय व्यतीत हो, उसे बादर द्रव्य पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

2. सूक्ष्म द्रव्य पुद्गल परावर्त काल :– कोई जीव चौदह राजलोक में रहे हुये सभी पुद्गल द्रव्यों को औदारिक आदि (आहारक को छोड़कर) किसी भी वर्गणा के द्वारा क्रमक्षः ग्रहण करके उसका त्याग करे, उसमें जितना समय (अनंतकाल) व्यतीत हो, उसे सूक्ष्म द्रव्य-पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

3. बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त काल :– कोई जीव चौदह राजलोक के सभी आकाश प्रदेशों का स्पर्श कर मृत्यु प्राप्त करे, उसमें जितना समय लगे उसे बादर क्षेत्र पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

4. सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त काल :– कोई जीव चौदह राजलोक के सभी आकाश प्रदेशों का क्रमक्षः स्पर्श करके मृत्यु प्राप्त करे, उसमें जितना समय लगे, उसे सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

5. बादर काल पुद्गल परावर्त काल :– उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सभी समयों का स्पर्शकर कोई जीव मरण प्राप्त करे, उस काल को बादर काल पुद्गल परावर्तकाल कहते हैं ।

6. सूक्ष्म काल पुद्गलपरावर्त काल :– कोई जीव उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल के सभी समयों को क्रमक्षः स्पर्श करके मृत्यु प्राप्त करे, उसमें जितना समय लगे, उसे सूक्ष्मकाल पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

7. बादर भाव पुद्गल परावर्त काल :– कोई जीव रसबंध के सभी अध्यवसायों का स्पर्श कर मृत्यु को प्राप्त हो, उसमें जितना काल व्यतीत हो, उसे बादर भाव पुद्गल परावर्त काल कहते हैं ।

8. सूक्ष्म भाव पुद्गल परावर्त काल : कोई जीव रसबंध के सभी अध्यवसायों का क्रमक्षः स्पर्श करके मृत्यु प्राप्त करे, उसमें जितना काल व्यतीत हो, उसे सूक्ष्म भावपुद्गलपरावर्त काल कहते हैं ।

इस गाथा में पुद्गल परावर्त काल का जो निर्देश किया है, वह सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्त समझना चाहिए । कोई जीव चौदह राजलोक के किसी एक आकाशप्रदेश का स्पर्श कर मरा हो, फिर पुनः जब उसके पास के आकाशप्रदेश का स्पर्श कर मरे. फिर उसके पास के आकाशप्रदेश का

स्पर्शकर मरे, इस प्रकार क्रमशः सभी आकाशप्रदेशों का स्पर्श करे और मरण कर एक श्रेणी पूरी करे । इसी क्रम से आकाश प्रदेशों की असंख्य श्रेणियों को पूर्ण करने में जो समय लगे उसे, सूक्ष्म क्षेत्र पुद्गल परावर्तकाल कहते हैं ।

जिस आत्मा को सम्यक्त्व के अध्यवसायों का स्पर्श नहीं हुआ है, ऐसी आत्मा अनंत पुद्गल परावर्त काल तक संसार में भटकती रहती है, परंतु जिस आत्मा को एक बार भी सम्यक्त्व का स्पर्श हो गया हो, उस आत्मा का संसार-भ्रमण अत्यंत ही परिमित हो जाता है ।

सिद्धों के 15 भेद

जिण अजिण तित्थऽतित्था, गिहि अन्न सलिंग थी नर नपुंसा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, बुद्धबोहिय इक्कणिक्का य ।।55।।

शब्दार्थ :– जिण=जिन सिद्ध **अजिण=**अजिन सिद्ध **तित्थ=**तीर्थ सिद्ध **अतित्था=**अतीर्थ सिद्ध **गिहि=**गृहस्थलिंग सिद्ध **अन्न=**अन्यलिंग सिद्ध **सलिंग=**स्वलिंग सिद्ध **थी=**स्त्रीलिंग सिद्ध **नर=**पुरूषलिंग सिद्ध **नपुंसा=**नपुंसक लिंग सिद्ध **पत्तेय=**प्रत्येकबुद्ध सिद्ध **सयंबुद्धा=**स्वयंबुद्ध सिद्ध **बुद्धबोहिय=**बुद्ध बोधित सिद्ध **इक्क=**एक सिद्ध **अणिक्का=**अनेक सिद्ध **य=**और ।

भावार्थ :– जिनसिद्ध, अजिनसिद्ध, तीर्थसिद्ध, अतीर्थसिद्ध, गृहस्थसिद्ध, अन्यलिंग सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, स्त्रीलिंग सिद्ध, पुरूषलिंग सिद्ध, नपुंसक लिंग सिद्ध, प्रत्येकबुद्ध सिद्ध, स्वयंबुद्ध सिद्ध, बुद्धबोधित सिद्ध, एक सिद्ध और अनेक सिद्ध इस प्रकार सिद्धों के 15 भेद हैं ।

सिद्धों के 15 भेद-

1. जिन सिद्ध :– जो आत्माएँ तीर्थंकर बनकर मोक्ष में जाती हैं, उन्हें जिनसिद्ध कहते हैं ।

2. अजिन सिद्ध :– जो आत्माएँ तीर्थंकर पद पाए बिना सामान्य केवली बनकर मोक्ष में जाती हैं, उन्हें अजिन सिद्ध कहते हैं ।

3. तीर्थ सिद्ध :– तीर्थ की स्थापना के बाद जो आत्माएँ मोक्ष में जाती हैं, उन्हें तीर्थसिद्ध कहते हैं ।

4. अतीर्थ सिद्ध :– तीर्थ की स्थापना होने के पहले जो सिद्ध बने हों वे अतीर्थसिद्ध कहलाते हैं ।

5. गृहस्थ लिंग सिद्ध :– गृहस्थ वेष में जो सिद्ध बने हों वे गृहस्थ लिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

6. अन्य लिंग सिद्ध :– तापस आदि अन्य लिंग में सिद्ध हुए हों ।

7. स्वलिंग सिद्ध :– साधु वेष में सिद्ध बने हों वे स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध :– स्त्री सिद्ध हुई हो उसे स्त्रीलिंग सिद्ध कहते हैं ।

9. पुरूष लिंग सिद्ध :– पुरूष रूप में जो सिद्ध बने हों ।

10. नपुंसकलिंग सिद्ध :– कृत्रिम नपुंसक सिद्ध हुए हों वे नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

11. प्रत्येकबुद्ध सिद्ध :– किसी निमित्त को पाकर स्वयं दीक्षा ली हो वे प्रत्येक बुद्ध कहलाते हैं ।

12. स्वयंबुद्ध सिद्ध :– बिना किसी निमित्त के स्वयं बोध पाकर दीक्षा ली हो वे स्वयंबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं ।

13. बुद्धबोधित सिद्ध :– गुरू के उपदेश से बोध पाकर दीक्षा ली हो, वे बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं ।

14. एक सिद्ध : एक समय में एक ही सिद्ध हो ।

15. अनेक सिद्ध : एक समय में अनेक सिद्ध हों ।

उदाहरण

जिणसिद्धा अरिहंता, अजिणसिद्धा य पुंड़रिअ पमुहा ।
गणहारि तित्थ सिद्धा, अतित्थसिद्धा य मरूदेवी ।।56।।

गिहिलिंगसिद्ध भरहो, वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहू सलिंगसिद्धा, थी-सिद्धा चंदणा-पमुहा ।।57।।

पुंसिद्धा गोयमाइ, गांगेयाइ नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय सयंबुद्धा, भणिया करकंडु कविलाई ।।58।।

तह बुद्धबोहि गुरूबोहिया, इग समये एग सिद्धा य ।
इग समये वि अणेगा, सिद्धा तेऽणेग सिद्धा य ।।59।।

शब्दार्थ :– जिणसिद्धा=जिनसिद्ध **अरिहंता=**अरिहंत परमात्मा **अजिण सिद्धा=**अजिन सिद्ध **पुंड़रिआ=**पुंड़रीक **पमुहा=**प्रमुख **गणहारि=**गणधर भग-

वंत **तित्थसिद्धा=**तीर्थसिद्ध **अतित्थसिद्धा=**अतीर्थसिद्ध **य=**तथा **मरूदेवा=**मरूदेवी माता **गिहिलिंगसिद्ध=**गृहस्थलिंग सिद्ध **भरहो=**भरत **वक्कलचीरी=**वल्कलचीरी **य=**तथा **अन्नलिंगम्मि=**अन्य लिंग में **साहु=**साधु **सलिंग सिद्धा=**स्वलिंग सिद्ध **थीसिद्धा=**स्त्रीलिंग सिद्ध **चंदणा पमुहा=**चंदना प्रमुख **पुंसिद्धा=**पुरूषलिंग सिद्ध **गोयमाइ=**गौतम आदि **गांगेयाइ=**गांगेय आदि **नपुंसयासिद्धा=**नपुंसक सिद्ध **पत्तेय=**प्रत्येक **सयंबुद्धा=**स्वयंबुद्ध **भणिया=**कहे हैं **करकंडु=**करकंडु **कविलाइ=**कपिल आदि **तह=**तथा **बुद्धबोहिय=**बुद्धबोधित **गुरूबोहिया=**गुरू से बोधित **इग समये=**एक समय में **एग सिद्धा=**एक सिद्ध **इग समये वि=**एक समय में **अणेगा=**अनेक सिद्ध **सिद्धा=**सिद्ध भगवंत **ते=**वे **अणेग=**अनेक **सिद्धा य=**सिद्ध हुए ।

भावार्थ :– श्री अरिहंत परमात्मा जिनसिद्ध हैं, पुंड़रीक गणधर आदि अजिन सिद्ध हैं, गौतम गणधर आदि तीर्थ सिद्ध हैं और मरूदेवा माता अतीर्थसिद्ध है ।।56।।

भरत चक्रवर्ती गृहस्थलिंग सिद्ध है । वल्कलचीरी तापस अन्यलिंग सिद्ध है । साधु स्वलिंग सिद्ध है और चंदनबाला आदि स्त्रीलिंग सिद्ध हैं ।।57।।

गौतम गणधर आदि पुरूषलिंग सिद्ध हैं, गांगेय आदि नपुंसक सिद्ध हैं, करकंडु मुनि प्रत्येकबुद्ध सिद्ध है और कपिल आदि स्वयंबुद्ध सिद्ध है ।।58।।

गुरू से बोध पाए हुए बुद्धबोधित सिद्ध हैं, एक समय में एक सिद्ध होनेवाले एक सिद्ध हैं और एक समय में अनेक सिद्ध होनेवाले अनेक सिद्ध कहलाते हैं ।।59।।

विवेचन : मोक्ष में जितनी भी मुक्तात्माएँ हैं, उनमें परस्पर किसी प्रकार का भेद नहीं है । परंतु पूर्वावस्था की अपेक्षा मुक्तात्माओं के 15 भेद बतलाए हैं ।

1. जिन सिद्ध :– अपने पूर्व के तीसरे भव में तीर्थंकर नाम कर्म निकाचित कर उसके बाद के तीसरे भव में अपने च्यवन आदि पाँच कल्याणकों के द्वारा जगत् के जीवों पर महान् उपकार कर मोक्ष में जानेवाले जिनसिद्ध कहलाते हैं । सभी अरिहंत परमात्माओं का इस भेद में समावेश होता है ।

2. अजिन सिद्ध :– तीर्थंकर की पदवी पाए बिना मोक्ष में जानेवाले सभी अजिन सिद्ध कहलाते हैं जैसे-पुंड़रीक स्वामी ! वे तीर्थंकर बनकर मोक्ष में नहीं गए हैं ।

3. तीर्थ सिद्ध :– अरिहंत परमात्मा के द्वारा शासन की स्थापना होने के बाद जो जीव मोक्ष में जाते हैं, सभी तीर्थसिद्ध कहलाते हैं । उदाहरण गणधर भगवंत । सभी गणधर तीर्थ की स्थापना के बाद ही मोक्ष में जाते हैं ।

4. अतीर्थ सिद्ध :– अरिहंत परमात्मा के द्वारा तीर्थ की स्थापना होने के पहले ही जो जीव मोक्ष में चले जाते हैं, वे अतीर्थ सिद्ध कहलाते हैं ।

उदा. श्री ऋषभदेव प्रभु ने अभी तक शासन की स्थापना नहीं की थी, उसके पहले ही समवसरण की ओर आ रही हाथी पर बैठी मरूदेवा माता को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी और वहीं पर आयुष्य पूरा हो जाने से तीर्थ की स्थापना के पूर्व ही मरूदेवा का मोक्ष हो गया था, अतः मरूदेवा माता अतीर्थ सिद्ध कहलाती हैं ।

5. गृहस्थलिंग सिद्ध :– आरिसा भवन में अनित्यभावना करते-करते ही भरत चक्रवर्ती को केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई थी और क्रमशः मोक्षपद प्राप्त किया था ।

6. अन्यलिंग सिद्ध :– श्रमण वेष को स्वीकार किए बिना जो आत्माएँ अन्य साधु-संन्यासी के वेष में ही केवलज्ञान प्राप्त कर आयुष्य पूर्णकर मोक्ष में चली जाती हैं, वे अन्यलिंग सिद्ध कहलाते हैं वल्कलचीरी तापस के वेष में थे, उन्हें उसी वेष में केवलज्ञान की प्राप्ति हो गई और वे मोक्ष में चले गए । इस प्रकार अन्य वेष में मोक्ष में जानेवाले अन्यलिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

7. स्वलिंग सिद्ध :– तीर्थंकर परमात्मा के द्वारा निर्दिष्ट साधु वेष को स्वीकार कर जो आत्माएँ मोक्ष पद प्राप्त करती हैं, वे स्वलिंग सिद्ध कहलाती हैं । मेतारज आदि मुनि साधु वेष को स्वीकार कर मोक्ष में गए थे, अतः स्वलिंग सिद्ध कहलाते हैं ।

8. स्त्रीलिंग सिद्ध :– स्त्री के रूप में जन्म लेकर जो आत्माएँ मोक्ष में गई हों, वे स्त्रीलिंग सिद्ध कहलाते हैं । चंदनबालादि स्त्री लिंग में मोक्ष गई ।

दिगंबर लोग स्त्री का मोक्ष नहीं मानते हैं, जबकि सिद्धों के 15 भेदों में स्त्रीलिंग मोक्ष को भी स्वीकार किया गया है । इससे दिगंबर मत का खंड़न हो जाता है ।

9. पुरूष लिंग सिद्ध :– पुरूष के भव को प्राप्त कर जो मोक्ष में गए हों वे पुरूषलिंग सिद्ध कहलाते हैं, जैसे गौतमस्वामी ।

10. नपुंसक लिंग सिद्ध :– कृत्रिम रूप से नपुंसक बने जो सिद्ध होते हैं, वे नपुंसक लिंग सिद्ध कहलाते हैं । जैसे-गांगेय आदि ।

11. प्रत्येक बुद्ध सिद्ध :– संध्या समय के रंग को देखकर, वृद्ध बैल आदि को देखकर प्रतिबोध पाकर दीक्षा लेकर मोक्ष में जानेवाले प्रत्येकबुद्ध सिद्ध कहलाते हैं । उदा. करकंडु राजर्षि ।

12. स्वयंबुद्ध सिद्ध :– किसी के उपदेश बिना और बिना किसी निमित्त के स्वयं ही बोध पाकर दीक्षा लेकर केवलज्ञान प्राप्तकर मोक्ष में जानेवाले स्वयं- बुद्ध सिद्ध कहलाते हैं । जैसे-कपिल केवली ।

13. बुद्धबोधित सिद्ध :– सद्गुरू के उपदेश का श्रवण कर बोध पाकर दीक्षा अंगीकार कर, केवलज्ञान प्राप्त कर मोक्ष में जानेवाले बुद्धबोधित सिद्ध कहलाते हैं । जैसे-गौतम स्वामी आदि ।

14. एक सिद्ध :– एक समय में एक ही आत्मा मोक्ष में जाती हो, उसे एक सिद्ध कहते हैं । जैसे-महावीर स्वामी आदि ।

15. अनेक सिद्ध :– एक ही समय में एक से अधिक मोक्ष में जाते हैं तो वे अनेकसिद्ध कहलाते हैं । जैसे ऋषभदेव प्रभु एक ही समय में अनेक के साथ मोक्ष में गए थे । किसी एक जीव की अपेक्षा से विचार करें तो एक ही इन 15 भेदों में से एक साथ 6-7 भेदों में भी मोक्ष में जा सकता है ।

जैसे-महावीर स्वामी मोक्ष में गए तो वे जिनसिद्ध, तीर्थसिद्ध, एक सिद्ध, स्वलिंग सिद्ध, पुल्लिंगसिद्ध तथा स्वयंबुद्ध सिद्ध इस प्रकार छह भेदों से सिद्ध हुए थे । इस प्रकार अन्य व्यक्ति विशेष का भी विचार कर सकते हैं । कर्म से सर्वथा मुक्त बने हुए, जन्म-जरा और मृत्यु से सर्वथा मुक्त बने हुए सभी सिद्धों को नमस्कार हो ।

जइ-आइ होइ पुच्छा, जिणाण मग्गंमि उत्तरं तइआ ।
इक्कस्स निगोयस्स, अनंतभागो य सिद्धिगओ ।।60।।

शब्दार्थ :– जइआइ=जब भी **होइ=**होती है **पुच्छा=**पृच्छा **जिणाण**

मग्गंमि=जिनेश्वर के मार्ग में **उत्तरं=**उत्तर, **तइआ=**तब **इक्कस्स=**एक **निगोयस्स=**निगोद का **अनंतभागो=**अनंत भाग **य सिद्धिगओ=**सिद्ध हुआ ।

भावार्थ :– जिनेश्वर के मार्ग में जब भी यह पृच्छा होगी तब एक ही जवाब होगा, एक निगोद का अनंतवां भाग ही मोक्ष में गया है ।

विवेचन :– यह संसार अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेगा । भरत और ऐरवत क्षेत्र में प्रत्येक उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल में जो 24-24 तीर्थंकर होते हैं-उनके शासन को प्राप्त कर असंख्य आत्माएं मोक्ष में जाती हैं-महाविदेह क्षेत्र में तो सदैव मोक्ष गमन चालू ही हैं-इस प्रकार आजतक अनंत आत्माएं मोक्ष में जा चूकी है, परंतु मोक्षगत आत्माओं की संख्या के बारे में जब जब भी किसी तीर्थंकर या केवली भगवंत को पूछा जाएगा, तब तब एक ही जवाब मिलेगा, एक निगोद का अनंतवां भाग जितने ही जीव आज तक मोक्ष में गए है । इस चौदह राजलोक रुप संसार सूक्ष्म निगोद के गोलों से ठसाठसा भरा हुआ है । एक सुई के अग्रभाग जितना भी ऐसा स्थान नहीं हैं, जहां सूक्ष्म निगोद के जीव नहीं रहे हुए हो ।

मोक्ष मार्ग अनादि काल से हैं-अनादि काल से आत्माएं मोक्ष में जा रही है । न्युनतम छ मास में एक आत्मा का तो अवश्य मोक्ष होता है । यद्यापि मोक्ष में गई आत्माएं भी अनंत हैं-फिर भी एक निगोद में रहे जीवों की अपेक्षा से मोक्षगत आत्माओं का विचार करे तो मोक्षगत आत्माएं, एक निगोद के अनंतवें भाग प्रमाण ही है ।

भूतकाल में हुए ऋषभदेव भगवान को पूछा जाय या अनंतकाल के बाद होने वाले तीर्थंकर परमात्मा को पूछा जाय-`आज तक कितनी आत्माएं मोक्ष में गई है ?' तो उस सब का एक ही जवाब होगा-`एक निगोद के अनंतवें भाग जितने ही जीव मोक्ष में गए है । यह सब जानकर हमें अपने आपको भाग्यशाली समझना चाहिये कि हम उस निगोद की कैद में से बाहर निकल आए और मनुष्य तक की भूमिका तक पहुँच गए ।' बस, अब प्रमाद को तिलांजलि देकर मोक्ष-प्राप्ति के लिए प्रबल पुरुषार्थ करने में ही अपना सच्चा हित है ।

जैन हिन्दी साहित्य दिवाकर मरुधररत्न, पू. आचार्यदेव श्रीमद् विजय रत्नसेनसूरीश्वरजी म.सा. द्वारा मुख्यतया हिन्दी भाषा में आलेखित 232 पुस्तकों में से उपलब्ध एवं अवश्य पठनीय साहित्य-सूची

Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य	Sr. No.	पुस्तक का नाम	मूल्य
1.	चिंतन का अमृत-कुंभ	80/-	33.	अमृत रस का प्याला	300/-
2.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-1)	100/-	34.	श्रावक का गुण सौंदर्य	125/-
3.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-2)	100/-	35.	ध्यान साधना	40/-
4.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-3)	125/-	36.	आग और पानी-भाग-1-2	115/-
5.	पंच-प्रतिक्रमण (भाग-4)	135/-	37.	शांत सुधारस-हिन्दी -भाग-1-2	140/-
6.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-1	125/-	38.	शत्रुंजय यात्रा (तृतीय आवृत्ति)	40/-
7.	आओ ! प्राकृत सीखें भाग-2	85/-	39.	आओ संस्कृत सीखें भाग-1	150/-
8.	विविध-तपमाला	100/-	40.	प्रेरक-प्रवचन	80/-
9.	विवेकी बनो	90/-	41.	दंडक सूत्र	50/-
10.	बीसवी सदी के महान योगी	300/-	42.	जीव विचार विवेचन	100/-
11.	परम-तत्व की साधना भाग-3	160/-	43.	गणधर-संवाद	80/-
12.	प्रवचन-वर्षा	60/-	44.	आओ ! उपधान पौषध करें !	55/-
13.	मोक्ष-मार्ग के कदम	120/-	45.	नवपद आराधना	80/-
14.	आओ श्रावक बनें !	25/-	46.	पहला कर्मग्रंथ	100/-
15.	व्यसन-मुक्ति	100/-	47.	दूसरा-तीसरा कर्मग्रंथ	55/-
16.	श्रावक जीवन दर्शन	250/-	48.	संस्मरण	50/-
17.	शंका-समाधान (भाग-4)	60/-	49.	भव आलोचना	10/-
18.	जैन-महाभारत	130/-	50.	आध्यात्मिक पत्र	60/-
19.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (1 से 9)	300/-	51.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-1	125/-
20.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (10 से 40)	275/-	52.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-2	175/-
21.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (41 से 57)	275/-	53.	आत्म-उत्थान का मार्ग-भाग-3	150/-
22.	महावीर प्रभु की पट्टधर-परंपरा (58 से 80)	280/-	54.	इन्द्रिय पराजय शतक	50/-
23.	सात वासुदेव-प्रतिवासुदेव बलदेव	50/-	55.	'बेंगलोर' प्रवचन-मोती	140/-
24.	प्रतिक्रमण उपयोगी संग्रह	80/-	56.	तीन भाष्य (हिन्दी विवेचन)	150/-
25.	सुखी जीवन के Mile-Stone	100/-	57.	श्री नमस्कार महामंत्र	180/-
26.	समाधि मृत्यु	80/-	58.	महामंत्र की अनुप्रेक्षाएँ	150/-
27.	The Way of Metaphysical Life	60/-	59.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-1	200/-
28.	Pearls of Preaching	60/-	60.	तत्त्वार्थ-सूत्र-भाग-2	200/-
29.	New Message for a New Day	600/-	61.	आओ ! पर्युषण प्रतिक्रमण करें !	150/-
30.	Celibacy	70/-	62.	सज्झायों का स्वाध्याय	100/-
31.	Panch Pratikraman Sootra	100/-	63.	वर्धमान सामायिक साधना श्रेणी	30/-
32.	श्रीपाल-रास और जीवन-चरित्र	160/-	64.	वैराग्य-वाणी	140/-
			65.	नवतत्त्व-विवेचन	110/-

पुस्तक प्राप्ति स्थान : दिव्य सन्देश प्रकाशन C/o. सुरेन्द्र जैन, Office No. 304, 3rd Floor, बे व्यु बिल्डींग, विंग-ईस्ट बे, डॉ. एम.बी. वेलकर स्ट्रीट, कालबादेवी, मुंबई-400 002. Mobile : 8484848451 (only whatsapp)

Kamal PRINTER'S M. 9820530299